परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

मल्लिनाथ पुराण

ग्रन्थकर्त्ता

परम पूज्य आचार्यश्री सकलकीर्त्ति जी महाराज

अनुवादक

पण्डितप्रवरश्री गजाधरलाल जी

प्रकाशक

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

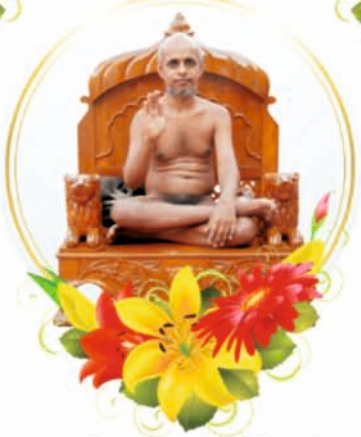

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

श्री मल्लिनाथाय नमः

श्री मल्लिनाथ पुराण

भाषाकारका मंगलाचरण

सर्वविघ्न हर्ता प्रभू मल्लिनाथ जिनराज। जिन मंगल करण नमूं धारि माथ पद आज ॥ १ ॥
ज्ञान योग तप लीन नित रहितपरिग्रह धीर। विषयवासनाविमुख गुरु मेटो मम भवपीर ॥ २ ॥
वन्दू वाणी भगवती स्याद्वादमय शुद्ध। जा प्रसादतें होत हैं भव्यजीव प्रतिबुद्ध ॥ ३ ॥

ग्रन्थकारका मंगलाचरण

नमः श्रीमल्लिनाथाय कर्ममल्लविनाशिने। अनन्तमहिमाप्ताय त्रिजगत्स्वामिनेऽनिशम् ॥१॥
शेषान् सर्वान् जिनान्वन्दे धर्मचक्रप्रवर्तकान्। विश्वभव्यहितोद्युक्तान् पञ्चकल्याणनायकान् ॥२॥
कर्मनाशगुणाधीशांल्लोकाग्रे च निवासिनः। ध्येयान् मुख्यादिभव्यौघे स्मरामि हृदये सदा ॥३॥
आर्हती भारती पूज्या लोकालोकप्रदीपिका। रजाविधूयते नित्यं तनोतु विपुलं मतिम् ॥४॥

जिनका जीतना बड़े क्लेशसे हो सकता है ऐसे ज्ञानावरण आदि कर्मरूपी मल्लोंको जड़से नष्ट करनेवाले, अनन्तविज्ञान, अनन्तवीर्य, अनन्तसौख्य और अनन्तदर्शन स्वरूप अनन्त चतुष्टय महिमाके धारक, एवं तीन लोकके स्वामी भगवान मल्लिनाथको मैं ग्रन्थकार (श्रीसकलकीर्ति भट्टारक) सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥१॥ भगवान मल्लिनाथसे जो ऋषभ आदि तीर्थंकर हैं उन्हें भी मैं ग्रन्थकी आदिमें मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ क्योंकि वे समस्त तीर्थंकर भी भगवान मल्लिनाथके ही समान धर्मचक्रके प्रवर्तानेवाले हैं। मोक्षाभिलाषी समस्त जीवोंको हितकारी मार्ग मोक्षमार्गमें लगानेवाले हैं एवं गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान और निर्वाण इन पाँचों कल्याणोंके नायक हैं ॥२॥ ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि घाति अघाति कर्मोंके नाशसे प्राप्त सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंके स्वामी, तीन लोकके अग्रभागमें विराजनेवाले एवं मोक्षाभिलाषी भव्यजीव सदा जिनकी आनन्दमयी मूर्तिका ध्यान करते हैं उन सिद्ध भगवानको भी मैं अपने हृदयमें स्मरण करता हूँ ॥३॥ लोक और अलोकको स्पष्ट रूपसे प्रकाश करनेवाली एवं भगवान अरहंतकी दिव्यध्वनिसे प्रकाशमान

आचार्यान् पाठकान् साधून् गुरूणामिवसंवरान् । श्रुताब्धीन् शिरसा वन्दे सर्वांश्च योगसाधकान्॥५॥
रत्नत्रयं नमस्कृत्य कर्मघ्नं शर्मसागरं । रत्नत्रयविधानस्य फलसूचनहेतवे ॥६॥
मल्लिनाथजिनेन्द्रस्य चरित्रं पावनं परं । समासेन प्रवक्ष्यामि स्वान्ययोर्हितसिद्धये ॥७॥
अथ जंबूमति द्वीपे विदेहे पूर्वनामनि । विषयः कच्छकावत्यभिधोऽस्ति धर्मवारिधिः ॥८॥
यत्र ग्रामाणि खेटानि पत्तनानि पुराणि च । मटंबादीनि राजन्ते जिनागारैश्च धार्मिकैः ॥९॥
यत्रारण्ये वने रम्येऽचले तुंगे फलांकिते । सर्वत्र मुनयो धीरा दृश्यन्ते ध्यानतत्पराः ॥१०॥
संख्यातीता जिनाधीशाश्चक्रिणश्चार्धचक्रिणः । तद्द्विषः कामदेवाश्च जायन्ते सुरपूजिताः ॥११॥

भगवती सरस्वतीको भी मैं ग्रन्थकी आदि में अभिवंदना करता हूँ और उससे विनय-पूर्वक यह प्रार्थना करता हूँ कि वह विघ्नोंके नाश करनेमें सदा मेरी बुद्धिको प्रबल और निर्मल बनावे ॥४॥ ग्रन्थकी आदिमें आचार्य उपाध्याय और सर्व साधुओंको भी मेरा मस्तक झुकाकर नमस्कार है क्योंकि ये पवित्रात्मा ज्ञानाचार आदि आचारोंके आचरण करनेवाले हैं। आगमके समुद्र हैं और ध्यानके करनेमें प्रवीण हैं ॥५॥ समस्त कर्मोंको नाश करनेवाले और अनेक प्रकारके कल्याणोंके समुद्र उस सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रयको भी मैं प्रणाम करता हूँ और हृदयमें यह पूरी अभिलाषा रखता हूँ कि वह कल्याणकारी रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो ॥६॥ इस प्रकार कल्याणके कर्ता समस्त इष्ट देवोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर मैं उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथके चरित्रको संक्षेपसे वर्णन करता हूँ जो कि अत्यन्त पवित्र है और अपना पराया हित सिद्ध करनेवाला है ॥७॥

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें धर्मका समुद्र अर्थात् जहाँपर सदा वास्तविक धर्मकी प्रवृत्ति रहती है ऐसा कच्छकावती नामका प्रसिद्ध देश है ॥८॥ इस कच्छकावती देशके गाँव, खेट, पत्तन, पुर, मटम्ब आदिमें जगह-जगह जिनमन्दिर शोभायमान हैं एवं मोक्षाभिलाषी धर्मात्मा लोगोंके निवास स्थान बने हुए हैं। उनसे यह देश अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है ॥ इसी कच्छकावती देशके महामनोहर अविनाशी ऊँचे और नाना प्रकारके फलोंसे शोभायमान जंगल और वनोंमें जगह-जगह मुनिराज दीख पड़ते हैं जो कि घोर परीषहोंके सहनेमें परम धीर वीर हैं और सदा ध्यानमें लयलीन हैं ॥१०॥ इसी कच्छकावती देशमें असंख्याते भगवान जिनेन्द्र उत्पन्न होते हैं। असंख्याते ही चक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण और कामदेव उत्पन्न

यत्र प्रवर्तते धर्मो जैनोह्येको दयामयः । शाश्वतो यतिभिः श्रावकैश्च सारो न चापरः ॥१२॥
विहरन्ति मुनीशाश्च गणेशाः केवलिनः सदा । यत्र धर्मोपदेशाय सतां न च कुलिंगिनः ॥१३॥
सर्वत्र जिनचैत्याला विलोक्यन्ते महोन्नताः । ग्रामारण्यपुरादौ च नान्यदेवमठा क्वचित् ।१४॥
यत्र वर्णत्रयोपेता जिनधर्मपराः प्रजाः । विनीता जिनगुर्वादौ सदाचारा वसंत्यहो ॥१५॥
अङ्गपूर्वाणि यत्रोच्चैर्जिनोक्तानि निरंतरं । श्रूयंते च प्रपठ्यंते न कुशास्त्राणि सज्जनैः ॥१६॥
यत्रोत्पन्नरहो स्वर्गो मोक्षश्च यदि साध्यते । तपसा व्रतदानाद्यैस्तत्र का वर्णना परा ॥१७॥
इत्यादि-वर्णनोपेते देशे धर्मकुलालये । वीतशोकाभिधं भाति पुरं देवपुरोपमम् ॥१८॥
दीर्घखातिकया तुङ्गशालगोपुरतोरणैः । मनोज्ञैर्यदभाज्जंबूद्वीपवेद्यब्धिवत्तरां ॥१९॥

होते हैं जिनकी कि बड़े-बड़े देव पूजा और सत्कार करते हैं ॥११॥ इस कच्छकावती देशमें केवल एक जैनधर्मकी ही प्रवृत्ति रहती है जो धर्म सदा दयास्वरूप है। यति और श्रावकोंकी विद्यमानतासे जो शाश्वत है—सदाकाल विद्यमान रहता है और सारभूत है किन्तु जैनधर्मके सिवाय अन्य किसी धर्मको उस देशमें प्रवृत्ति नहीं रहती ॥१२॥ इस कच्छकावती देशमें मोक्षाभिलाषी जीवोंको धर्मका उपदेश सुनानेके लिये सदा मुनिगण गणधर और केवलियोंका विहार होता रहता है। कुलिंगी—मिथ्यात्वी साधुओंका वहाँपर विहार नहीं होता ॥१३॥ इस देशमें जहाँ देखो वहाँ ग्राम और नगर आदिमें ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर ही दीख पड़ते हैं मिथ्यादृष्टी देवोंके मन्दिर कहीं भी नजर नहीं पड़ते ॥१४॥ इस देशमें भगवान जिनेन्द्रके धर्ममें सदा लवलीन क्षत्रिय वैश्य और शूद्र तीनों वर्णोंकी प्रजा निवास करती है यह प्रजा भगवान जिनेन्द्र एवं गुरुओंमें सदा विनयालु है और सदा उत्तम आचरणकी आचरनेवाली है ॥१५॥ इस देशमें जहाँ सुनो वहाँपर भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादन ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्वहो सत्पुरुषों के द्वारा सुननेमें आते और पढ़े जाते हैं मिथ्या-शास्त्रोंका वहांपर सुनना और पढ़ना नजर नहीं आता ॥१६॥ विशेष क्या ? इस देशमें उत्पन्न होनेवाले महानुभाव, जप, तप, व्रत और दान आदिके द्वारा सुलभ-रूपसे न प्राप्त होनेवाले स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेते हैं तब इससे अधिक उसकी कीर्तिका क्या वर्णन हो सकता है ॥१७॥

इस प्रकारके उत्तम वर्णनके धारक एवं समीचीन धर्म और उत्तमोत्तम कुलोंके स्थान उस कच्छकावती देशमें एक वीतशोका नामकी नगरी है जो कि अपनी शोभासे देवपुरी—स्वर्गके समान जान पड़ती है ॥१८॥ विस्तीर्ण खाइयाँ, मनोहर

पुण्यवद्धामकूटाग्रध्वजहस्तैर्मरुद्वशी: । नाकिनामाह्वयंतीव मुक्तये यद्भुवस्तरां ॥२०॥
केचित्पश्यंति दानाय गृहद्वारं च दानिनः । केचिदत्प्राप्य महापात्रं सुदानं ददते मुदा ॥२१॥
केचिद्दानजपुण्येन रत्नवृष्टिं भजंत्यहो । केचिदप्राप्य सत्पात्रं खेदं चापि प्रयांत्यहो ॥२२॥
दिव्यरूपाणि युग्मानि भर्तृस्त्रीणां जिनालये । देवानामिव राजंते यत्र पूजापरायणि च ॥२३॥
तुङ्गा हैममया यत्र जिनप्रासादपंक्तयः । धर्माकरा इवात्यर्थं भ्राजंते मणितोरणैः ॥२४॥
मणिबिंबोच्छ्रुजंदीप्रैः रत्नोपकरणैः परैः । गीतैर्नर्तनवाद्यैश्च स्तवैः स्त्रीभिर्नरोत्तमैः ॥२५॥
यत्रेच्छंते अहो जन्म सुरेशा मुक्तिसिद्धये । पुरे धर्माकरे तत्र वर्णना का परा घना ॥२६॥

ऊँचे-ऊँचे परकोट, सदर दरवाजे और तोरणों (बंदनमालाओं) से वह नगर अत्यन्त शोभित होता है सो ऐसा जान पड़ता है मानों वेदी और समुद्रसे वेष्टित यह जम्बूद्वीप ही है ॥१९॥ उत्तमोत्तम धनिकोंकी अटारियोंके अग्रभागमें लगीं हुई और पवनके झकोरोंसे हिलनेवाली जो ध्वजायें वे ही हुए हाथ, उनसे ऐसा जान पड़ता था मानों उस नगरको भूमियां देवोंको यह जतलाकार बुला रही है कि भाई देवों ! यदि तुम्हें अपने निजस्थान स्वर्गसे मोक्ष नहीं प्राप्त होती है तो तुम यहांसे उसे प्राप्त करो । अतएव वह नगर अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥२०॥ उस नगरमें यह बड़ी ही आनन्दकी बात थी कि बहुतसे दानीपुरुष आहारके वेलाके समय मुनियोंको आहारदान देनेके लिये अपने-अपने घरोंके द्वार देखते थे अर्थात् द्वारा-पेक्षण करते थे और कोई कोई मुनिरूप महापात्र—उत्तमपात्रको भक्तिपूर्वक उत्तमदान देते थे ॥२१॥ किन्हीं-किन्हीं पुण्यात्माओंके घर दानसे जायमान पुण्यसे रत्नोंकी वर्षा होती थी और कोई-कोई पुरुष सत्पात्रको न पाकर दुःखित हो पश्चात्ताप भी करते थे ॥२२॥ इस वीतशोका नगरमें दिव्यरूपके धारक स्त्री पुरुषोंके जोड़े जिस समयमें जिनमन्दिरोंमें भगवान जिनेन्द्रकी पूजामें संलग्न होते थे उस समय वे देव-देवियोंके जोड़ सरीखे जान पड़ते थे ॥२३॥ धर्मकी खानियोंके समान उस नगरकी ऊँची-ऊँची और सुवर्णमयी जिनमन्दिरोंकी श्रेणियां मणिमयी तोरणोंसे ऊँचे-ऊँचे मणिमयी प्रतिबिम्बोंसे, देदीप्यमान रत्नमयी उपकरणों से गीत नृत्य बाजे और स्तवोंसे स्त्रियों और उत्तमोत्तम पुरुषोंसे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती थीं ॥२४-२५॥ विशेष क्या ? धर्मकी खानि स्वरूप उस नगरमें मोक्षकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े ऋद्धिके धारक इन्द्र भी जन्म धारण करनेकी अभिलाषा करते थे इसलिये इस नगरका जितना भी अधिक वर्णन किया जाय थोड़ा है ॥२६॥

इत्यादिवर्णिते तस्मिन् पुरे धर्मैककारणे। नृपो वैश्रवणो ह्यासीत्प्रतापी धर्मभूषितः ॥२७॥
अमात्स रूपलावण्यवस्त्रालंकारसद्गुणैः। दानशीलव्रताद्यैश्च सुरेश इव नीतिवित् ॥२८॥
प्रजानां क्षेमकर्ता स न्यायमार्गरतो महान्। स्वराज्यं पालयत्येव जितारातिर्विचक्षणः ॥२९॥
धर्मादर्थस्तथा कामः क्रमान्मोक्षश्च धीमतां। इति मत्वा स भूनाथो धर्म्यं ध्यानपरोऽभवत् ॥३०॥
प्रत्यहं दानपूजादि प्रोषधान् सर्वपर्वसु। श्रावकव्रतसम्पूर्णं करोति शीलवान्नृपः ॥३१॥
पुण्योदयेन तस्यासीद्राज्यलक्ष्मी: सुखप्रदा। पुण्यकर्मकरा सारा दासीव वशवर्तिनी ॥३२॥
अथैकदा लसद्भालं भूपालं स्वसदःस्थितं। पुष्पहस्तो मुदागत्य वनपालो व्यजिज्ञपत् ॥३३॥
श्रीचन्दनवने देव! मनोज्ञे मुनिपुङ्गवः। आजगाम त्रिगुप्तात्मा सुगुप्ताख्योऽवधीक्षणः ॥३४॥

इस प्रकार उत्तम वर्णनके धारक और धर्मके प्रधान कारण उस वीतशोक नगरमें एक वैश्रवण नामका राजा था जो कि अत्यन्त प्रतापी होनेपर भी धर्मात्मा था। कमनीयरूप और लावण्यसे महामनोहर वस्त्र और भूषणोंसे एवं दान शील और व्रत आदिसे वह राजा अत्यन्त शोभायमान था तथा इन्द्रके समान परम नीतिवान था। प्रधानरूपसे वह प्रजाओंके कल्याणका करनेवाला था। सदा न्यायमार्गका अनुसरण करनेवाला था, महान् था। समस्त शत्रुओंका विजेता और चतुर था एवं अपने राज्यका सुचारु रूपसे पालन करता था। उस वैश्रवण राजाका यह सदा ध्यान रहता था कि धर्मसे धनकी प्राप्ति होती है। धनसे काम पुरुषार्थ सिद्ध होता है एवं क्रमसे मोक्ष पुरुषार्थकी सिद्धि होती है ऐसा मानकर वह सदा धर्मध्यानमें लीन रहता था। वह शीलवान नरपाल प्रतिदिन दान पूजा आदिको करता था। समस्त अष्टमी और चतुर्दशी पर्वोंमें उपवासोंको आचरता था एवं समस्त श्रावकोंके व्रतोंका वह अच्छी तरह पालन करता था ॥२७-३१॥ पुण्यकर्मके उदयसे राजा वैश्रवणको अत्यन्त सुख देनेवाली राज्यलक्ष्मीको प्राप्ति थी जो कि पवित्र कामोंमें खर्च होनेवाली थी और दासीके समान राजा वैश्रवणकी सदा आज्ञाकारिणी थी ॥३२॥

कदाचित् देदीप्यमान मुकुटसे जिनका मस्तक चमचमा रहा था ऐसे राजा वैश्रवण अपनी राजसभामें राजसिंहासनपर विराजमान थे कि उसी समय पुष्पोंको हाथमें लेकर अत्यन्त हर्षका भरा वनपाल राजसभामें आया और इस प्रकार निवेदन करने लगा ॥३३॥

हे देव! महामनोहर चन्दनवनमें मुनिराज सुगुप्त आकर विराजे हैं वे मुनिराज साधारण मुनिराज नहीं समस्त मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं। मनोगुप्ति वचनगुप्ति

कृत्स्नसंगपरित्यक्तः संयुक्तो गुणसम्पदा । भव्यसंबोधनायैव ध्यानाध्ययनतत्परः ॥३५॥
ततः पाठात्समुत्थाय परमानन्दनिर्भरः । गत्वा सप्तपदान्युच्चैस्तां दिशं प्रणनाम सः ॥३६॥
दापयित्वा महानन्दभेरीं स स्वजनैर्वृतः । धर्मसिद्धये मुनेः पादौः नंतुं तद्वनमासदत् ॥३७॥
शिलापट्टे निविष्टस्य मुनींद्रस्य हितात्मनः । निःसंगस्य गुणाब्धेर्महतः क्रम सरोरुहौ ॥३८॥
त्रिःपरीत्य प्रपूज्यातिभक्त्या दिव्यार्चनोत्करैः । सार्धं स्वपरिवारेण नमाम शिरसा नृपः ॥३९॥
विश्वशर्मखनीराजन् ! [illegible] मुनिरित्याशीर्वादमस्मै ददौ मुनिः ॥४०॥
श्रुत्वा तद्वचनं राजा धर्मवृद्धिप्रसूचकं । जिज्ञासुर्धर्मयाथात्म्यं नत्वाऽवोचन्मुनिं प्रति ॥४१॥

और कायगुप्ति इन तीनों गुप्तियोंसे उनकी आत्मा विभूषित है। अवधिज्ञानरूप नेत्रके धारक हैं। समस्त परिग्रहके त्यागी हैं। गुणरूप सम्पत्तिके धारक हैं तथा "मोक्ष प्राप्त करनेवाले भव्यप्राणी समीचीन ज्ञान प्राप्त करें" अर्थात्—संसारमें जो पदार्थ सारभूत है उसकी ओर झुकें, यही समझानेके लिए वे विशेषरूपसे ध्यान और अध्ययनमें अत्यन्त लीन हैं ॥३४-३५॥ वनपालके मुखसे परमानन्द देनेवाला समाचार सुन राजा वैश्रवणकी आत्मा मारे आनन्दके गद्गद् हो गई। वह आनन्दसे पुलकित हो शीघ्र ही राजसिंहासनसे उठा। जिस पवित्र दिशाके अन्दर मुनिराज सुगुप्त विराजमान थे, सात पैंड़ उस दिशाकी ओर गया और बड़ी भक्तिके साथ उस दिशाको साष्टांग नमस्कार किया ॥३६॥ मुनिराजके दर्शनोंकी शीघ्र उत्कंठासे उसने शीघ्र ही नगरमें आनन्द भेरी दिवाई। अपने सर्व कुटुम्बी जनोंको भेला कियो एवं धर्मोपदेशकी अभिलाषासे मुनिराज सुगुप्तके पूजनार्थ वह शीघ्र ही चन्दन वनमें पहुँच गया ॥३७॥ हितकारी मार्गके उपदेश देनेवाले, समस्त परिग्रहके त्यागी, गुणोंके समुद्र और पूज्य मुनिराज सुगुप्त एक विस्तीर्ण शिलापर विराजमान थे। राजा वैश्रवण शीघ्र ही उनके पास पहुँचा। तीन प्रदक्षिणा दीं। अपने परिवारके साथ उत्तमोत्तम सामग्रीसे मुनिराजके चरण कमलोंकी भक्तिपूर्वक पूजा की एवं पूजाके अन्तमें उन्हें मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥३८-३९॥ मुनिराज लौकिक शिष्टाचारके अत्यन्त जानकार थे इसलिये उन्होंने—हे समस्त कल्याणके स्थान राजन् ! मोक्षलक्ष्मीको प्रदान करनेवाली, तुम्हारी निरन्तर धर्मवृद्धि हो, यह आशीर्वाद दिया ॥४०॥ राजा वैश्रवण को इस प्रकार अपने लिये धर्मवृद्धिका सूचक मुनिराजका वचन सुनकर यथार्थ धर्मके जाननेकी इच्छा प्रगट हो गई इसलिए प्रणामपूर्वक उसने मुनिराजसे यह निवेदन किया है ॥४१॥

भगवन् ! कीदृशो धर्मः केन साध्योऽस्य किं फलं । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि भवतः श्रीमुखादहं ॥४२॥
यथा नैशं तमोजातु विना सौर्यं न नश्यति । तथा भवद्वचोमानुं विना मे धर्मसंशयः ॥४३॥
ततो जगौ मुनींद्रोऽयौ तदभिप्रेतसिद्धये । एकाग्रचेतसा धीमन् ! कथ्यमानं वृषं शृणु ॥४४॥
धरत्यपारसंसारदुःखादुद्धृत्य योगिनः । मोक्षेऽनन्तसुखे राजन् स धर्मं विद्धि तावतः ॥४५॥
तेन धर्मेण जायन्ते विविधा भोगसम्पदः । चक्रवर्त्यासिसेव्या अत्रैवाद्भुतसौख्यदाः ॥४६॥
परत्रेन्द्रपदं दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतं । अहमिंद्रपदं चान्यदुर्लभं लभ्यते वृषात् ॥४७॥

भगवन् ! आपने जो मुझे धर्म वृद्धिस्वरूप आशीर्वाद दिया है मैं नहीं समझता कि वह धर्म क्या है, कौन उसे प्राप्त कर सकता है और क्या उसका फल है ? इसलिये आपके ही श्रीमुखसे मुझे उस धर्मकी प्राप्तिके उपायोंको और उसके फल जाननेकी इच्छा हुई है ॥४२॥ कृपानाथ ! जिस प्रकार रात्रिका प्रबल अंधकार बिना सूर्यके प्रकाशके नष्ट नहीं होता उसी प्रकार मुझे भी धर्मके अन्दर जो संशय है अज्ञान अंधकार है, वह भी आपके वचनरूपी सूर्यके बिना मिट नहीं सकता ॥४३॥ राजा वैश्रवणकी इस प्रकार उत्कट धर्म जिज्ञासा सुन मुनिराजने कहा—राजन् ! तुम्हारे अभीष्ट पदार्थकी सिद्धि हो इसलिये मैं संक्षेपसे धर्मका व्याख्यान करता हूँ, तुम चित्तको एकाग्रकर ध्यानपूर्वक सुनो—

यह संसार अपार है और इसमें अगणित अनेक प्रकारका दुःख है। इस अगणित संसारके दुःखसे छुटाकर जो योगियोंको अनन्त सुखस्वरूप मोक्षमें लेजाकर रक्खे अर्थात् परमानन्दमय सुखका रसास्वादन करावे उसीको हे राजन् ! वास्तविक धर्म कहा गया है ॥४४-४५॥ इस धर्मकी कृपासे जिनकी सेवा करनेमें बड़े-बड़े चक्रवर्ती आदि भी खड़े रहते हैं और इसी संसारमें आश्चर्यकारी उत्तमोत्तम सुखोंको प्रदान करते हैं ऐसे उत्तमोत्तम भोग और भाँति भाँतिकी संपदायें प्राप्त होती हैं परभवमें जिसे समस्त देव मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं और जो दिव्यपद माना जाता है ऐसा वह इन्द्रपद भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होता है एवं अहमिंद्र पद भी जो अत्यन्त दुर्लभ है—दूसरे उपायसे नहीं प्राप्त किया जा सकता वह भी इस पवित्र धर्मकी कृपासे सुलभ रूपसे प्राप्त हो जाता है ॥४६॥ धर्मात्मा लोग धर्मके द्वारा तीनों लोकके समस्त ऐश्वर्योंको पाकर परम्परासे मोक्षको प्राप्त करते हैं जिससे कि अविनाशी सुखकी प्राप्ति होती है। व्यवहार और निश्चयके भेदसे सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र दो दो प्रकारके हैं। गृहस्थोंके व्यवहार सम्यग्दर्शन

धर्मेण धार्मिकाः सर्वाभ्युदयादिपरम्परां । प्राप्य लोकत्रये यांति ह्यनन्तसुखदं शिवं ॥४८॥
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रत्रयेण साध्यतेऽथ सः । व्यवहाराभिधेनैव निश्चयेन च संयतैः ॥४९॥
श्रद्धानं सप्ततत्त्वानां जिनतद्वाक्ययोगिनः । निर्मलस्देहबुधाः प्राहुर्व्यवहाराख्यदर्शनं ॥५०॥
तत्राद्यं त्यक्तसदेहमंगं निःशंकिताभिधं । भोगकांक्षादिनिष्क्रांतं निःकांक्षितांगमेव हि ॥५१॥
मुनिकाये घृणाभावमंगनिर्विचिकित्सितं । मूढत्वभावलोकाचारहीनोऽमूढताभिधः ॥५२॥
सन्मार्गगतदोषस्याच्छादनं ह्युपगूहनं । धर्मादिच्चलतां स्थापनं स्थितीकरणं गिरा ॥५३॥
सधर्मणि महास्नेहवात्सल्यांगं सुनिर्मलं । जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशनं प्रभावना ॥५४॥

आदि होते हैं और निश्चय सम्यग्दर्शन आदि संयमी मुनियोंके ही होते हैं। जिस धर्मका ऊपर उल्लेख किया गया है वह धर्म व्यवहार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्रसे भी प्राप्त होता है और संयमी पुरुषोंको निश्चय सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे प्राप्त होता है अर्थात् व्यवहार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र भी धर्म माना जाता है और निश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी धर्म माना जाता है ॥४८-४९॥ व्यवहार सम्यग्दर्शनादिका स्वरूप इस प्रकार है।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वोंका भगवान जिनेन्द्रका उनके आगमका और उत्तम तपके भंडार गुरुओंका जो यथार्थ रूपसे श्रद्धान करना है उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन माना है इस सम्यग्दर्शनके निःशंकितादि आठ अंग हैं और उनका स्वरूप यह है—जिन वचनमें किसी प्रकारकी शंका न करना निःशंकित अंग है। भोगोंके अन्दर आकांक्षा न रखना निःकांक्षित अंग है। मुनि आदिके शरीरमें रोगादिकके कारण दुर्गंधि उत्पन्न हो जाने पर भी किसी प्रकारकी घृणाका न करना निर्विचिकित्सत अङ्ग है। लोकाचारके अन्दर जो भी मिथ्यादृष्टियोंके साथ मूढ़ताका व्यवहार है उसका न होना अमूढ़दृष्टि नामका अङ्ग है। असमर्थ अज्ञानी मनुष्य भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित सन्मार्गमें यदि किसी प्रकारके दोष लगावें तो उन दोषोंको आच्छादित कर देना ढक देना, उपगूहन अंग है। किसी कारणवश कोई धर्मात्मा धर्मसे चलायमान हो जाय तो उन्हें कोमलवाणीसे समझा बुझाकर वा अन्य किसी उपायसे पुनः ज्योंका त्यों धर्ममें स्थिर कर देना स्थितीकरण अंग है। जैनधर्मके धारकोंमें अत्यन्त प्रेमका रखना वात्सल्य अंग है और किसी भी उत्तम उपायसे भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य प्रगट करना आठवां अंग प्रभावना कहा जाता है ॥५०-५४॥ भगवान

समन्तभद्राचार्यने इन अंगोंका स्वरूप रत्नकरंडश्रावकाचारमें इस प्रकार कहा है—

"भगवान जिनेन्द्रने वस्तुका जो स्वरूप कहा है वह वही है और उसी प्रकारका है अन्य नहीं है और न अन्य प्रकारका है इस प्रकार निश्चल तीक्ष्ण खड्गकी धाराके समान जो सन्मार्ग—श्रेष्ठ मार्ग में संशय रहित निश्चल रूपसे रुचिका होना है वह सम्यग्दर्शनका पहिला अंग निःशंकित नामका है। कर्मोंकी क्षायोपशमिक आदि अवस्थाओंके आधीन होनेके कारण जो सुख कर्माधीन है, विनाशीक है और सदा जिसका उदय दुःखसे मिश्रित है ऐसे पापके कारण सुखमें जो किसी प्रकारके विश्वासका न रखना है अर्थात् ऐहिक विषयवासना जनित सुखमें जो किसी प्रकार लालसा नहीं रखना है वह दूसरा निःकांक्षित अंग है। रक्त मांस आदि निंदित धातु-उपधातुओंका स्थान होनेसे स्वभावसे अपवित्र भी रत्नत्रय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रसे पवित्र अर्थात् स्वभावसे निंदित भी सम्यग्दर्शन आदिसे पवित्र मुनियोंके शरीरमें किसी प्रकारकी घृणा न कर जो उनके गुणोंमें प्रीति करना है वह तीसरा निर्विचिकित्सित अंग है। मिथ्यामार्ग दुःखोंको देनेवाला है तथा उसके अनुगामी किसी प्रकारके उत्तम मार्गपर चलनेवाले नहीं इसलिये जब कभी उस मिथ्यामार्ग और मिथ्यामार्गपर चलनेवालोंकी प्रशंसाका अवसर प्राप्त हो उस समय अपनी ओरसे किसी प्रकारसे सम्मति नहीं देना न सम्बन्ध रखना और न उनके चकमामें आकर किसी प्रकारकी प्रशंसा करना चौथा अमूढ़दृष्टि अंग है। यद्यपि भगवान जिनेन्द्र द्वारा बताया गया मार्ग स्वयं शुद्ध है तथापि अत्यन्त कठिन होनेसे धारण न कर सकनेके कारण यदि कोई अज्ञानी और असमर्थ पुरुष उसकी निन्दा कर बैठे तो किसी भी उपायसे उस निन्दाको दूर करना—निन्दा न होने देना, पाँचवाँ उपगूहन अंग है किसी भी तीव्र दुःख आदि कारणोंसे धर्मात्मा मनुष्योंकी परिणति सम्यग्दर्शन वा सम्यक्चारित्रसे चल विचल हो उठी हो और वे उनसे विमुख रहना चाहते हों तो वास्तविक जैन शास्त्रके ज्ञानियोंका जो फिर से उन धर्मात्माओं-

१. इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा। इत्यकंपायसांभोवत् सन्मार्गेऽसंशया रुचिः ॥११॥ कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये। पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ॥१२॥ स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते। निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥१३॥ कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः। असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते ॥१४॥

एतैः सारैः पराष्टाँगैः सबलीभूतदर्शनं । हंति कर्मारिसन्तानं यथा भूपो बलान्वितः ॥५५॥
ज्ञानचारित्रयोर्मूलं दर्शनं भाषितं जिनैः । सोपानं प्रथमं मुक्तिधाम्नो बीजं वृषस्य च ॥५६॥
मुक्तिमार्गस्थमेवाहं तं मन्ये पुरुषोत्तमं । भोक्तारं त्रिगजल्लक्ष्म्याः स्वीकृतं येन दर्शनं ॥५७॥
महाधनी स एवात्र मतो दक्षैः परत्र च । अनर्घ्यदृष्टिसद्रत्नं हृदि यस्य विराजते ॥५८॥

को सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रके अन्दर दृढ़कर देना है यह छठा स्थितीकरण अंग है । अपने साधर्मी भाईयोंका जो हृदयमें उत्तम भाव रखकर निश्चलरूपसे यथा-योग्य आदर सत्कार करना है वह सातवाँ वात्सल्य अंग है तथा संसारमें जो बहुल-रूपसे अज्ञान अन्धकार फैल रहा है उसे यथायोग्य किसी न किसी उपायसे दूरकर जो भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य प्रकट करना है वह प्रभावना अङ्ग कहा जाता है । इन आठ अंगोंके पालक अंजन चोर आदि महापुरुषोंने अनुपम फल प्राप्त किया है और इन अङ्गोंका माहात्म्य वर्णन करते-करते यहां तक कहा गया है कि जिस प्रकार एक भी अक्षरकी कमी रखनेवाला मंत्र विषकी वेदनाको दूर नहीं कर सकता उसी प्रकार इन आठ अङ्गोंमें एक भी अङ्गसे रहित सम्यग्दर्शन भी जन्मकी संततिको नष्ट नहीं कर सकता ।

ग्रन्थकार सम्यग्दर्शनकी महिमा दिखाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार बलवान राजा शत्रुओंके समूहको भी देखते २ ही तितर-बितरकर नष्ट कर देता है उसी प्रकार सारभूत और उत्कृष्ट जिन आठ अंगोंका ऊपर वर्णन किया गया है उनसे युक्त सम्यग्दर्शन जिस समय बलवान हो जाता है उस समय वह क्षण भरमें कर्म रूप बैरियोंको जड़से उखाड़कर दूर फेंक देता है ॥ ५५ ॥ भगवान जिनेन्द्रने सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका मूल कारण सम्यग्दर्शनको ही कहा है क्योंकि बिना सम्यग्दर्शनके वे मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र माने जाते हैं तथा सम्यग्दर्शनको ही मोक्षरूपी अनुपम महलकी पहिली सीढ़ी और धर्मका बीज बतलाया है । ग्रन्थकार सम्यग्दर्शनके लिए यहां तक अपने पवित्र भाव प्रगट करते हैं कि जिस महानुभाव

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयां । वाच्यतां यत्प्रमार्जंति तद्वदंत्युपगूहनं ॥१५॥ दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः । प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितीकरणमुच्यते ॥१६॥ स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथा-पेतकैतवा । प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥१७॥ अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथं । जिनशासन-माहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥

केवलं धनमत्रैव सुखे दुःखं ददात्यहो । सम्यक्त्वचिंतमणिर्विश्वसुखं लोकत्रये सतां ॥ ५९॥
सम्यक्त्वान्नापरो बन्धुः स्वामी * स्वद्धितंकरः । स्वर्गमुक्तिकरः पुंसां पापघ्नश्च वृषप्रदः ॥६०॥
मत्वेत्यादो तदादेयं मुक्तिरामावशीकरं । हत्वा मिथ्यारिसंतानं तीर्थशादिविभूतिदं ॥६१॥
याथातथ्यपरिज्ञानं तत्त्वार्थागमयोगिनां । दैवादेवं च तज्ज्ञानं व्यवहारसमाह्वयं ॥६२॥
व्यंजनोर्जितनामा स शुद्धाक्षरनिरूपकः । द्वितीयोऽर्थसमग्राख्यः शुद्धार्थप्रतिपादकः ॥६३॥
शब्दार्थोभयपूर्णाख्यः शब्दार्थोभयसूचकः । कालाध्ययनसंज्ञोऽखिलकालाध्ययनादिगः ॥६४॥
पठनं तपसा यत्स उपाध्यानसमृद्धकः । विनयेनात्र यः पाठो विनयो मुद्रितो हि सः ॥६५॥
ख्यापनं यः स्वगुर्वादेः स गुर्वाद्यनवह्नव । बहुमानसमृद्धाख्यो नुतिपूजादिसंयुतः ॥६६॥

पुरुषने सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लिया है वही पुरुष मोक्षमार्गमें स्थित है और वही तीन लोककी लक्ष्मीका भोगनेवाला है ऐसा मैं मानता हूँ तथा जिस महापुरुषके हृदयमें अमूल्य सम्यग्दर्शनरूपी रत्न विराजमान है वही महानुभाव इस लोक और परलोकमें विद्वानोंकी दृष्टिमें महा धनवान है। उससे बढ़कर अन्य कोई धनवान नहीं ॥ ५६-५८ ॥ धन तो केवल इसी लोकमें सुख और दुःखका देनेवाला है परन्तु सम्यग्दर्शनरूपी चिंतामणि रत्न ऐसा है जिससे तीनों लोकमें सुख ही सुख मिलता है। सम्यग्दर्शनसे भिन्न न तो कोई संसारमें बन्धु है और न सदा हित करने वाला स्वामी है क्योंकि यह सम्यग्दर्शन जीवोंको स्वर्ग और मोक्षके सुखोंका प्रदान करनेवाला है समस्त पापोंका जड़से नाश करनेवाला और धर्मको प्राप्त करानेवाला है ॥ ५९-६० ॥ इसलिये ग्रन्थकार इस बातपर जोर देते हैं कि जीवोंको चाहिये कि ऐसे परम उपकारी और सर्वदा हितकारी सम्यग्दर्शनको सबसे पहिले प्राप्ति करें क्योंकि इस सम्यग्दर्शनकी सामर्थ से मुक्तिरूपी लक्ष्मी वश हो जाती है तथा मिथ्यात्वकी संतानको जड़से उखाड़कर यही सम्यग्दर्शन तीर्थंकर आदिकी अनुपम विभूतिको प्रदान करता है।

जिस ज्ञानके द्वारा जीव आदि पदार्थ, आगम और गुरुओंका यथार्थ रूपसे जानना होता है तथा यह देव है और यह कुदेव है इस बातको भी अच्छी तरह पहचान होती है वह व्यवहार नामका सम्यग्ज्ञान है तथा * व्यंजनोर्जित १ अर्थसमग्र २

* सम्यग्ज्ञान पूजामें इन आठों आचारोंका भिन्न २ रूपसे अर्थ कहा गया है। वर्तमानमें यह पूजा प्रचलित है इसलिये यहाँ वह उद्धृत नहीं की गई है।

एतैश्चाष्टविधाचारैर्यज्ज्ञानं पठ्यते बुधैः । ज्ञानाचारः स निर्दिष्टो विश्वदीपः शिवप्रदः ॥६७॥
ज्ञानेन ज्ञायते विश्वं सर्वं तत्त्वं हिताहितं । हेयाहेयौ च बंधो मोक्षौ धर्मो दुरितं परं ॥६८॥
कृत्याकृत्यं स्वरूपंच गुरुदेव श्रुतात्मनां । पात्रापात्रादिसद्दानं कुदानं स्वचिदात्मकः ॥६९॥
ज्ञानं नेत्रं जिनैः प्रोक्तं लोकालोकविलोकने । बाह्याभ्यन्तरतत्त्वादौ तद्धीनोऽन्धः एव हि ॥७०॥

शब्दार्थोभयपूर्ण ३ कालाध्ययन ४ उपाध्यानसमृद्धक ५ विनय ६ गुर्वाद्यनपह्नव ७ और बहुमानसमृद्धक ८ ये आठ प्रकारके आचार माने हैं। जहांपर शुद्ध अक्षरोंका निरूपण है वह व्यंजनोर्जित नामका आचार माना है। जहांपर शुद्ध अर्थका प्रतिपादन हो वह अर्थसमग्र नामका आचार है जहांपर शब्द और अर्थ दोनोंका सूचन हो वह शब्दार्थोभयपूर्ण नामका आचार है। जहांपर समस्त काल अध्ययनको मनाई हो, अर्थात्—जहांपर नियत समयमें अध्ययनका प्रतिपादन हो वह कालाध्ययन नामका आचार है। जहांपर तप आचरणके साथ-साथ अध्ययनका विधान हो वह उपाध्यानसमृद्धक नामका आचार है। जहांपर विनयपूर्वक पाठका पढ़ना हो वह विनय नामका आचार है। जहांपर अपने गुरु आदिकी कीर्तिका गान किया जाय वह गुर्वाद्यनपह्नव नामका आचार है और जहांपर गुरु आदिकी स्तुति और पूजा आदिका समारोह हो वह बहुमानसमृद्धक नामका आठवां आचार भेद है। विद्वानोंके द्वारा इन आठ प्रकारके आचारोंके साथ जो ज्ञान पढ़ा जाय वह ज्ञानाचार कहा जाता है यह ज्ञानाचार समस्त संसारका प्रकाश करनेवाला दीपक है और मोक्षका प्रदान करनेवाला है ॥ ६२-६७ ॥ इस सम्यग्ज्ञानके द्वारा ही समस्त संसारका ज्ञान होता है। कौन तत्व हितकारी है और कौन अहितकारी है यह पता भी इसी ज्ञानसे लगता है। यह पदार्थ त्यागने योग्य है और यह पदार्थ नहीं त्यागने योग्य है यह बात भी ज्ञान ही बतलाता है तथा यह बन्ध तत्त्व है यह मोक्ष तत्त्व है यह धर्म है यह पाप है यह कृत्य है यह अकृत्य है। देव गुरु और शास्त्रका स्वरूप यह है। पात्रको दान देना सम्यग्ज्ञान कहा जाता और कुपात्रको दान देना कुदान कहलाता है तथा आत्माका स्वरूप चैतन्य है यह सब बात भी सम्यग्ज्ञानके द्वारा ही प्रगट होती है ॥ ६८-६९ ॥ भगवान जिनेन्द्रने लोक और अलोकके देखनेमें बाह्य अन्तरंग तत्वोंके परखनेके लिये ज्ञानको ही नेत्र कहा है जिसके यह ज्ञानरूपी नेत्र नहीं है वह इस संसारमें सर्वथा अन्धा ही है—केवल आंखोंके रहते वह सूझता नहीं कहा जा

ज्ञानजालं परं ज्ञेयं पंचाक्षमत्स्यबंधने । ज्ञानसिंहो भवत्येव कामदंतिविघातने ॥७१॥
ज्ञानपाशो दृढो नृणां मनोमर्कटबंधने । ज्ञानमादित्य एवाखिलाज्ञानध्वांततारणे ॥७२॥
यत्कर्म भुज्यते विद्भिरज्ञैस्तच्च शुभं शुभं । बध्यते कर्मणात्राज्ञो विदः स्यात् कर्मनिर्जरा ॥७३॥
यत्कर्म क्षपयत्यज्ञस्तपसा भवकोटिभिः । ज्ञानी तच्च क्षणार्धेन त्रिगुप्तात्मा स संवरः ॥७४॥
ज्ञानमंत्रसमाकृष्टा ददात्यालिंगनं सतां । स्वयमागत्य मुक्तिस्त्री का कथा देवयोषितां ॥७५॥
मत्वैवं ज्ञानमाराध्यं प्रत्यहं जिनभाषितं । निःप्रमादेन यत्नेन विनयादिमुं मुक्षुभिः ॥७६॥

सकता ॥ ७० ॥ मछलियोंके बांधनेके लिए जिस प्रकार जाल रहता है उसी प्रकार स्पर्शन आदि पांचों इन्द्रियाँ मछलियां हैं और उनके बांधनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान जाल है अर्थात् पांचों इन्द्रियोंका दमन सिवाय सम्यग्ज्ञानके दूसरेसे नहीं हो सकता तथा जिस प्रकार हाथियोंके विघात करनेके लिए सिंह समर्थ होता है उसी प्रकार कामरूपी मदोन्मत्त हाथीको सर्वथा नष्ट करनेवाला यह सम्यग्ज्ञान ही बलवान सिंह है ॥७१॥ यह संसारी जीवोंका मन बन्दरके समान अत्यन्त चंचल है अर्थात् बन्दरकी जिस प्रकार प्रतिक्षण क्रिया होती रहती है उसी प्रकार इस मनको भी प्रतिक्षण क्रिया होती रहती है और उससे निरंतर कर्मबंध होता रहता है उस मनरूपी बंदरके बांधनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान पाश है तथा जिस प्रकार सूर्य समस्त अन्धकारको नष्ट कर देता है उसी प्रकार समस्त अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट करनेके लिये यह सम्यग्ज्ञान भी प्रखर सूर्य है ॥ ७२ ॥ मूलमें शुभ और अशुभके भेदसे कर्म दो प्रकारका माना है उसके फलका भोग ज्ञानी भी करते हैं और अज्ञानी भी करते हैं परन्तु आश्चर्य इस बातका है कि समानरूपसे भोग करनेपर भी अज्ञानीके तो कर्मोंका बन्ध होता है और ज्ञानी के कर्मोंकी निर्जरा होती है तथा और भी विलक्षण बात यह है कि तीव्र तप तपनेपर भी जिस कर्मको अज्ञानी जीव करोड़ों भवमें खपा सकता है उसे मनोगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्तिरूप तीनों गुप्तियोंका धारक एवं संवरसे भूषित ज्ञानी जीव आधे ही क्षणमें मूलसे उखाड़कर फेंक देता है ॥ ७३-७४ ॥ ग्रन्थकार सम्यग्ज्ञानकी सर्वोच्च प्रशंसा करते हुये कहते हैं—कि यह सम्यग्ज्ञान ऐसा अनुपम मन्त्र है कि इसके द्वारा खींची गई मोक्षस्त्री भी आपसे आप आकर प्राप्त हो जाती है फिर अन्य देवांगनाओंकी प्राप्ति हो जाना यह तो बहुत ही सुलभ बात है इसलिये सम्यग्ज्ञान तत्व हमारा परम कल्याणकारी है ऐसा अच्छी तरह जानकर

हिंसादिकृत्स्नसावद्यं मनोवाक्कायकर्मभिः । त्यज्यते यत्सुचारित्र व्यवहाराख्यमंजसा ॥७७॥
विश्वांगिरक्षकं ह्याद्यमहिंसाख्यमहाव्रतं । निवृत्तिरनृतादेर्या तत्सात्याख्यमहाव्रतं ॥७८॥
विरतिर्यत्रचौर्यादेस्तदस्तेयमहाव्रतं । सर्वनारीनिराकांक्षं ब्रह्मचर्यमहाव्रतं ॥७९॥
सर्वसंगपरित्यागमाकिंचन्यमहाव्रतं । विश्वसंकल्पहीनाद्याऽत्र मनोगुप्तिरुद्भुता ॥८०॥
शश्वन्मौनकरा सारा वाग्गुप्तिः संवरप्रदा । शरीरविक्रियाहीना कायगुप्तिरयांतिका ॥८१॥
पथान्वेषणसंजाता ईर्यासमितिरुद्भुता । निरवद्यगिरोद्भूता भाषा समितिरेवहि ॥८२॥
एषनासमितिः सर्वकृताद्याहारवर्जिता । अन्तरायातिगा षट्चत्वारिंशद्दोषनिर्गता ॥८३॥

जो महानुभाव मुमुक्षु हैं—मोक्ष प्राप्त करनेको पूरी पूरी अभिलाषा रखते हैं, उन्हें चाहिये कि वे निःप्रमादरूप यन्त्रसे अर्थात् किसी प्रकारका मनमें प्रमाद न रखकर भगवान जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित विनय आदि रूप ज्ञानका प्रतिदिन आराधन करें, कभी भी उसे चित्तसे न बिसारें ॥ ७६ ॥

मन वचन कायकी क्रियाओंके द्वारा जो हिंसादि समस्त पापोंका त्यागकर देना है वह व्यवहार चारित्र कहा जाता है। हिंसा झूठ चोरी कुशील और परिग्रह ये पांच पाप हैं और इन पांचों पापोंका त्याग अहिंसा आदि व्रत कहे जाते हैं। उन अहिंसा आदि व्रतोंका स्वरूप इस प्रकार है—

समस्त जीवोंकी रक्षा करना अहिंसा महाव्रत कहा जाता है। झूठ आदिका त्याग करना सत्यमहाव्रत है। चोरी आदिका सर्वथा त्याग अस्तौर्य महाव्रत है। स्वस्त्री परस्त्री आदि समस्त स्त्रियोंका सर्वथा त्यागकर देना ब्रह्मचर्य महाव्रत है और बाह्य अभ्यंतर समस्त प्रकारके परिग्रहका सर्वथा नाशकर देना आकिंचन्य—निष्परिग्रह महाव्रत है। गुप्तिका अर्थ रक्षा करना है और वह मनोगुप्ति वचनगुप्ति और काय-गुप्तिके भेदसे तीन प्रकारकी है। किसी भी पदार्थमें अच्छे बुरे संकल्पोंका होना मनका विषय है जहाँपर समस्त संकल्प विकल्पोंका त्याग हो वह मनोगुप्ति है। सदा मौन रखना वचनगुप्ति है इसको पालन करनेसे संवरकी प्राप्ति होती है तथा शरीरकी समस्त क्रियाओंका अभाव हो जाना अन्तकी कायगुप्ति है ॥ ७७-८१ ॥ जूरा प्रमाण जमीनको शोधकर चलना ईर्यासमिति है। निर्दोष हितकारी और परमित वचन बोलना भाषासमिति है। जहाँपर कृत कारित और अनुमोदनासे किए गए आहारका त्याग है आहारमें आनेवाले अन्तरायोंका टालना है और उद्गम आदि छयालिस ४६ दोषोंका

क्रियते यच्छुभादाननिक्षेपं प्रतिलेख्य सा। दयया दाननिक्षेपणाख्या समितिरंजसा ॥८४॥
निरीक्ष्य नयनाभ्यां यन्मलमूत्रादिकोज्झनं। विधीयते प्रतिष्ठापनाख्या सा समितिर्वरा ॥८५॥
त्रयोदशविधं होदं चारित्रं मुदितमुक्तिदं। महाधर्माकरं निश्चयरत्नत्रयकारणं ॥८६॥
सयमेन विनोत्कृष्टो (ष्टे) सम्यग्ज्ञानी (ने) क्षमो (मे) सतां। तदातु नैव मुक्तिश्री कथं न श्लाघ्यतेऽत्र सः ८७
वरं मुहूर्तमेकं हि जीवितं चरणान्वितं। तद्धीनं च वृथा वर्षकोटीकोट्यादिजीवितं ॥८८॥
दृढव्रतात्मनां कर्म प्रणश्यति पुरातनं। प्रतिक्षणं नवं नैव यात्यतो मुक्तिसंगमं ॥८९॥
वृतसिंहासनासीनं ह्यहो शक्रादयो यदि। तमेनं सेवका वाऽतो माहात्म्यं वर्णतेऽत्र किं ॥९०॥

रहितपना है वह एषणा समिति है। पुस्तक पीछी कमंडलु आदिका दयापूर्वक अच्छी तरह देखभालकर ग्रहण करना और रखना आदान निक्षेपण समिति है और नेत्रोंसे अच्छी तरह देख भालकर जमीनपर मल मूत्र आदिका क्षेपण करना प्रतिष्ठापन नामकी समिति है इसका दूसरा नाम उत्सर्ग भी है। पाँच महाव्रत तीन गुप्ति और पाँच समिति इस प्रकार यह तेरह प्रकारका चारित्र संसारके समस्त भोगोंको प्रदानकर अन्तमें मोक्ष सुख प्रदान करनेवाला है। परम धर्मका कार है और निश्चय सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयका साधक है। इस सम्यक्चारित्र के बिना सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके अन्दर यह सामर्थ्य नहीं कि वे मोक्षको प्राप्त करा सकें इसलिये सम्यक्चारित्रकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है ॥ ८२-८७ ॥ ग्रन्थकार सम्यक्चारित्रकी वास्तविक प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि सम्यक्चारित्रसे युक्त हो एक मुहूर्त ही जीवित रहना अच्छा, परन्तु उसके बिना करोड़ों वर्षपर्यंत भी जीवित रहना अच्छा नहीं। अर्थात् सम्यक्चारित्रके द्वारा ही जीवनकी सफलता नहीं हो सकती इसलिये जीवनकी सफलता बनानेके लिये सम्यक्चारित्रसहित मुहूर्तमात्र भी जीवन अच्छा परन्तु उसके बिना करोड़ों वर्ष तक भी जीता रहना अच्छा नहीं ॥८८॥ जो महात्मा दृढ़व्रतात्मा हैं अर्थात् जिनकी आत्मा सम्यक्चारित्रके अन्दर दृढ़ है उन महानुभावोंका जो कर्म पुरातन है अर्थात् पहिलेसे आत्माके साथ बन्धको प्राप्त है वह हर एक क्षणमें नष्ट होता चला जाता है और उस महापुरुषकी आत्माके साथ नवीन कर्मोंका बंध भी नहीं होता इसलिये धीरे-धीरे समस्त कर्मोंके नष्ट हो जानेसे उन्हें बहुत जल्दी मोक्षलक्ष्मीका समागम प्राप्त हो जाता है॥

जो महानुभाव चारित्ररूपी सिंहासनपर विराजमान है अर्थात् दृढ़रूपसे सम्यक्चारित्रको पालता है उसे बड़े-बड़े इन्द्र आदि भी सेवककी तरह आकर नमस्कार

सर्वद्वंद्वपरित्यक्तं निश्चितवृत्तरत्नभान् । यथेह लभते सौख्यं स्वात्मजं संख्यवर्जितं ॥९१॥
नमस्कारं च पूजां च सन्मानं लोकत्रये । तथाऽमुत्र महाशर्म स्वर्गमुक्तत्वादिकं ध्रुवं ॥ ९२ ॥
इदं रत्नत्रयं पुंसां विश्वाभ्युदयदारिदं । अनन्तपुण्यसन्तानकारणं सुखसागरं ॥ ९३ ॥
सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं सुखं वाचागोचरं । भुक्त्वा मोक्षं प्रयांत्येव रत्नत्रितयभूषिताः ॥ ९४ ॥
ज्ञात्वेति संविधेहि त्वं दृष्टिहारं हृदि द्रुतं । ज्ञानकुण्डलयुग्मं च कर्णयोः स्वस्य हे सुहृत् ! ॥ ९५ ॥
वृत्तशेखरमुत्तुंगं मुक्तिस्त्रीवशहेतवे । संचयं च तपोलक्ष्म्या निर्मलत्वं निजात्मनः ॥ ९६ ॥

करते हैं फिर इस सम्यक्चारित्रका जितना भी वर्णन किया जाय थोड़ा है ॥९०॥ जो पुरुष निश्चितरूपसे चारित्ररूपी रत्नका धारण करनेवाला है वह इसी संसारमें सर्वप्रकारके द्वंद्वोंसे रहित, अपनी आत्मासे जायमान अगणित सुखका लाभ करता है ऊर्ध्व मध्य और पाताल लोकके लोग आकर उसे नमस्कार करते हैं उसकी पूजा अभ्यर्थना करते हैं और अत्यन्त सन्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। तथा उस सम्यक्चारित्र-को पालन करनेवाले पुरुषोंको परभवमें भी महाकल्याणका कर्त्ता स्वर्ग मोक्ष आदिका सुख निश्चयसे प्राप्त होता है ॥९१-९२॥ इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूपसे सम्यग्दर्शन आदिका स्वरूप और प्रयोजन बतलाकर ग्रन्थकार अब सामान्यरूपसे रत्नत्रयकी प्रशंसा करते हैं कि यह परमपावन रत्नत्रय जीवोंको समस्त प्रकारके कल्याणरूपी फलोंका प्रदान करनेवाला है। अन्तातीत पुण्यकी परंपराका कारण है और इस रत्न-त्रयको पालन करनेवाले पुरुषोंको अविनाशी सुखसागरमें मग्न होनेका अवसर प्राप्त होता है। इसी अनुपम चमत्कारके धारक रत्नत्रयसे जिनकी आत्मा विभूषित है वे वचनसे न कहे जानेवाले सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सुखका अच्छी तरह रसास्वादनकर अन्तमें अचिंत्य अविनाशी मोक्ष सुखको प्राप्त करते हैं इसलिये ग्रन्थकार यह तात्त्विक उप-देश देते हैं कि भो मोक्षाभिलाषी जीवो! इस प्रकार रत्नत्रयकी सर्वोच्च महिमा जानकर तुम्हें चाहिये कि तुम सम्यग्दर्शनरूपी हारको शीघ्र ही अपने हृदयमें धारण करो, ज्ञानरूपी कुण्डलोंको अपने दोनों कानोंमें पहिनो और चारित्ररूपी मुकुटको अपने मस्तकपर धारण करो क्योंकि ये सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप तीनों रत्न ही मोक्षरूपी स्त्रीके वश करनेमें कारण हैं अर्थात् इसी अद्भुत रत्नत्रयकी कृपासे मोक्षरूपी लक्ष्मी वश होती है इसी रत्नत्रयकी कृपासे तपरूप लक्ष्मीका भी संचय होता है एवं नाना प्रकारके कर्ममलोंसे मलिन आत्माका निर्मलपना भी इसी रत्नत्रयके द्वारा होता है॥ जिस महानुभाव पुरुषके पास सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान

यतोऽत्रैतैर्महान् योऽलंकृतो मुक्तश्रंगना स्वयं । अत्यासक्ता वृणोत्येव तं वृषं स्त्रीव नान्यथा ॥ ९७ ॥
गता मोक्षं च ये केचिद्यांति यास्यन्ति भूतले । आराध्य केवलं तेऽत्र भव्या रत्नत्रयं तपः ॥ ९८ ॥
तुच्छश्रीर्योऽपि लोकेत्स्नी रत्नत्रितयमंडितः । यास्यत्येव क्रमान्मोक्षं तद्धीनः सबलोऽपि नः ॥ ९९ ॥
एतत् समयसर्वस्वमेतत् सिद्धांतजीवितं । एतन्मोक्षतरोर्बीजं ह्येतन्मार्गं शिवालये ॥१००॥
भत्वेत्यादौ नराधीश ! गृहाण धर्मसिद्धये । इदं रत्नत्रयं सारं पश्चान्निश्चयसंज्ञकम् ॥१०१॥

सम्यक्चारित्ररूपी निर्मल अलंकार मौजूद है उसी ज्ञानवान महानुभावपर मोक्षरूपी स्त्री स्वयं आकर रीझती है एवं जिस प्रकार कोई खास स्त्री खास पुरुषको वरती है उसी प्रकार मुक्ति स्त्री भी उसे स्वयं आकर वरती है । किन्तु जिनके पास यह अनुपम रत्नत्रय नहीं वे कितना भी प्रयत्न करें मोक्षरूपी स्त्री उनकी ओर ताककर भी नहीं देखती ॥९७॥ आजतक जिन महानुभावोंने मोक्षरूपी लक्ष्मीको प्राप्त किया है और अनादि अनन्त संसारमें आगे जाकर उसे प्राप्त करेंगे वह केवल इसी रत्नरूपी तपकी आराधनाका फल है—रत्नत्रयरूप तपके आचरणसे ही मोक्षलक्ष्मी प्राप्त हो सकती है ॥९८॥ आचार्य इस बातका [illegible] है जिस प्रकार निर्बल भी धनवान पुरुषपर स्त्री आसक्त हो जाती है उस प्रकार बलवान होनेपर भी निर्धन पुरुषपर वह नहीं रीझती उसी प्रकार कोई जीव कितना भी निर्बल क्यों न हो यदि वह सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयसे विभूषित है—सम्यग्दर्शन आदि रत्न उसके पास है तो वह नियमसे क्रमसे मोक्षको प्राप्त करता है किन्तु जो पुरुष उक्त रत्नोंसे रहित है वह कितना भी विशिष्ट बलवान क्यों न हो मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता ॥९९॥ समय शब्दका अर्थ आत्मा भी है और शास्त्र भी है और ग्रन्थकार रत्नत्रयकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यह रत्नत्रय ही आत्मा वा शास्त्रका सर्वस्व है अर्थात् आत्माका सारभाग रत्नत्रय ही है क्योंकि कर्मरहित अवस्थामें स्वरूपमें लीन होता हुआ आत्मा रत्नत्रयके अन्दर ही आकर लीन होता है तथा शास्त्रका सारभाग भी रत्नत्रय है क्योंकि जिस शास्त्रमें रत्नत्रयका वर्णन है वही शास्त्र सुशास्त्र है किन्तु जिसमें रत्नत्रयका वर्णन नहीं वह शास्त्र नहीं कुशास्त्र है तथा यही रत्नत्रय सिद्धान्तका प्राण है क्योंकि सिद्धान्तका अर्थ शास्त्रका निचोड़ भाग है जो निचोड़ भाग रत्नत्रयस्वरूप न हो वह सिद्धान्त नहीं हो सकता । तथा यह रत्नत्रय ही मोक्षरूपी वृक्षका उत्पन्न करनेवाला बीज है और मोक्षस्थानमें ले जानेवाला रत्नत्रय ही उत्तम मार्ग है । इस प्रकार व्यवहार रत्नत्रयका संक्षेपसे स्वरूप वर्णन कर राजा वैश्रवणसे मुनिराज सुगुप्तने कहा—हे राजन् !

शृणु भूप ! प्रवक्ष्येऽहं साक्षान्मुक्तिनिबंधनं । कृत्स्नकर्मादिनिर्मुक्तं दृगादित्रयमुत्तम् ॥१०२॥
एवं लोकत्रयीनाथो ह्यनन्तगुणसागरः । ध्यानगम्यो निजात्मास्ति सिद्धसादृश्य एव हि ॥१०३॥
एवं या क्रियते श्रद्धाभ्यन्तरे परमात्मनि । दर्शनं निश्चयाख्यं तत् परं मुक्तिवशीकरम् ॥१०४॥
ज्ञानमूर्ति परात्मानं लोकालोकविभासकम् । मुक्त्वा न विद्यते ज्ञानमन्यन्मत्वेति धीधनैः ॥१०५॥
क्रियते यत्परिज्ञानं स्वसंवेदनचिदात्मनः । केवलज्ञानसंकर्तृ तज्ज्ञानं निश्चयाभिधं ॥१०६॥
वृत्तरूपोऽयमात्मास्ति निष्क्रियोऽतिनिरंजनः । कर्मास्रवपरित्यक्तो विदित्वाऽत्रेति निश्चयात् ॥१०७॥
अंतरंगे स्वयं स्वस्य यदाचरणमंजसा । ध्यानेन क्रियते तस्मिन्निश्चयचारित्रमद्भुतं ॥१०८॥

ऊपर कही गई रीतिके अनुसार व्यवहार रत्नत्रयका स्वरूप अच्छी तरह समझकर तुम्हें परम धर्मकी सिद्धिके अवश्य इस रत्नत्रयको धारण करना चाहिये क्योंकि यह व्यवहार रत्नत्रय भी संसारमें सार पदार्थ है तथा इस व्यवहार रत्नत्रयको पूर्णताके बाद निश्चय रत्नत्रय धारण करना चाहिये । अब हे नरनाथ ! मैं निश्चय रत्नत्रयका भी स्वरूप वर्णन करता हूँ तुम ध्यानपूर्वक सुनो—क्योंकि यह सम्यग्दर्शन आदि निश्चय रत्नत्रय साक्षात् मोक्षका कारण है समस्त कर्म आदिको मूलसे उखाड़कर नष्ट करनेवाला है और परम उत्तम है ॥ १००-१०२ ॥

अपना निजी आत्मा ही तीन लोकका नाथ है । अनन्त अविनाशी गुणोंका समुद्र हैं । ध्यान मार्गसे उसका स्वरूप जाना जाता है एवं जिस प्रकार समस्त कर्मोंसे रहित सिद्धोंका स्वरूप शुद्ध है उसी प्रकार हमारी आत्मा भी शुद्ध है इस प्रकार अपने अन्तरंग परमात्मामें जो श्रद्धान होना है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है । यह निश्चय सम्यग्दर्शन परम उत्कृष्ट है और मोक्षलक्ष्मीका संगम करने वाला है ॥ १०३-१०४ ॥ परमात्मा उत्कृष्ट आत्मा ज्ञानस्वरूप है और वह लोक एवं अलोकके समस्त पदार्थोंका प्रकाश करनेवाला है इस उत्कृष्ट आत्माको छोड़कर ज्ञान कोई पदार्थ नहीं किन्तु वह उत्कृष्ट आत्मा ही ज्ञान है ऐसा विचारकर जो स्वसंवेदन स्वरूप आत्माका ज्ञान करना है वही निश्चय सम्यग्ज्ञान है एवं यह निश्चय सम्यग्ज्ञान केवलज्ञानको प्राप्त करानेवाला है ॥ १०५-१०६ ॥ यह निजात्मा सम्यक्चारित्र-स्वरूप है । हलन-चलन आदि क्रियासे रहित होनेके कारण स्वभावसे ही निष्क्रिय है । कर्मजनित कालिमासे रहित होनेसे निरंजन है और कर्मोंके आवागमनसे रहित है । ऐसा वास्तविक रूपसे जानकर अन्तरंगमें ध्यानके द्वारा जो स्वयं अपना आचरण करना है वह परमाश्चर्यकारी निश्चयचारित्र माना गया है ॥ १०७-१०८ ॥ ग्रन्थ-

इदं रत्नत्रयं बाह्यक्रियाचिंतातिदूरगं । सर्वरागादिहीनं तद् भवनिर्वाणकारणं ॥१०९॥
वीतराग मुनीद्राणां जायतेऽनंतशर्मदं । ध्यानगम्यं महानर्घ्यं रागिणां न कदाचन ॥११०॥
अस्यात्राराधनेनैव घातिकर्माणि धीमतां । प्रणश्यंति क्षणार्धेनतमांसि भानुना यथा ॥१११॥
परात्मध्यानयोगेनेदं संपूर्णेषु लभ्यते । तस्मात्तदर्थिनो ध्यायंतु चिदात्मानमंजसा ॥११२॥
यतो ध्यानाग्निना शीघ्रमनंतकर्मराशयः । भस्मीभावं प्रयांत्याशु काष्ठानि च यथाग्निना ॥११३॥
तस्माद् भूप ! त्रिधा चेदं सुरत्नत्रयसेवनं । स्वीकुरु ध्यानयुक्तं त्वं हत्वा मोहमहाभटं ॥११४॥

इति निरुपमधर्मारामसूलं सुखाब्धिं दुरिततिमिरभानुं दुःखदावाग्निमेघं ।
रहितसकलदोषं भव्यसेव्यं सुरत्नत्रितयमसममार्या आचरंतु प्रयत्नात् ॥११५॥

कार रत्नत्रयकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस रत्नत्रयका ऊपर वर्णन किया गया है वह रत्नत्रय बाह्य क्रियाओंकी चिन्ता आदिसे रहित है अर्थात् जबतक चित्तमें बाह्य क्रियाओंकी चिन्ताका समावेश रहेगा तबतक कभी भी रत्नत्रयका पालन नहीं हो सकता । समस्त प्रकारके राग आदि भावोंसे रहित है और जिस भवमें रत्नत्रयकी प्राप्ति हुई उसी भवमें वह मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥१०९॥ यह निश्चय रत्नत्रय अनंत कल्याणका प्रदान करनेवाला है । ध्यानके द्वारा जाना जाता है । महान् अमूल्य है और वीतरागी मुनियोंके ही होता है रागियोंके कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥११०॥ जिस प्रकार सूर्यके उदयसे गाढ अन्धकार भी क्षणभरमें तितर-बितर होकर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इस संसारमें रत्नत्रयके आराधन करनेसे योगियोंके ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातिया कर्म भी क्षण-मात्रमें नष्ट हो जाते हैं ॥१११॥ जो महानुभाव उत्कृष्ट आत्मा परमात्माका ध्यान धरते हैं उन सबको यह पवित्र रत्नत्रय प्राप्त होता है इसलिए जो पुरुष इस परम हितकारी रत्नत्रयके वांछक हैं उन्हें चाहिये कि अवश्य चैतन्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करें । क्योंकि जिस प्रकार अग्निकी तीव्र ज्वालासे अगणित भी काष्ठ देखते-देखते राख हो जाता है उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्नि से अनन्ते भी कर्मपिंड देखते-देखते भस्म हो जाते हैं इसलिये हे राजन् ! तुम्हारे लिए यह उपदेश है कि तुम मोहरूपी महायोधाको नष्टकर चैतन्यस्वरूप आत्माके ध्यानके साथ व्यवहार और निश्चयके भेदसे जो दो प्रकारका रत्नत्रय ऊपर बतलाया है उसका अवश्य सेवन करो, बिना उसका सेवन किए कभी भी संसारसे उद्धार नहीं हो सकता है ॥११३-११४॥

इस प्रकार परिच्छेदके अन्तमें ग्रन्थकार प्रेरणा करते हैं कि हे आर्यो ! मोक्षा-

सर्वानर्थहरं परार्थजनकं स्वर्मुक्तिहेतुंपरमंतातीतगुणार्णवं भवभयप्रध्वंसकं प्रत्यहं ।
विश्वासैकनिबंधनं जिनपतिश्रीमल्लिनाथं भजे वंदे तद्गतिहेतवे च परमं मूर्ध्ना सुरत्नत्रयं ॥११६॥

भिलाषी सज्जनों ! तुम्हें अवश्य प्रयत्नपूर्वक रत्नत्रयका आराधन करना चाहिये क्योंकि यह रत्नत्रय निरुपम पदार्थ है कोई भी पदार्थ संसारमें इसकी तुलना नहीं कर सकता। धर्मरूपी मनोहर बगीचेका उत्पादक कारण है क्योंकि रत्नत्रयके सेवनसे ही धर्मरूपी आराम फलता फूलता है जिस प्रकारका अन्धकार मेंटनेवाला सूर्य है उसी प्रकार यह रत्नत्रय भी पापरूपी अन्धकारके नाश करनेके लिए सूर्य समान है। दावानलको जिस प्रकार मेघ शान्त कर देता है उसी प्रकार यह रत्नत्रय दुःखरूपी दावानलको बुझानेवाला है। समस्त प्रकारके दोषोंसे रहित निर्दोष है। मोक्षाभिलाषी भव्यजीव सदा इसकी सेवा करते हैं एवं असाधारण है हर एकको प्राप्त नहीं हो सकता। मैं भगवान मल्लिनाथको मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ क्योंकि भगवान मल्लिनाथ समस्त प्रकारके अनर्थोंको जड़से उखाड़कर फेंकनेवाले हैं। उत्कृष्ट प्रयोजनको प्रदान करनेवाले हैं स्वर्ग और मोक्षको देनेवाले हैं। उत्कृष्ट हैं। अनंत गुणोंके समुद्र हैं संसारके समस्त भयोंको सर्वथा नष्ट करनेवाले हैं। विश्वासके प्रधान कारण हैं और आठों कर्मोंके जीतनेवालोंमें प्रधान हैं। तथा भगवान मल्लिनाथने जिस मार्गका अनुसरण किया है उसी मार्ग और उसी स्वरूपको प्रदान करनेवाले सर्वोत्कृष्ट रत्नत्रयको भी मैं मस्तक झुकाकर नमस्कर करता हूं क्योंकि यह रत्नत्रय ही समस्त प्रकारके अनर्थोंका सर्वथा नाश करनेवाला है। उत्कृष्ट प्रयोजनका उत्पादक है। स्वर्ग और मोक्षका प्रदान करनेवाला है। उत्कृष्ट है अनंत गुणोंका भण्डार है समस्त संसारके भयको नष्ट करनेवाला है और विश्वासका एक प्रधान कारण है ॥११५-११६॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति विरचित मल्लिनाथ पुराणमें रत्नत्रयका वर्णन करनेवाला पहिला परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ १ ॥

●

द्वितीयः परिच्छेदः

मोहमल्लारिहंतारं कामाक्षारातिघातिनं । श्रीमल्लिनाथं तीर्थेशं स्तौमि सच्छक्तिसिद्धये ॥१॥
अथ श्रुत्वा मुनेर्वाचं रत्नत्रितयसूचिकां । वैराग्यमातरं राजा प्राह तज्जरणेऽक्षमः ॥२॥
आर्तध्यानपरैर्नष्टबुद्धिभिर्मादृशैर्विभो । मोहिभिर्विषयासक्तैर्गृहव्यापारभारितैः ॥३॥
यत्र तद्व्यवहाराख्यमनुष्ठातुं न शक्यते । तत्र दक्षं कथं ज्ञात्वाऽत्यन्तेन निश्चयाभिधं ॥४॥
गजेन्द्रभारमुद्धर्तुं यथा न शक्यते बुधैः । तथा मुनीन्द्रभारं च निःशक्तैर्मादृशैः प्रभो ॥५॥
अतः स्वामिन् ! कृपां कृत्वा मदनुग्रहहेतवे । क्रमाद्रत्नत्रयप्राप्त्यै तादृक्पक्षोपदेशनं ॥६॥
पूजोपवाससंभूत येन मादृग्विधैर्जनैः । विभूत्या क्रियते तस्योपासनं पूजनादिभिः ॥७॥

संसारमें मोहनीयकर्म अत्यन्त बलवान है जिन्होंने बलवान बैरी मोहनीय-कर्मरूपी मल्लको सर्वथा नष्ट कर दिया है। जो भयंकर शत्रु कामदेव और इन्द्रियोंका पूर्णरूपसे घात करने वाले हैं और तीर्थंकर हैं ऐसे श्रीमल्लिनाथ भगवानको उन्हींकी समस्त शक्ति प्राप्त करनेके लिये मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥१॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नत्रयके स्वरूपको जतलानेवाले वैराग्यके उत्पादक मुनिराज सुगुप्तके वचन सुन राजा वैश्रवणने उक्त प्रकारके रत्नत्रयके पालन करनेमें अपनेको असमर्थ समझा इसलिये विनयपूर्वक यह यह कहने लगा—कृपानाथ ! मुझ सरीखे मनुष्य सदा आर्तध्यानमें लीन रहनेवाले हैं सदा हम लोगोंकी बुद्धियाँ विनष्ट सरीखी रहती हैं। धन कुटुम्ब आदिमें सदा मोही रहते हैं। पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर सदा हमारी परिणति झुकी रहती है और घरके व्यापारोंमें हम सदा संलग्न बने रहते हैं इसलिये भगवन्! जब व्यवहार रत्नत्रयके पालन करनेके लिये भी हमारी सामर्थ्य नहीं तब हम अत्यन्त कठिन निश्चय रत्नत्रय-का पालन तो कर ही नहीं सकते क्योंकि यह एक सुनिश्चित बात है कि जिस महा भारको गजेन्द्र उठा सकता है उसे कितना भी प्रयत्न क्यों न किया जाय बैल नहीं उठा सकता। उसी प्रकार जिस चारित्रके महा भारको बड़े-बड़े मुनीन्द्र उठा सकते हैं उसे मेरे समान असमर्थ पुरुष नहीं उठा सकते। अर्थात् निश्चय रत्नत्रयका पालन करना बड़े-बड़े मुनियोंका काम है मुझ सरीखा असमर्थ पुरुष उस निश्चय रत्नत्रयका पालन नहीं कर सकता। इसलिये हे कृपा नाथ! मेरे कल्याणके निमित्त मुझे उस रत्नत्रयकी प्राप्तिका कृपाकर ऐसा उपदेश दीजिये पूजा और उपवास आदिके द्वारा मुझे क्रम से प्राप्त हो जाय क्योंकि मेरे समान पुरुष पूजन आदिके द्वारा ही बड़ी

निशम्येति यमी प्राह यथोक्तं तदुपासनं। यदि कर्तुं समर्थो न तर्हि द्विर्मिधिमाचर ॥८॥
समाकर्ण्य नृपाल यथाम्नायं यथागमं। तत्पूजादिक्रमं सर्वं देशयामि व्रताप्तये ॥९॥
भद्रे भाद्रपदे मासि शुक्लपक्षे वृषाकरे। द्वादशीदिवसे सारे भवेद्भव्यो व्रतोद्यतः ॥१०॥
धौतांवरधरा धीमान् जिनध्यानपरायणः। पूजोपलक्षितो भक्त्या यायाच्छ्रीमज्जिनालयं ॥११॥
तत्र तीर्थेशसिद्धान्तगुरुन्नत्वा प्रपूज्य च। पुनः स्वगृहमागत्य दानं दद्यान्मुनीशिने ॥१२॥
निर्दोषं प्रासुकं शुद्धं मधुरं तृप्तिकारणं। ततो भुंजीत चाहार शेषं स सपरिच्छेदः ॥१३॥
प्रत्याख्यानोद्यतो भूत्वा ततो गत्वा जिनालयं। गुरुन्नत्वा त्रिरात्रानशनं मुदा दधाति सः ॥१४॥

भक्तिपूर्वक और ठाट बाटसे उस रत्नत्रयकी उपासना कर सकता है ॥२-७॥ राजा वैश्रवणके ऐसे भक्तिसे गद्गद् वचन सुनकर परम संयमी मुनिराज सुगुप्तने कहा—

राजन्! यदि तुम ऊपर कहे गये व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयका पालन नहीं कर सकते तो आम्नाय परिपाटीमें प्रचलित है और शास्त्रोंके अन्दर कहा गया है उस रत्नत्रयको जो कुछ विधि है उस विधिको ही तुम करो। सुनो उस रत्नत्रयकी पूजा आदिके क्रमका विधान जिस तरहका है मैं उसे बतलाता हूँ। उस विधिके आचारण करनेसे ही तुम्हें नियमसे व्रतोंकी प्राप्ति होगी। वह विधि इस प्रकार है—

कल्याणकारी भादों मासके धर्मके स्थान स्वरूप शुक्ल पक्षकी द्वादशीके पवित्र दिनसे मोक्षाभिलाषी भव्यको रत्नत्रय व्रतका पालन करना चाहिये। जो महानुभाव रत्नत्रय व्रतका आचरण करें उसे चाहिये कि वह उस दिन पवित्र स्वच्छ वस्त्र धारण करे। अपने चित्तमें प्रतिक्षण भगवान जिनेन्द्रका ही ध्यान रक्खे एवं पूजाकी महामनोहर सामग्री लेकर भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्रके मन्दिरमें जाय ॥८-११॥ मन्दिरमें जाकर भगवान जिनेन्द्र आगम और गुरुओंको उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये और पूजा करनी चाहिये वहाँसे अपने घर आकर मुनियोंके लिये निर्दोष प्रासुक शुद्ध मधुर और तृप्तिका करनेवाला पवित्र आहारदान देना चाहिये उसके बाद जो आहार बचे वह अपने भाई बन्धु आदि कुटुम्बियोंके साथ सानन्द खाना चाहिये ॥१२-१३॥ आहार आदिके आरम्भमें अनेक दोषोंका होना सम्भव है इसलिए उन दोषों के प्रत्याख्यानकी अभिलाषासे आहार करके बाद पुनः जिन मन्दिरमें जाना चाहिए वहाँ जाकर भले प्रकार गुरुओंको नमस्कार करना चाहिए और तीन दिन

नयेन्निशामसौ तत्र स्मरन् रत्नत्रयं हृदे। प्रातः सामायिकं कुर्याज्जिनादीनां च पूजनं ॥१५॥
गुरोः पुरस्सरो भूत्वा स्वामिन् ! रत्नत्रयाचनं। वितनोमीति भक्त्या यतीशं पृच्छेद्व्रती स्फुटं ॥१६॥
ततस्तेनाप्यनुज्ञातो गुरुणा हितमिच्छुना। आरभेत प्रमोदेन तत्सपर्यां परामिति ॥१७॥
आदौ संपूज्य तीर्थेशान भक्तया तत्पुरतः पुनः। लिखेदष्टदलं पद्मं स्थालादौव शिलातले ॥१८॥
कर्णिकायां लिखेत्स्वर्णलेखिन्या चंदनद्रवैः। ॐह्रींकारह्रींकाराढ्यं सम्यग्दर्शनं परं ॥१९॥
पत्रे स्वस्य लिखेन्निःशंकिताद्यंगानि धीधनः। बीजाक्षरयुतान्यष्टौ प्रागुक्तान्यर्चनाय सः ॥२०॥
ततः सूत्रोदितं धीमान् मंत्रमुच्चारयन्मुदा। पूजनं विधिवद्दृष्टेर्विदध्याद्बहुसंपदा ॥२१॥

रात्रि पर्यंत बड़े हर्षके साथ अनशन व्रतका पालन करना चाहिए। उस रात्रि को उसे मन्दिरमें ही रहना चाहिए और सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रयका हृदयमें चिन्तवन करना चाहिए। प्रातःकाल उठकर सामायिक करना चाहिए और पीछे भगवान जिनेन्द्र आदिकी पूजाके समारोहमें लग जाना चाहिए। जिस समय भगवान् जिनेन्द्र आदिकी पूजन करना समाप्त हो चुके उसके बाद गुरुके पास आना चाहिए और भक्तिपूर्वक उनके सामने खड़ा होकर व्रतीको उनसे यह पूछना चाहिये कि हे भगवन् ! मैं रत्नत्रय व्रतकी पूजाका आचरण करना चाहता हूँ आप आज्ञा दीजिये। जब सर्वथा हितकारी मार्गका उपदेश देने वाले गुरुकी रत्नत्रय व्रतकी पूजाके लिये आज्ञा मिल जाय उस समय व्रतीको चाहिये कि वह बड़े आनन्दके साथ रत्नत्रय व्रतकी परमोत्कृष्ट पूजाका आरम्भ कर दे ॥१४-१७॥

जो महानुभाव रत्नत्रय व्रतकी पूजाका प्रारम्भ करना चाहें उन्हें चाहिये कि वे सबसे पहले तीर्थंकर भगवान् जिनेन्द्रकी पूजाका प्रारम्भ करें और उन्हींके सामने भक्तिपूर्वक बैठकर किसी थाल आदिमें वा शिलाके मध्यमें आठ दल (पांखुड़ी) का कमल लिखें। चंदनका द्रव बनाकर सुवर्णमयी लेखनीसे उस कमलकी कलीके मध्य भागमें ॐ ह्रीं बीजाक्षरोंके साथ सम्यग्दर्शन शब्द लिखें तथा उस कमलकी आठों पांखुड़ियोंमें पहिले विस्तारसे कहे गए निश्शंकित आदि आठों अंगोंको बीजाक्षरोंके साथ पूजाके लिये जिस समय यह कमलाकार यंत्र तैयार हो चुके उस समय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अष्टांग सम्यग्दर्शन ! अत्रावतार, अवतर स्वाहा। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। इस प्रकार आगममें कहे गये मंत्रोंका सानंद उच्चारणकर विपुल संपत्तिके साथ विधिपूर्वक

प्रपूज्याथ श्रुतं भक्तया भूत्या चाष्टविधार्चनं । सम्यग्ज्ञानमथोद्धृत्य पंकजस्य दलेष्वलं ॥२२॥
पश्चात्तदर्चनं भूत्या कुर्यात्सविधिपूर्वकं । नीरादिफलपर्यंतद्रव्योर्घनिर्मलैः करैः ॥२३॥
ततः सद्गुरुपादाब्जौ पूजयित्वा महार्चनैः । त्रयोदशप्रकारस्य चारित्रस्यातिभक्तितः ॥२४॥
प्रागुक्तस्य समालिख्य यंत्रं पश्चान्मुदार्चयेत् । रत्नत्रय विधानोक्तविधिना बहुसंपदा ॥२५॥
अर्घमंते समुत्तार्यं फलपक्वान्नशोभितं । त्रिः परीत्य ततः कार्यास्तद्विध्युक्तजपोत्कार ॥२६॥
पूजां रत्नत्रयस्येति कृत्वा भक्तया मुदा गुरोः । मुखात्कथानकं रम्यं श्रोतव्यं व्रतधारिभिः ॥२७॥
एवं दिनत्रयेत्युच्चैर्विधेयं पूजनं परं । यंत्राणां च जिनादीनां बुधैः कालत्रये शुभं ॥२८॥

सम्यग्दर्शनकी पूजा करना प्रारम्भ कर दे ॥१८-२१॥ इस प्रकार सम्यग्दर्शनकी पूजाके बाद व्रतीको श्रुतज्ञानकी आठों द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक पूजाका प्रारंभ करना चाहिए। सम्यग्दर्शनके समान किसी थाल आदिमें आठ पांखुड़ियोंका कमल लिखना चाहिए। चंदनका द्रव बनाकर सुवर्णकी कलीके मध्यभागमें ॐ और ह्रीं बीजाक्षरोंके साथ सम्यग्ज्ञान शब्द लिखना चाहिए और उसको आठों पांखुड़ियोंमें बीजाक्षर मंत्रोंके साथ व्यंजनोजित आदि आठ आचारोंको लिखना चाहिए। इस प्रकार जिस समय सम्यग्ज्ञानका मंत्र तैयार हो जाय उस समय जलसे लेकर फल पर्यंत निर्मल और उत्कृष्ट अष्ट द्रव्योंसे विधिपूर्वक उस मंत्रकी पूजा करनी चाहिए ॥२२-२३॥ जिस समय सम्यग्ज्ञानके यंत्रकी पूजा समाप्त हो चुके उस भक्तिपूर्वक उत्तम तप के स्थान परम गुरुओंका उत्तमोत्तम पूजाकी सामग्रीसे पूजाकर ऊपर विस्तारसे बतलाए गये तेरह प्रकार चारित्रका भक्तिपूर्वक यंत्र लिखना चाहिए और जब वह यंत्र लिखकर समाप्त हो जाय उस समय रत्नत्रय पूजाके विधानमें जो भी उस सम्यक्चारित्रके यंत्रकी पूजाकी विधि कही गई है उसके अनुसार भक्तिपूर्वक विपुल आयोजनके साथ उस यंत्रकी पूजा करनी चाहिए ॥२४-२५॥ इस प्रकार रत्नत्रय विधानके बाद अन्तमें भांति भांतिके फल और पक्व अन्नोंसे शोभित अर्घ—आरती उतारनी चाहिए और रत्नत्रय यंत्रोंकी तीन बार प्रदक्षिणा देकर रत्नत्रय विधानमें जो जप शास्त्रमें कहे गये हैं उन जापों को जपना चाहिये ॥२६॥ इस प्रकार भक्ति-

---

१. मिथ्या दुष्कृतमिधानमभिव्यक्तप्रतिक्रिया प्रतिक्रमणं ॥३॥ कर्मवशप्रमादोदयजनितं मिथ्या मे दुष्कृतमित्येवमाद्यभिव्यक्तः प्रतिकारः प्रतिक्रमणमित्युच्यते अर्थात् कर्मोंके अधीन प्रमादके उदयसे जायमान जो भी मेरे अशुभ कर्मका उदय हुआ हो वह मिथ्या हो इस प्रकार उस दोषके प्रतीकारका चिंतवन प्रतिक्रमण है। राजवार्तिकालंकार पृष्ठ संख्या २४४।

महाभिषेकमत्युच्चैर्जिनागारे व्रतान्वितैः । कर्तव्यं सह संघेन महोत्सवपुरस्सरं ॥२९॥
गृहारंभाखिलं त्यक्त्वा पूजावश्यकतत्परः । धर्म्यध्यानेन तत्रासौ तिष्ठेत्त्रयमहर्निशं ॥३०॥
पर्वण्यस्मिन् विधातव्यःस्वशक्तया विविधोत्सवः । सर्वा ग्यभयदानादिगीतनृत्यादिभिर्बुधैः ॥३१॥
मौक्तिकत्रितयं रत्नत्रितयस्मरणहेतवे । व्रती तदा प्रभृत्येव धारयेद्दक्षिणे करे ॥३२॥
अथ यंत्रजिनादीना कृत्वार्चां प्रतिपद्दिने । पंचत्रिंशति (?) भेदोरुपक्वान्नैरर्चयेन्मुदा ॥३३॥
ततस्त्रिविधपात्रेभ्यो दानं दत्त्वा यथाविधि । प्रासुकं मधुरं भक्तया पारणं तनुयात्ततः ॥३४॥
शुद्धरत्नत्रयस्फारभक्तिरागवशीकृतः । पारणे सोऽप्यहोरात्रं देवगेहेऽतिवर्तयेत ॥३५॥

पूर्वक बड़े समारोहसे रत्नत्रयकी पूजाकर रत्नत्रय व्रतको धारण करने वाले महापुरुषको गुरुके पास जाना चाहिये और उनके श्रीमुखसे आत्माका कल्याण करने वाला आगम का स्वरूप आनन्दपूर्वक सुनना चाहिए । इस रीतिसे जो पुरुष रत्नत्रय व्रतके पालन करने वाला है उसे तीनों दिन अर्थात् त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णमासीके दिन प्रातःकाल मध्याह्न काल और सायंकाल रत्नत्रयके यंत्रों और जिन आदिकी बड़े समारोहसे शुभ और उत्कृष्ट पूजन करनी चाहिए । तथा इस प्रकार पूजाके बाद व्रतधारियोंको जिन मन्दिरके अन्दर अपने संघको साथ ले महान् उत्सवके साथ महा अभिषेक भी करना चाहिए ॥२७-२९॥ रत्नत्रय व्रत धारण करने वालोंका यह खास कर्तव्य है कि वे तीन दिन तक समस्त गृह सम्बन्धी आरम्भोंका त्यागकर बराबर जिन मन्दिरके अन्दर रहें और वहां पूजा और आवश्यक कृत्योंमें दत्तचित्त हो धर्मध्यानसे काल व्यतीत करें ॥३०॥ समस्त प्राणियोंको अभयदान आदि देकर गीत नृत्य आदि कराकर व्रतीको इस महान् पर्वमें अपनी शक्तिके अनुसार नाना प्रकारका उत्सव करना चाहिए ॥३१॥ जो पुरुष रत्नत्रय व्रतका आचरण करने वाला है उसे चाहिए कि वह रत्नत्रय व्रतके बाद उस रत्नत्रयके स्मरणके लिए अपने दक्षिण हाथमें तीन मोतियोंको धारण करे ॥३२॥ इस प्रकार रत्नत्रयके यंत्र और जिनेन्द्र आदिकी त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीन दिन पर्यंत भक्तिपूर्वक पूजाकर प्रतिपदाके दिन भी पैंतीस (छत्तीस) प्रकारके व्यंजनोंसे आनन्दपूर्वक उनकी पूजा करे ॥३३॥ उसके बाद वह व्रती घर आवे और उत्तम मध्यम जघन्य तीनों प्रकारके पात्रोंको यथायोग्य दान देकर प्रसन्नतासे प्रासुक और मधुर भोजनसे पारणा

---

१. रत्नत्रयके यन्त्र ताम्रपत्रपर खिचे हुए मन्दिरमें पाये जाते हैं अतः वहां उनके लिखनेकी आवश्यकता नहीं । १ संस्कृत रत्नत्रय पूजामें रत्नत्रयकी जापोंका विस्तारसे उल्लेख है ।

विस्तरेण मयोक्तैषां पूजायुक्तिः परस्य च । प्रोच्यमाना समासेनाऽधुना सा श्रूयतां नृप ॥३६॥
अरनाथमल्लिसन्मतिमुव्रतानां जिनेशिनां । भक्तया बिंबत्रयं दक्षः स्नपयेत्स्नायुक्तिभिः ॥३७॥
तत्पुरः पूर्ववद्रत्नत्रयमुद्घृत्य भक्तितः । पूजयाशु यथाशक्त्या युगपत्पूजयेत्ततः ॥३८॥
अहो भाद्रपदाख्योयं मासोनेऽक्रव्रताकरः । धर्महेतुपरो मध्येऽन्यमासानां नरेंद्रवत् ॥३९॥
तस्मात्त्यक्त्वा गृहारंभमस्मिन् मासि विधीयते । पूजाव्रतोपवासाद्यैः सुधर्मोच्चाघनाशनं ॥४०॥
अनेन विधिना माघे मासि चैत्राभिधे पुनः । व्रतं रत्नत्रयस्येदं कर्तव्यं भुक्तिमोक्षदं ॥४१॥
उपवासत्रयं कर्तुमेऽशक्ता भक्तितत्पराः । ते कुर्वंति यथाशक्त्येहैकसत्प्रोषधादिभिः ॥४२॥

करे । उसके बाद शुद्ध रत्नत्रयकी तीव्र भक्ति और प्रेमसे जिसकी आत्मा गद्‌गद् है ऐसा वह रत्नत्रय व्रतका आचरण करनेवाला व्रती पारणाके दिनके अवशिष्ट समयको और समस्त रात्रिको जिनमंदिरमें ही जाकर व्यतीत करे ॥३४-३५॥ इस प्रकार हे राजन् ! तुम्हारे सामने यह रत्नत्रयकी पूजाका विधान विस्तार से कहा है । तुम्हारेसे भिन्न दूसरे पुरुषके लिये वह संक्षेपसे कहा जा सकता है । वह संक्षेपसे कहा जानेवाला रत्नत्रयका विधान इस प्रकार है । तुम सुनो—

जो पुरुष रत्नत्रय व्रतका पालन करनेवाला है उसे भगवान अरहनाथ मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ इन तीनों भगवानोंकी प्रतिमाओंका जिसरूपसे शास्त्रमें अभिषेकका विधान लिखा हुआ है उस विधानसे भक्तिपूर्वक अभिषेक करना चाहिये । तथा इन तीनों प्रतिमाओंके सामने पहिलेके समान भक्तिपूर्वक रत्नत्रय यंत्रोंको लिखकर रख देना चाहिए और एक साथ सबका पूजन करना चाहिए । इस रूपसे भी रत्नत्रयका विधान संक्षेपसे माना गया है । रत्नत्रयका विधान भाद्रपद माससें बताया गया है । इसलिए ग्रन्थकार भाद्रपद मासकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार मनुष्योंमें श्रेष्ठ राजा माना जाता है उसी प्रकार समस्त मासोंके अन्दर भाद्रपद मास भी श्रेष्ठ है क्योंकि वह अनेक प्रकारके व्रतोंका स्थान स्वरूप है और धर्म प्रधान कारण है ॥३६-३९॥ इसीलिए समस्त गृहारंभका परित्यागकर इस भाद्रपद माससें व्रती पुरुष पूजा व्रत और उपवास आदिके द्वारा तथा धर्मके आचरणसे पापोंके नाशमें प्रवृत्त होते हैं ॥४०॥ जिसरूपसे भाद्रपद माससें रत्नत्रय व्रतका विधान बतलाया है उसी विधिसे वह माघ मास और चैत मासमें भी आचरण करना चाहिए । क्योंकि यह अनुपम रत्नत्रय व्रत संसारके उत्तमोत्तम भोग प्रदानकर अन्तमें मोक्षसुखका प्रदान करनेवाला है ॥४१॥ जो महानुभाव तीन दिन पर्यन्त उपवास करनेके लिए असमर्थ

शक्तितः क्रियमाणेऽप्यत्र त्यागतपसी सतां। स्यातां समीहितानेकफलसंप्राप्तिहेतवे ॥४३॥
श्रावकैः श्राविकाभिश्च मुनिभिश्चार्यिकादिभिः। व्रतमेतद्विधातव्यं पापहंतृ सुखाकरं ॥४४॥
वर्षत्रितयपर्यंतं विधायेदं व्रतोत्तमं। सम्पूर्णं ह्युत्कर्तव्यं स्वशक्त्योद्यपनं बुधैः ॥४५॥
निर्माप्य जिनचैत्यालानुत्तुगान् सुभासुरान्। अरनाथादिबिंबानां प्रतिष्ठा कारयेत्ततः ॥४६॥
कर्तव्यंहि जिनागारे महाभिषेकमद्भुतं। संघैश्चतुर्विधैः सार्धं महापूजादिकोत्सवं ॥४७॥

हैं किन्तु रत्नत्रय व्रतके पालन करनेमें पूरी-पूरी भक्ति और श्रद्धा रखते हैं वे शक्तिके अनुसार एक प्रोषध आदिसे ही रत्नत्रयव्रतके पालक माने जाते हैं। अर्थात् उनके लिए त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा इन तीनों दिनतक उपवास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। वे ऐसा भी कर सकते हैं कि त्रयोदशीके दिन एक बार भोजन कर सारा दिन और रात्रिका समय मंदिरमें ध्यान आदि कार्योंमें व्यतीत करें। चतुर्दशीके दिन पूरा उपवास करें और मंदिरके अन्दर ही स्वाध्याय आदिमें दत्तचित्त होकर अपना समय व्यतीत करें। पूर्णमासीके दिन पूजा आदि आवश्यक कर्मोंके समाप्त हो जानेपर एक बार भोजन करें और फिर मंदिरमें ही जाकर दिनका और रात्रिका समस्त समय स्वाध्याय आदिमें लगावें, प्रतिपदाके दिन घर आवें और जो भी ऊपर विधि कही गई है उसे करें। यहांपर यह शंका न करनी चाहिए कि व्रतकी जो पूरी विधि बतलाई है उसीसे अभीष्ट फलकी सिद्धि हो सकती है और न्यूनता होनेसे वह फल प्राप्त नहीं हो सकता क्योंकि शक्तिके अनुसार किए जानेवाले दान और तप भी संसारमें अनेक अभीष्ट फलोंके प्रदान करनेमें कारण माने गए हैं—उनसे भी संसारमें अनेक प्रकारके अभीष्ट और उत्तमोत्तम फलोंकी प्राप्ति होती है ॥४२-४३॥ जिस रत्नत्रयव्रतका ऊपर खुलासा रूपसे वर्णन किया गया है वह व्रत श्रावक-श्राविका मुनि और आर्यिका सबोंको पालन करना चाहिए क्योंकि वह पवित्र व्रत पापोंका सर्वथा नाश करनेवाला है और नाना प्रकारके सुखोंकी इससे प्राप्ति होती है ॥४४॥ यह परमोत्तम रत्नत्रयव्रत तीन वर्ष पर्यंत बराबर पालना चाहिए जिस समय तन वर्ष समाप्त हो जांय और व्रत भी पूरा हो जाय उस समय जिसकी जैसी शक्ति हो भक्तिपूर्वक उद्यापन करना चाहिये ॥४५॥ उद्यापनकी विधि इस प्रकार है—खूब ऊंचे-ऊंचे विशाल और रत्नों की दीप्तिसे देदीप्यमान जिन चैत्यालय बनावे और उनमें अरनाथ मल्लिनाथ आदिकी प्रतिमाओंकी ठाट-बाटसे प्रतिष्ठा कराकर उन्हें उन चैत्यालयोंमें विराजमान करें। पश्चात् श्रावक-श्राविका एवं मुनि और आर्यिका इस चार प्रकारके

घंटाचामरचंद्रोपकभृंगारार्तिकादयः । धर्मोपकरणानि त्रिसंख्यानिविधानि च ॥४८॥
पूजाद्रव्याणि पक्वान्नादीनि भक्त्या स्वशक्तितः । नालिकेरकदल्यादिमनोहरफलानि च ॥४९॥
विस्तार्यते जिनागारे पूजाशोभादिहेतवे । महोत्सवं विधेयं सुवाद्यगीतादिनर्तने ॥५०॥
पुस्तकादिमहादानं भक्त्यादेयं वृषाकरं । आचार्येभ्यो यथायोग्यं रत्नत्रयव्रतान्वितैः ॥५१॥
चतुर्विधाय संघायाहारादानादिकं मुदा । आमंत्र्य परया भक्त्या देयं सन्मानपूर्वकं ॥५२॥
प्रभावना जिनेन्द्राणां शासने चैत्यधामनि । विधातव्या प्रयत्नेनानेकोत्सवशतैर्बुधैः ॥५३॥
येषामेतावतो शक्तिर्नास्त्यत्रोद्यापने सतां । ते कुर्वंतु यथाशक्त्या स्तोकं चोद्यापनं मुदा ॥५४॥

संघको साथ लेकर जिन मंदिरोंमें सबोंको चमत्कारका करनेवाला महा अभिषेक करावे और बड़े समारोह के साथ महापूजा आदिका उत्सव करना प्रारम्भ करें। घंटा चमर चाँदनी झाड़ी और आरती आदि जितने भी धर्मके अनेक प्रकारके उपकरण हैं उनमें हर एकको तीन-तीन कर दे ॥४६-४८॥

पक्व अन्न लाडू घेवर पोनी आदि जो भी पूजाके द्रव्य हैं अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक उन्हें प्रदान करे और महा मनोहर नारियल केला आदिके उत्तमोत्तम फलोंको दे ॥४९॥ इस प्रकार पक्व अन्न और नारियलके फल आदि पूजाके कारणोंको और घंटा चमर चाँदनी आदि शोभाके कारणोंको जिनमन्दिरमें प्रदानकर उत्तमोत्तम बाजे गीत और नृत्य आदिके अत्यन्त आयोजनसे जिनमंदिरमें महान् उत्सव भी करे ॥५०॥ तथा जो महानुभाव रत्नत्रयव्रतसे विभूषित हैं उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार यथायोग्य धर्मके प्रधान कारण ग्रन्थ भी आचार्योंको भक्ति-पूर्वक भेंट करने चाहिए। श्रावक-श्राविका और मुनि आर्यिकाके भेदसे जो ऊपर चार प्रकारका संघ कहा गया है उन्हें विशिष्ट सन्मानके साथ भक्तिपूर्वक बुलाकर अत्यन्त प्रमोदसे आहार औषध आदि दान देने चाहिए ॥५१-५२॥ प्रभावना अंगका स्वरूप ऊपर जहाँपर सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंका स्वरूप कहा है वहाँ विस्तारसे कह दिया है इसलिए जो महानुभाव रत्नत्रयव्रतके पालक हैं उन्हें भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य प्रकटकर और मंदिरोंके अन्दर भी अनेक प्रकारके सैकड़ों उत्सव कराकर सम्यग्दर्शनके प्रधान अंग प्रभावनाका पालन करना चाहिए ॥५३॥ यह तो हुई अत्यन्त व्ययसाध्य उद्यापनकी बात, किन्तु जो महानुभाव इतना महान खर्चकर उद्यापन करनेमें असमर्थ हैं—उद्यापनके लिए इतना अधिक खर्च नहीं उठा सकते उन्हें चाहिये कि वे अपनी शक्तिके अनुसार भक्ति और हर्षके साथ थोड़ा ही उद्यापन करें—उन्हें

सर्वथा येऽप्यशक्ता हि व्रतोद्यापनसद्विधौ। ते कुर्वंतु विधानं तद्द्विगुणं भावपूर्वकं ॥५५॥
अनेकपुण्यसंतानकारणं स्वर्गनिबंधनं। पापघ्नं च क्रमादेतद्व्रतं मुक्तिवशीकरं ॥५६॥
यो विधत्त व्रतं सारमेतत्सर्वं सुखावहं। प्राप्य षोडशमं (कं) नाकं स गच्छेत्क्रमतः शिवं ॥५७॥
इत्यादि व्रतमाहात्म्यं श्रुत्वा राजातिभक्तितः। नत्वाद्यं मुनिं नत्वा जगाम निजमंदिरं ॥५८॥
विभूत्या परया भक्त्या राज्ञा मुक्त्यंगनाप्तये। एतद्व्रतं च संपूर्णं याथातथ्येन सत्कृतं ॥५९॥
पश्चादस्य व्रतस्यांतेऽनेकतीर्थेशमंदिरान्। उद्यापनविधौ भूपश्चके परमोत्सवं महत् ॥६०॥
जिनागारे जिनेंद्राणां स्वगृहे च महामहं। करोति प्रत्यहं राजा सर्वाभ्युदयसाधनं ॥६१॥

उतने ही उद्यापनसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी परन्तु जो महानुभाव इतने भी असमर्थ हैं कि थोड़ासा भी उद्यापनका विधान नहीं कर सकते उन्हें चाहिए कि वे रत्नत्रय व्रतका जो विधान बताया गया है विशुद्ध भावोंसे उसका दूना विधान करें अर्थात् तीन वर्षकी जगह वे छह वर्षतक रत्नत्रयका विधान बराबर करें ऐसा होनेसे उन्हें उद्यापन करनेकी फिर आवश्यकता नहीं ॥५४-५५॥ यह रत्नत्रयव्रत अनेक पुण्यकी संतानका कारण है। स्वर्गका कारण है। संसारके समस्त पापोंका सर्वथा नाश करनेवाला है एवं मुक्तिरूपी महादुर्लभ लक्ष्मीको वश करनेवाला है ॥५६॥ रत्नत्रय व्रतकी प्रशंसा करते हुये ग्रन्थकार कहते हैं कि परम सुखका स्थान स्वरूप और समस्त व्रतों में सार इस रत्नत्रय व्रतको जो महानुभाव धारण करते हैं वे सोलहवें स्वर्गके सुखका लाभ करते हैं एवं धीरे-धीरे अनुक्रमसे वे अविनाशी मोक्ष सुखका भी रसास्वादन करते हैं ॥५७॥

इस प्रकार मुनिराज सुगुप्तके मुखसे रत्नत्रयका माहात्म्य सुन राजा वैश्रवण को परमानन्द हुआ। भक्तिपूर्वक उसने रत्नत्रय व्रत धारण किया और विनयपूर्वक मुनिराजको नमस्कारकर वह अपने राजमंदिरमें आ गया ॥५८॥ राजमंदिरमें आकर राजा वैश्रवणने परम भक्ति और श्रद्धाके साथ मोक्ष लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये रत्नत्रयव्रतका प्रारम्भ किया एवं वास्तविक रीतिसे उसे पूरा किया ॥५९॥ व्रतके अन्तमें उद्यापनके समय राजा वैश्रवणने भगवान जिनेन्द्रके अनेक मंदिरोंका निर्माण कराया और महान् उत्सवका समारंभ किया ॥६०॥ तबसे राजा वैश्रवणने अन्य जिनमंदिरोंमें और राजमन्दिरके जिनमन्दिरोंमें समस्त प्रकारके ऐश्वर्योंको प्रदान करनेवाली महापूजाका प्रतिदिन करना प्रारम्भ कर दिया। वह नरपाल मोक्षलक्ष्मीकी प्रचुर लालसासे प्रतिदिन उत्तम पात्रोंको आहार औषध आदि चारों प्रकारका दान देने लगा

नित्यं सत्पात्रदानानि ददाति स्म स मुक्तये। उपकारंच जैनानां वात्सल्यं भजते सुधीः ॥६२॥
विधत्ते प्रोषधान् सर्वेषु पर्वसु धराधिपः। भूत्वा यतिसमो हत्वा गृहव्यापारमंजसा ॥६३॥
सर्वाण्यणुव्रतान्येव गुणशिक्षाव्रतानि च। त्रिशुद्धया व्यक्तदोषाणि स पालयति यत्नतः ॥६४॥
शृणोति जैनशास्त्राणि ज्ञानायाज्ञानहानये। श्रीजिनेंद्रमुखोत्पन्नान्यसौ नित्यं च मुक्तये ॥६५॥
धर्मोपदेशमादत्ते स्वसभास्थाखिलांगिनां। वाग्मी तदुपकाराय दिव्यैर्वाक्यैर्मनोहरैः ॥६६॥
यात्रापूजानमस्कारदानशीलव्रतादिभिः। सदैव धर्ममेकं स विधत्ते पुण्यकर्मभिः ॥६७॥

किसी भी दीन हालतमें जैनधर्म पालन करनेवालोंको सुनकर निरीह और निर्मल वृत्तिसे बड़े हर्षसे उनका उपकार करने लगा एवं साधर्मी भाइयोंमें गाय बच्छाके समान प्रेम दर्शाकर परिपूर्ण वात्सल्य अंगका उसने पालन करना आरम्भ कर दिया ॥६१-६२॥ वह महानुभाव वैश्रवण राजा अष्टमी चतुर्दशी आदि समस्त पर्वोंमें ऊपर कही गई विधिके धारक प्रोषध व्रतका आचरण करने लगा और निर्मल भावोंसे घरके कार्योंसे सर्वथा विमुक्त हो यह प्रतिज्ञा कर आचरण करनेवाले यतिके समान हो गया ॥६३॥ अहिंसा अचौर्य सत्य स्वदार-संतोष और परिग्रह परिमाण ये पाँच अणुव्रत, दिग्व्रत भोगोपभोग परिमाणव्रत और अनर्थ दंडव्रत ये तीन गुणव्रत एवं देशावकाशिक सामायिक प्रोषधोपवास और वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत इस प्रकार श्रावकोंके बारह व्रत हैं[1]। राजा वैश्रवण मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक पाँचों अणुव्रत तीनों गुणव्रत और चारों प्रकारके शिक्षाव्रतोंको निर्दोषरूपसे बड़े यत्नके साथ पालन करने लगा ॥६४॥ वह महानुभाव उस दिनसे अज्ञानको सर्वथा निवृत्तके लिये और ज्ञान संपादन करनेके लिये भगवान अर्हंत (जिनेन्द्र) के मुखसे उत्पन्न जैन शास्त्रोंका श्रवण और मनन करने लगा और उससे मुक्ति प्राप्तिकी अभिलाषा चित्तमें करने लगा ॥६५॥ हितकारी और परिमित वचनोंका बोलनेवाला वह वाग्मी राजा वैश्रवण, सभामें रहनेवाले समस्त प्राणियोंको उनका उपकार हो—इस पवित्र अभिलाषासे प्रतिदिन दिव्य और मनोहर वचनों में धर्मोपदेश देने लगा ॥६६॥ जहाँसे अगणित पवित्र आत्माओंने मोक्ष प्राप्त की है ऐसे तीर्थोंकी यात्रा करना, जिनेन्द्र आदिकी पूजा करना, उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करना उत्तम पात्रोंको आहार आदि दान देना एवं भक्तिपूर्वक शीलव्रत आदिका पालन करना इस प्रकारके पुण्यको उत्पन्न

१. रत्नकरंडश्रावकाचारमें इन बारह व्रतोंका विस्तारसे वर्णन है। उसीके अनुसार नामोंका उल्लेख किया गया है।

चित्ते धृत्वा निजे धर्मं वक्ति वाचा च देहिनां। तमाचरति कामेनेतिस धर्ममयोऽभवत् ॥६८॥
धर्मार्पितान् परान् भोगान् यथाकालं भुनक्ति सः। सर्वाक्षतृप्तिदान् भूपः कुर्वन् धर्ममनारतम् ॥६९॥
अथैकदानुगो द्रष्टुं जृंभमाणां वनावलीं। प्रवृद्धे प्रावृडारं भेवेष्टितोभूमिपैरयात् ॥७०॥
मार्गस्य निकटे दृष्टवा वटं तुंगं मनोहरं। शाखोपशाखसंकीर्णं वृत्तं पक्षिशताकुलम् ॥७१॥
व्रजता भूभुजेत्युक्तं पश्य पश्यास्य विस्तृतिं। तुङ्गत्वं बद्धमूलत्वं सुन्दरत्वं घनात्मकं ॥७२॥
इत्याकर्ण्य व्रजन्मार्गं पुरतः पार्श्ववर्तिना। साश्चर्यं बहुदयो राजा वनान्तरं क्रमादगात् ॥७३॥

करनेवाले पवित्र कार्योंसे वह राजा सदा ही धर्मका आचरण करने लगा ॥६७॥ वह राजा चित्तमें जिस किसी भी पदार्थका विचार करता था उस समय केवल धर्मका ही विचार करता, धर्मके विचारके सिवाय अन्य किसी विचारको उसके हृदयमें जगह नहीं मिलती थी। जब कभी मनुष्योंके सामने कुछ वचन बोलता था उस समय धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला ही वचन बोलता था उसके मुखसे सिवाय धर्म सम्बन्धी वचनके अन्य वचन नहीं निकलता था। शरीरसे भी वह धर्म क्रियाओंका ही आचरण करता था। अन्य किसी प्रकारकी क्रियाओंका उसके शरीरसे आचरण नहीं होता था इसलिये वह राजा साक्षात् धर्मस्वरूप था ॥६८॥ वह राजा वैश्रवण सर्वदा धर्मका आचरण करता था इसलिये यद्यपि वह समस्त इंद्रियोंको तृप्त करनेवाले भोगोंका भोग करता था परन्तु धर्मानुकूल उत्कृष्ट भोगोंका ही भोग करता था धर्म विरुद्ध मर्यादासे अतिक्रान्त भोगोंका भोग नहीं करता था ॥६९॥

कदाचित् वर्षा ऋतुका पूर्ण प्रारंभ हो चुका था और उसके निमित्तसे बनकी वृक्षावली फल फूलोंसे युक्त हरी भरी शोभित हो रही थी। उस समय राजा वैश्रवणको वनकी वृक्षावली देखनेका कौतूहल हुआ इसलिये वह अनेक अपने वशवर्ती राजाओंके साथ वनकी शोभा निरखने चल दिया ॥७०॥ मार्गके समीपमें ही एक बड़का वृक्ष था जो कि अत्यन्त ऊंचा था महामनोहर था गोदे और डालियोंसे व्याप्त था, गोलाकार था और सैकड़ों पक्षियोंसे व्याप्त था ॥७१॥ मार्गमें जाते हुए राजाने वह बड़का वृक्ष देखा और आश्चर्यसे युक्त हो इस प्रकार कहने लगा—देखो! देखो! यह वृक्ष कितना चौड़ा है कितना ऊंचा है। इसका मूलभाग कैसा जिकड़ा हुआ है एवं कैसा सुन्दर और सघन है तथा ऐसा कह कर और साथमें रहनेवाले लोगोंके सामने उस वृक्षके विषयमें अत्यन्त आश्चर्य कर वह मार्गमें और भी आगेको चल दिया एवं क्रमसे चलता चलता बनके मध्यभागमें जा पहुँचा ॥७२-७३॥

नानाक्रीडादिभिस्तत्र चिक्रीड पृथिवीपतिः। स्वेच्छयागा च रामाभिर्यथाकालं नृपात्मजः ॥७४॥
ततस्तेनैव मार्गेण प्रत्यागच्छन्मुदा नृपः। विद्युत्प्रपातघातेन वीक्ष्य तं भस्मितं क्षणात् ॥७५॥
इति चिंतां विदधेऽहो बद्धमूलत्वमेव न। कस्यापि विस्तृतिर्निद्या तुङ्गत्वं कस्य वा भुवि ॥७६॥
यथाग्रायं वटः प्राप्तो ह्यवस्थामीदृशीं महान्। क्षणार्धेन ततः कस्य स्थिरत्वं जीवितादिषु ॥७७॥
भस्मीभावमगाद्यद्वदामूलांतं क्षणाद्वटः। विद्युताऽखिलजीवास्तद्वद्यास्यंति यमाग्निना ॥७८॥
राज्यं रजोनिभे निंद्य दुःखचिंतादिसागरं। महारंभाघदुध्यानाद्याढ्यं कः पालयेत्सुधीः ॥७९॥
छायेव चपला लक्ष्मीः कृत्स्नचिन्ताखनिः खला। रागद्वेषमदोन्मादमाता किं रंजयेत्सतां ॥८०॥

बनमें जाकर वहां राजा वैश्रवण उत्तमोत्तम स्त्रियोंके साथ एवं राजपुत्रोंके साथ अपनी इच्छासे अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करने लगा। जब क्रीड़ा समाप्त हो गई और नगरको लौटने लगा तो जिस मार्गसे गया था उसी मार्गसे नगरको बड़े आनन्दसे लौटा। रास्तामें देखता क्या है कि जिस बड़के वृक्षको वह आश्चर्यकारी लंबाई चौड़ाई वाला छोड़ गया था वही क्षणभरमें बिजलीके गिरनेसे खाख हुआ पड़ा है ॥७४-७५॥ बस ! कुछ ही क्षणोंमें वृक्षकी यह अचरज करनेवाली अवस्था देख उसे संसारसे एकदम वैराग्य हो गया और वह मनमें इस प्रकारकी चिंता करने लगा। संसारमें बद्धमूलता—मजबूत जड़ सदा किसीकी भी नहीं रहती। न किसीका विस्तृति—फलना फूलना सदा रहता है और न तुंगत्व—अभिमान किसीका सदा स्थिर रहता है ॥७६॥ बड़े आश्चर्यकी बात है कि देखो ! कुछ देर पहिले यह वृक्ष कितना विशाल और विस्तृत था सो जब आधे ही क्षणमें ऐसी विलक्षण अवस्थाको प्राप्त हो गया अर्थात् खाखमें मिल गया तब किसीके जीवन जवानी सुन्दरता आदि स्थिर रहेंगे यह क्या निश्चय है ? मेरा तो यह निश्चय है कि जिस प्रकार यह बड़का वृक्ष मूलसे लेकर चोटी पर्यंत बिजलीकी तीव्र ज्वालासे जलकर खाक हो गया है उसी प्रकार यमराजरूपी अग्निसे ये समस्त जीव—जीवोंके शरीर खाकमें मिल जायंगे अर्थात् किसी जीवकी पर्याय सदा काल स्थिर नहीं रह सकती ॥७७-७८॥ जिस राज्यको पाकर लोग मदमें मत्त हो जाते हैं वह राज्य धूलके समान है। महा निंद्य है दुःख और चिंता आदिका समुद्र है। अनेक प्रकारके इसके निमित्तसे आरंभ करने पड़ते हैं और उनसे जयमान पापोंकी उत्पत्ति होती है तथा सदा इसके लिए निन्दित ध्यान ही बना ही रहता है इसलिये ऐसे निन्दित राज्यका कोई बुद्धिमान पालन नहीं कर सकता ॥७९॥ लक्ष्मीका घमंड लोगोंको पागल कर देता है

बान्धवा बन्धनान्येव भार्या हि निगडोपमा । गलशृंखलाभाः पुत्राः कुटुम्ब पाशसन्निभं ॥८१॥
कारागारनिभे घोरे चिन्तादुःखादिसंकुले । सर्वपापाकरीभूते धर्मविध्वंसकारणे ॥८२॥
कामक्रोधमहामोहरागाद्यब्धौ गृहाश्रमे । मतिमान्को रतिं धत्ते ह्यनन्त भवदायिने ॥८३॥
उरगाभान् खलान् दुष्टान् सद्यः प्राणापहारिणः । दुखोद्भवान् महादुःखहेतूनत्यंतचंचलान् ॥८४॥

सो यह लक्ष्मी छायाके समान चंचल है । अर्थात् जिस प्रकार वृक्षकी छाया कभी पश्चिम की ओर तो कभी पूर्वकी ओर हो जाती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी आज किसीके है तो कल किसीके है तथा यह समस्त चिन्ताओंको उत्पन्न करनेवाली है अर्थात् लक्ष्मीके सम्बन्धसे ही अनेक प्रकारकी चिंता लगी रहती है निर्धनको विशेष चिंता नहीं व्यापती । तथा यह लक्ष्मी महा दुष्ट है एवं रागद्वेष अहंकार और उन्माद सबको उत्पन्न करनेवाली है इसलिये जो पुरुष सज्जन हैं वास्तविक रूपसे हित अहितके जानकार हैं उन्हें यह लक्ष्मी कभी भी रंजायमान नहीं कर सकती ॥८०॥ मोहके तीव्र जालमें जिकड़कर लोग भाई पिता पुत्र स्त्री आदि बांधवोंको अपना मानते हैं परन्तु वे बांधव सर्वथा बंधन स्वरूप ही है क्योंकि स्त्री तो बेड़ीके समान है अर्थात् जिस पुरुषके पैरमें बेड़ी पड़ी हुई है वह पुरुष जिस प्रकार कहीं नहीं जा सकता और जाता है वहां बेड़ी साथ ही हो जाता है उसी प्रकार जिस पुरुषकी स्त्री मौजूद है वह पुरुष भी कहीं नहीं जा सकता और जहाँ जाता है वहां स्त्रीको भी साथ ही रखना पड़ता है इसलिये दीक्षा आदि शुभ कर्मोंमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होती । तथा गलेमें जिस प्रकार शृंखला (तोक) पड़ी रहती है उसके समान पुत्र हैं और समस्त कुटुम्ब पाशके समान है ॥८१॥ यह गृहाश्रम कारागार—कैदखानेके समान है महा घोर है । नाना प्रकारकी चिन्तायें और उनसे जायमान दुःख शोक आदिसे व्याप्त है । समस्त पापोंका स्थान है । वास्तविक धर्मको जड़से उखाड़कर फेंक देनेवाला है एवं काम क्रोध तीव्र मोह रागद्वेष आदि का समुद्र है तथा अनंते भवोंका प्रदान करनेवाला है अर्थात् गृहस्थाश्रमका सम्बन्ध रहना अनन्त काल पर्यंत मोक्ष सुखका बाधक है इसलिये ऐसे महादुःखदायी पापी गृहस्थाश्रममें कोई बुद्धिमान प्रेम नहीं कर सकता ॥८२-८३॥

जिनके जालमें निरन्तर यह जीव फंसा रहता है ऐसे ये भोग काले भुजंगके समान हैं क्योंकि जिस प्रकार भुजंग ऊपरसे अच्छा पर भीतरसे महादुष्ट जान पड़ता है उसी प्रकार ये भोग भी भोगते समय तो मधुर जान पड़ते हैं परन्तु अन्तमें ये

अतृप्तिजनकान् क्रूरान् क्रूरकर्मविधायिनः । पपुकदर्थनोत्पन्नान् भोगान् कः सेवते बुधः ॥८५॥
शुक्रशोणितसंभूते सप्तधातुमयेऽशुभे । क्षुत्तृट् कामजराक्रोधरोगाग्नि ज्वालसंकुले ॥८६॥
विष्ठादिनिचिते निंद्ये पूतिगंधे यमाश्रमे । अनित्ये कः सुधीः स्थातुमच्छेत्कायकुटीरके ॥८७॥
स्वभ्रवाड्वगंभीरे कृत्स्नाशर्माम्बुपूरिते । रोगमत्स्यादिसंकीर्णे पंचाशतस्करान्विते ॥८८॥

महादुःखदायी होते हैं । भुजंग जिस प्रकार महादुष्ट होता है उसी प्रकार ये भोग भी महादुष्ट हैं । भुजंग जिस प्रकार काटते ही शीघ्र प्राणोंका नाश करनेवाला है उसी प्रकार ये भोग भी प्राणोंका नाश करनेवाले हैं । भुजंगकी उत्पत्ति जिस प्रकार महान् कष्टपूर्वक होती है उसी प्रकार विषय भोगोंकी प्राप्ति भी अनेक प्रकारके दुखोंको झेल कर ही होती है । भुजंगका काटना जिस प्रकार अनेक प्रकारके दुःखोंका कारण होता है उसी प्रकार ये विषय भोग भी अनंते दुःखोंके कारण हैं । सर्प जिस प्रकार अत्यन्त चंचल होता है उसी प्रकार ये भोग भी अत्यन्त चंचल हैं क्षणभरमें आने जाने वाले हैं । भुजंग जिस प्रकार किसीको संतोष प्रदान नहीं कर सकता उसी प्रकार ये भोग भी किसी प्रकार का सन्तोष उत्पन्न नहीं कर सकते । जितने-जितने अधिक भोगे जाते हैं उतनी उतनी ही अशान्ति बढ़ती चली जाती है । भुजंग जिस प्रकार क्रूर होता है और सदा क्रूर कर्मोंका करनेवाला होता है उसी प्रकार ये विषय भोग भी अत्यन्त क्रूर हैं और इनको भोगनेसे सर्वदा महा क्रूर कर्मोंका आस्रव होता रहता है । भुजंग जिस प्रकार शरीरके कदर्थनसे उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ये विषय भोग भी शरीरके कुत्सित आचरणसे पैदा होते हैं । इनके भोगनेसे शरीरका सर्वनाश होता है इसलिए ऐसे महा दुःखदायी भोगों का बुद्धिमान कभी सेवन नहीं कर सकता ॥८४-८५॥ यह शरीररूपी झोपड़ा माताके रज और पुरुषके वीर्यसे उत्पन्न हुआ है । हड्डी मज्जा आदि सात धातु स्वरूप है । महा अशुभ है । भूख प्यास काम वृद्धावस्था क्रोध और अनेक प्रकारके रोगोंकी ज्वालाओंसे व्याप्त है तथा विष्टादि महा अपवित्र पदार्थोंका घर है । अत्यन्त निन्दनीय है । पीव सरीखी सड़ी इससे दुर्गंति छूटती रहती है । यमराजका आश्रम है—जिस समय यमराजका प्रकोप होता है तत्काल इसे खाकमें मिल जाना होता है और क्षणभरमें विनाशीक है ऐसे इस शरीररूपी झोपड़ेमें विद्वान कभी ठहरनेकी लालसा नहीं कर सकता और न वह शरीरको ही सर्वस्व मानकर इत्र तेल आदिसे उसकी सेवा कर सकता है ॥८६-८७॥

यह संसार जिसकी आदि है न अन्त है ऐसा विशाल समुद्र है क्योंकि जिस

जन्ममृत्युजरावायुसंकुलेऽतिभयानके । चंचले विषमे घोरेऽसारे पारातिगेऽशुभे ॥८९॥
अनन्तेऽनादिसंसारे पाराबारे निरन्तरं । मज्जनोन्मज्जने कुर्युर्धर्मपोतादृतेऽगिनः ॥९०॥
प्रातर्दर्भदलाग्रस्थविद्वाभं जीवितं नृणां । बलकायाक्ष सामग्री शंपेव चंचलाऽशुभा ॥९१॥
प्रतिक्षणं सतामायुहीयते समयादिभिः । न्यस्तं जलं यथा हस्ते छिद्रे घ यौवनादिकं ॥९२॥

प्रकार समुद्रमें बड़वानल होती है उसी प्रकार इस संसारमें भी घोर नर्करूपी बड़वानल मौजूद है—नर्कोंमें जाकर नारकी सदा अग्निके भयानक कुण्डोंमें जलते पजलते रहते हैं अतएव यह संसार समुद्रके समान गंभीर है। तथा जिस प्रकार समुद्रमें अथाह जल होता है उसी प्रकार यह संसार भी समस्त प्रकारके अकल्याणरूपी जलसे भरा हुआ है। जिस प्रकार समुद्रमें बड़े-बड़े मत्स्य होते हैं उसी प्रकार यह समुद्र भी भयंकर रोगरूपी मत्स्योंसे खचाखच भरा हुआ है। जिस प्रकार जहाजोंको लूटनेके लिए समुद्रमें चोर डाकुओंका जमघट रहता है उसी प्रकार इस संसारमें भी समस्त जीवोंको लुटनेवाले पाँच इन्द्रियरूपी पाँच चोर हैं इनके जालमें फँसकर निरंतर जीव ठगे जाते हैं। जिस प्रकार समुद्र भयंकर पवनसे व्याप्त रहता है उसी प्रकार यह संसार भी जन्म-मरण और बुढ़ापारूपी तीव्र पवनके झकोरोंसे व्याप्त है समुद्र जिस प्रकार महाभयानक होता है उसी प्रकार यह संसार भी महाभयानक है। समुद्र जिस प्रकार महाचंचल महाविषम महाघोर और असार होता है उसी प्रकार यह संसार भी महाचंचल महाविषम महाघोर और निस्सार है। जिस प्रकार समुद्रका पार पाना कठिन है उसी प्रकार इस संसार समुद्रका भी जल्दी पार नहीं पाया जा सकता एवं समुद्र जिस प्रकार अगम्य है उसी प्रकार यह संसार भी महा अगम्य है। संसारमें रुलनेवाले जीव कभी शुभगतिको प्राप्ति नहीं कर सकते। ऐसे इस महाभयानक संसारमें धर्मरूपी जहाजमें न बैठनेवाले ये दीन जीव निरंतर डूबते और उछलते रहते हैं ॥८९-९०॥ प्रातःकालमें दर्भ-दाभकी अनीपर लगी हुई जलकी बूंद जिस प्रकार चंचल है थोड़ी ही देरमें विनश जानेवाली है उसी प्रकार यह मनुष्योंका जीवन भी विनाशीक है, जल्द नष्ट हो जानेवाला है जिस प्रकार बिजली अत्यन्त चंचल पदार्थ है क्षणभरमें विनश जानेवाला है उसी प्रकार मनुष्योंकी सामर्थ्य शरीर इन्द्रियोंकी सामग्री अत्यन्त चंचल है—देखते-देखते विनष्ट हो जानेवाली है तथा अशुभ कर्मका कारण होनेसे यह अशुभ है ॥९१॥ समय आदि कालके भेदोंसे प्रतिक्षण मनुष्योंकी आयु क्षीण होती रहती है तथा जिस प्रकार

क्षीयते यावदायुर्न शक्तिश्च यौवनोद्यमः । पटूनि यावन्न ह्रीकतेजरा ॥९३॥
तावत्कार्यं तपोघोरं मुक्तिश्रीचित्तरंजनं । दीक्षामादाय संछिद्य मोहपाशं मुमुक्षुभिः ॥९४॥
इत्यादिचिंतनात्प्राप्य संवेगं द्विगुणं हृदि । भवांगभोगगेहादौ दीक्षादानमना नृपः ॥९५॥
निराकांक्षी स्वराज्यादौ साकांक्षी मुक्ति साधने । अगाद् गृहमनुप्रेक्षाः संचिंतयन्मुहुर्मुहुः ॥९६॥
प्रदाय विधिना राज्यं सतां त्याज्यं स्वसूनवे । स्वभूतिं तृणवत् त्यक्त्वा श्रीनागपर्वतं ॥९७॥
नृपोत्तमैः समं राजा तत्र श्रीनागयोगिनं । नागपाशोपमं सर्वकषायाक्षारिबंधने ॥९८॥
त्रिःपरीत्य प्रणम्योच्चैर्मूर्ध्ना पीत्वा वृषामृतं । यत्यास्पदुभवं हित्वा मोहाग्निं सोऽभवत्सुखी ॥९९॥

छिद्रयुक्त हाथमें रक्खा हुआ जल प्रतिक्षण गिरता रहता है उसी प्रकार मनुष्योंके यौवन आदि भी प्रतिक्षण नष्ट होते रहते हैं ॥९२॥ इसलिए जो पुरुष मोक्षाभिलाषी हैं—मोक्षके अविनाशी सुखका अनुभव करना चाहते हैं उन्हें जबतक आयु क्षीण न हो जाय, बराबर कार्य करनेकी सामर्थ भी रहे, यौवन अवस्था भी शरीरमें जाज्वल्यमान रहे, अपने-अपने विषयोंके ग्रहण करनेमें इन्द्रियाँ भी सबल रहें और जबतक वृद्धावस्था शरीरपर अपना भाव न डाले उसके पहिले ही गृहरूपी पापका सर्वथा त्यागकर देना चाहिए एवं दिगम्बर जैनेंद्री दीक्षा धारणकर मोक्षरूपी लक्ष्मीके चित्तको आनन्द प्रदान करनेवाला घोर तप तपना चाहिये ॥९३-९४॥

राजा वैश्रवणको वटवृक्षके अकस्मात् जल जानेसे संसार शरीर भोग और गृह आदिसे वैराग्य तो हो ही गया था परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे उनके स्वरूपका विचार करनेसे और भी उसे दूना वैराग्य हो गया। संसार शरीर आदि पदार्थोंसे उसका सर्वथा ममत्व छूट गया एवं दिगम्बरी दीक्षा धारण करनेके लिये उसने पूर्णरूपसे चित्तमें ठान ली ॥९५॥ वह राजा अपने राज्य आदिसे निराकांक्ष—विमुख हो गया और मुक्ति लक्ष्मीके सिद्ध करनेके लिये उसकी पूरी-पूरी अभिलाषा हो गई। बड़के वृक्षके पाससे प्रतिक्षण अनित्य अशरण आदि बारह भावनाओंका ही बारंबार चिंतवन करता हुआ राजमहल तक पहुँचा ॥९६॥ राजमहलमें पहुँचकर राजा वैश्रवणने सज्जनोंको सर्वथा छोड़ने योग्य ऐसे राज्यको अपने पुत्रके लिये प्रदान किया एवं जीर्ण तृणके समान अपने ऐश्वर्यका सर्वथा परित्यागकर वह श्रीनागपर्वतकी ओर चल दिया। श्रीनाग पर्वतपर समस्त कषाय और इन्द्रियोंके बाँधनेमें सर्वथा नागपाशके समान अर्थात् जिनके पास कषाय और इन्द्रियोंके विषयकी लोलुपता फटकने तक नहीं पाती थी ऐसे श्रीनाग नामके मुनिराज विराजमान थे। अनेक बड़े-बड़े राजाओंके साथ

ततो बाह्यांतरं संगं त्रिशुद्धया परित्यज्य सः। राजभिर्बहुभि सार्धं प्रवव्राज महीपतिः ॥१००॥

इति सुकृतविपाकाद्धर्मकर्मार्थसारान्निखिलवरसुखाब्धीन् संभजित्वा मुमुक्षुः।
पुनरपि शिवसिद्धयै स्वीचकाराशु दीक्षां सकलसुख निधिः सोऽत्र नंद्यान्मुनीशः ॥१०१॥

येनोच्चैः प्रविधाय सद्व्रतमहो रत्नत्रयाख्यं पुरा भुक्त्वा सौख्यमहर्निशं नृजनितं दिव्याहमिद्रोद्भवं।
तीर्थेशत्वमवाप्य घोरतपसा मुक्त्यंगना स्वीकृता बालत्वेऽपि स मल्लिनाथजिनपो दद्यात्स्वशक्तित्रयम ॥

इति श्रीमल्लिनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते वैश्रवणनृपदीक्षावर्णनो
नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥ २ ॥

राजा वैश्रवण उनके पास गया और भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर मस्तक झुकाकर नमस्कार किया। मुनिराजके मुखरूपी चंद्रमासे झरनेवाला धर्मरूपी अमृत पीया जिससे उसकी मोहरूपी अग्नि शांत हो गई और वह अपनेको सुखी अनुभव करने लगा। उसी समय उसने मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्यागकर दिया एवं अनेक राजाओंके साथ उसने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली ॥९७-१००॥

जिन मुनिराज वैश्रवणने पहिले तो तीव्र पुण्यके उदयसे समस्त उत्तम सुखके समुद्र स्वरूप सारभूत धर्म कार्योंको किया पीछेसे "अविनाशी अनुपम मोक्ष सुख प्राप्त हो जाय" इस अभिलाषासे समस्त सुखोंकी स्थान स्वरूप जैनेश्वरी दीक्षा धारण की। वे मुनियोंके शिरोमणि मुनिराज वैश्रवण चिरकाल इस संसारमें जयवंते होकर वृद्धिको प्राप्त हों ॥१०१॥ जिन पवित्र भगवान मल्लिनाथने पहिले तो रत्नत्रय नामका परम पावन व्रत पालन किया पीछे रात-दिन मनुष्य लोकके उत्तमोत्तम भोग भोगे। तीर्थंकर पद प्राप्त किया एवं बाल अवस्थामें ही घोर तपके द्वारा मोक्षरूपी स्त्रीको स्वीकार किया वे मल्लिनाथ जिनेन्द्र हमें दिव्य शक्ति प्रदान करें ॥१०२॥

भट्टारक सकलकीर्ति कृत संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ
विरचित वचनिकामें रत्नत्रयका दूसरा परिच्छेद संपूर्ण हुआ ॥ २ ॥

तृतीयः परिच्छेदः

घातिकर्मारिहंतारमनंतगुणवारिधिं । त्रिजगत्सेवितं नौमि श्रीमल्लिंतं ह्रुणाप्तये ॥ १ ॥
अथासौ निःप्रमादेन विनयेन स सद्धिया । एकादशांग सिद्धांताब्धेः पारमगमन्मुनिः ॥ २ ॥
अनाच्छाद्य स्वसामर्थ्यं द्विषड्भेदं तपोऽनघं । दुष्कर्मारामदावानलं कुर्यात्प्रत्यहं यतिः ॥ ३ ॥
शून्यागारे श्मशाने वा गुहाद्रौ वा वनादिषु । सिंहवच्च वसेन्नित्यं निर्जने तरुकोटरे ॥ ४ ॥
ध्यानाध्ययनकर्माणि निःप्रमादी जितेन्द्रियः । विधत्तेऽत्रानिशं नैव स्वप्नेऽपि विकथादिकान् ॥ ५ ॥
स्थिरचित्तेन नित्यं स धर्म्यशुक्लानि मुक्तये । सद्ध्यानानि करोत्येव नासद्ध्यानानि जातुचित् ॥ ६ ॥

ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय नामक चार घातिया कर्मरूपी बैरियोंको जड़से उखाड़कर फैंक देनेवाले, अनन्त गुणोंके समुद्र एवं तीनों लोकके जीव भक्तिपूर्वक जिनकी सेवा और पूजा करते हैं ऐसे भगवान श्रीमल्लिनाथको मैं उनके अनुपम गुणोंकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥१॥ समस्त प्रकारके प्रमादोंको छोड़कर विनयपूर्वक मुनिराज वैश्रवणने अंगोंका अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया और थोड़े ही दिनोंमें वे मुनिराज अपनी श्रेष्ठ बुद्धिसे ग्यारह अंग स्वरूप सिद्धांत समुद्रके पारको प्राप्त हो गये अर्थात् उन्हें ग्यारह अङ्गोंका परिपूर्ण ज्ञान हो गया ॥२॥ वे परम धीर वीर मुनिराज अपनी सामर्थ्यको न छिपाकर प्रतिदिन बारह प्रकारके तपोंको तपने लगे जो तप निर्दोष थे और दुष्कर्म रूपी वनको भस्म करनेके लिये दावानलके समान थे ॥३॥ वे मुनिराज शून्य खंडहरोंमें श्मशान भूमियोंमें पर्वतकी गुफाओंमें और जनशून्य वृक्षोंकी खोलारोंमें सिंहके समान निर्भय होकर निवास करते थे ॥४॥ स्पर्शन आदि इन्द्रियोंपर परिपूर्ण रूपसे विजय पानेवाले और प्रमाद रहित वे मुनिराज सदा उत्तम ध्यान और अध्ययनमें प्रवृत्त रहते थे और स्वप्नके अन्दर भी वे राजकथा आदि विकथाओंका उल्लेख नहीं करते थे ॥५॥ आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्लके भेदसे ध्यानके चार भेद माने जाते हैं इनमें आदिके ध्यान निंदित हैं क्योंकि उनसे निंदित गतियोंकी प्राप्ति होती है और अन्तके धर्म्य और शुक्ल ये दो ध्यान प्रशस्त हैं क्योंकि उनसे स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त होते हैं। वे

---

१. छह प्रकारका बाह्य और छह प्रकारका अभ्यन्तर इस प्रकार तपके बारह भेद हैं अनशन अवमोदर्य वृत्तिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन और कायक्लेश ये छह भेद बाह्य तपके हैं और प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय और व्युत्सर्ग ये छह भेद अभ्यन्तर तपके हैं मिलकर तप बारह प्रकारका है। तत्त्वार्थ सूत्र अ० ९ सू० १९-२० ॥

ग्रामखेट मटंबारण्यदेशाद्रि नदादिषु । एकाकी वायुवत्नित्यं विहरत्येव धीरधीः ॥७॥
शंकादिदोषनिर्मुक्तां निःशंकादिगुणांकितां । तत्त्वार्थश्रद्धया सोऽचाद्दर्शनस्यविशुद्धितां ॥८॥
दर्शनज्ञानचारित्रतपसां तद्वतां सदा । हृदा च वपुषा वाचा मुक्त्यै स विनयं भजेत् ॥९॥
शीलव्रतसमूहं निरतिचारं पालयेत् । निरंतरं श्रुतज्ञानं पठेत्संपाठयेत्सतां ॥१०॥

मुनिराज वैश्रवण मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे सदा निरालसी निष्प्रकार दुर्ध्यान ध्यान—धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यानका ही चितवन करते थे, आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान-रूप अशुभ ध्यानोंका कभी भी अपने चित्तमें विचार न लाते थे ॥६॥ वे धीर बुद्धिके धारक मुनिराज जिस प्रकार पवन सर्वत्र अकेला विचरता रहता है उसी प्रकार गाँव खेट मटंब जंगलके प्रदेश पर्वत और वन आदिमें अकेले ही विहार करते फिरते थे निर्भयवृत्तिके कारण किसीका भी संग नहीं चाहते थे ॥७॥

दर्शनविशुद्धि १ विनयसंपन्नता २ अतीचार रहित शीलव्रतोंका पालना ३ सर्वदा ज्ञानाभ्यास करना ४ संवेग रखना ५ शक्तिके अनुसार दान करना ६ शक्तिके अनुसार तप तपना । ७ साधुसमाधि ८ वैयावृत्य करना ९ अर्हंत भगवानकी भक्ति करना १० आचार्य भगवानकी भक्ति करना ११ शास्त्रोंके बहुत जानकार उपाध्यायोंकी भक्ति करना १२ प्रवचनकी भक्ति करना १३ छह आवश्यकोंका पालन करना १४ मोक्षमार्गकी प्रभावना करना १५ और वात्सल्यभाव रखना १६ ये सोलह भावना हैं । इन सोलह प्रकारकी भावनाओंके भानेसे तीर्थंकर पदकी प्राप्ति होती है मुनिराज वैश्रवणने भी इस प्रकार सोलह भावनाओंका भाना प्रारंभ कर दिया—

मुनिराज वैश्रवणका जीवादिपदार्थोंका श्रद्धान, शंका कांक्षा आदि दोषोंसे रहित था एवं निःशंकितत्व और निकांक्षितत्व आदि गुणोंसे भूषित था इसलिए सदा सम्यग्दर्शनके अन्दर विशुद्धता रहनेके कारण उनके दर्शन विशुद्धि भावना थी ॥८॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और तप इन चारों आराधनाओंका तथा इन चारों प्रकारकी आराधनाओंको पालन करनेवालोंका वे अच्छी तरह विनय करते थे इसलिये उनके विनय भावनाका पालन था ॥९॥ किसी प्रकार शीलव्रतोंमें अतीचार

१. दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥२४॥ अ० ६ । तत्त्वार्थसूत्र ।

देहभोगभवादौ स संवेग चिंतयेद्बुधः। सिद्धांतादिमहादानं दत्तेऽसौ ग्यनुग्रहाय सः ॥११॥
शक्त्या विलतपांस्येव करोति कर्महानये। साधूनां स समाधिं च प्रत्यूहपीडितात्मनां ॥१२॥
सूर्यादियोगिनां वैयावृत्त्यं स दशधा भजेत्। अर्हदाचार्य बर्याणां सोऽधाद्भक्तित्रियोगतः ॥१३॥
बहुश्रुतवतां भावैः प्रवचनस्य श्रुताप्तये। मनोवाक्काययोगैश्च भक्तिं मुक्तिसखीं व्यधात् ॥१४॥

न लग जाय इस रूपसे वे शील व्रतोंका पालन करते थे इसलिये उनके अतीचार रहित शील व्रतोंका पालनारूप भावना थी वे श्रुतज्ञानका निरन्तर अध्ययन करते थे और दूसरोंको अध्ययन कराते थे इसलिये उनके सर्वदा ज्ञानाभ्यास करना रूप भावना थी ॥१०॥ शरीर भोग और स्त्री पुत्र आदि समस्त संसारके पदार्थोंसे उन्हें प्रति समय संवेग रहता था। इसलिये वे संवेग भावनाका पालन करते थे। अन्य मुनियोंको सिद्धान्तका रहस्य प्रदान करते थे इसलिये शक्तिके अनुसार दान देना रूप उनके भावना थी। ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंको जड़से नष्ट करनेके लिये वे शक्तिको न छिपाकर समस्त तप तपते थे इसलिये उनके शक्तिके अनुसार तप भावनाका पालन था। मुनियोंके तपमें किसी प्रकारका विघ्न आकर उपस्थित हो जाय और उससे उनके आवश्यक कर्ममें किसी प्रकारकी रुकावट उपस्थित हो जाय तो उनका समाधान कर देना समाधि है। मुनिराज वैयावृत्य अच्छी तरह साधुओंकी समाधि करते थे इसलिये वे पूर्णरूपसे साधु समाधि नामक भावनाके पालक थे ॥११-१२॥ आचार्य १ उपाध्याय २ तपस्वी ३ शैक्ष्य ४ ग्लान ५ गण ६ कुल ७ संघ ८ साधु ९ और मनोज्ञ १० इस प्रकार ये दश भेद साधुओंके होते हैं। इन दश प्रकारके साधुओंको दुःख उपस्थित होनेपर दुखके दूर करनेकी इच्छासे जो टहल चाकरी करना है वैयावृत्य करना रूप भावना मुनियोंकी बड़े प्रेमसे टहल चाकरी करते थे इसलिये वैयावृत्यकरण नामकी भावनाका भी उनके अखंडरूपसे पालन था। वे मुनिराज मन-वचन और कायकी शुद्धि रखकर अर्हंत और आचार्योंकी पूर्ण भक्ति करते थे इसलिये उनके अर्हंत भगवानकी भक्ति और आचार्य भगवानकी भक्ति ये दोनों भावनायें भी

---

१. मुनिगणतपःसंधारणं समाधिः भाण्डागाराग्निप्रशमनवत् ॥८॥ जिस प्रकार अन्न आदिसे परिपूर्ण कोठारमें किसी कारण से आग लग जाय तो उसका बुझाना अत्यन्त उपकारका करनेवाला है इस बुद्धिसे वह बुझा दी जाती है उसी प्रकार अनेक प्रकारके व्रत और शीलोंके पालन करनेवाले साधुओंके तपमें यदि किसी रूपसे विघ्न उपस्थित हो जाय तो उसे दूरकर साधुओंका समाधान कर देना साधुसमाधि है रा० वा० २६६।

प्रमादेन बिना यागी षडावश्यकपूर्णतां । काले काले करोत्येव तद्धानिं न च जातुचित् ॥१५॥
जिनशासनमाहात्म्यं व्यक्तीकुर्यात्तपश्चिदा । वत्सलत्वं विधत्ते प्रवचनस्य च दृग्जुषां ॥१६॥
एतानि कारणान्येव तीर्थकृन्नामकर्मणः । भावयामास सिद्धयै त्रिशुद्धया हृदि स षोडश ॥१७॥

अखण्डरूपसे थीं। वे मुनिराज श्रुतज्ञानकी प्राप्तिके लिये बहुत शास्त्रोंके जानकार उपाध्यायोंकी और शास्त्रोंकी भी मन वचन काय रूप योगोंकी शुद्धतासे मोक्षरूप स्त्रीकी सखी स्वरूप अखण्ड भक्ति करते थे इसलिए उनके बहुश्रुतभक्ति और प्रवचनभक्ति नामकी भी दोनों भावनाओंका अखंडरूपसे पालन था ॥१४॥ सामयिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ बंदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ और कायोत्सर्ग ६ ये छह भेद आवश्यक क्रियाओंके माने हैं। जहांपर हिंसादि समस्त पापयोगोंकी निवृत्ति है वह सामायिक नामका आवश्यक है। चौबीसों तीर्थंकरोंके गुणोंका कीर्तन करना चतुर्विंशतिस्तव नामका आवश्यक है। मन वचन कायकी शुद्धि रखना दोनों प्रकारके आसनोंका उपयोगमें लाना, चारों दिशाओंमें चारबार मस्तकका झुकाना और प्रत्येक दिशामें तीन-तीनके भेदसे बारह आवर्त करना बंदना है, भूतकालमें लगे हुए दोषोंका परिहार करना प्रतिक्रमण, भविष्यत्में लगनेवाले दोषोंका परिहार करना प्रत्याख्यान एवं कुछ परिमित कालका संकल्प कर "यह मेरा है" इस रूपसे शरीरसे ममत्व बुद्धिका त्याग कर देना कायोत्सर्ग है। वे मुनिराज प्रमादको सर्वथा दूर कर जिस आवश्यक क्रियाका जिस समयमें विधान था उसी समयमें परिपूर्ण रूपसे करते थे किन्तु किसी आवश्यक क्रियाकी हानि वे कभी नहीं करते थे इस रूपसे छहों आवश्यकोंका पालन होनेसे वे 'छह आवश्यकोंका नियमसे पालना' नामकी भावनाको अच्छी तरह पालते थे ॥१५॥ वे मुनिराज नाना प्रकारके उग्र तपोंको तपकर भगवान जिनेन्द्रके शासनका माहात्म्य भी अच्छी तरह प्रदर्शन करते थे इसलिये मार्ग प्रभावना नामकी भावना भी उनके अच्छी तरह पालन होता था तथा सम्यग्दृष्टि पुरुषोंमें गाय बच्छाके समान प्रेम रखना प्रवचन वत्सलत्व नामकी भावना है[1]। वे मुनिराज साधर्मी भाइयोंमें गौ बच्छाके समान अत्यन्त प्रेम रखते थे इसलिये प्रवचनवत्सलत्व नामकी भावना भी उनके अखण्ड रूपसे पालन था ॥१६॥ इस प्रकार वे मुनिराज वैश्रवण तीर्थंकर

१. राजवार्तिक पृष्ठ संख्या २६६।२ वत्से धेनुवत्सधर्मणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्व ॥१३॥ पृष्ठ संख्या २६७।३ अहिंसा आदि पांच महाव्रत, ईर्या आदि पांच समिति, पांचों इन्द्रियोंका दमन, ऊपर कहे छह आवश्यक २१ यावज्जीवन स्नानका त्याग २२ भूमिपर शयन २३ वस्त्रत्याग २४ केशलोंच २५ एक बार लघु-भोजन २६ दंतधावन नहीं करना २७ खड़े होकर आहार २८ ये अट्ठाईस मूलगुण हैं।

तेषां माहात्म्ययोगेन तीर्थकृत्कर्म सोऽद्भुतं । बबंधानंतशर्माब्धिं त्रैलोक्यक्षोभकारणं ॥१८॥
पालयन्निरतीचारान सर्वान् मूलगुणान्मुनिः । अनेकर्द्धिसमूहं स प्रापोग्रतपसा चिदा ॥१९॥
तपस्यन् सुचिरं ज्ञात्वा स्वल्पायुरतिदुर्लभं । ततोऽते स समाध्यादिसिद्धयै सन्यासमाददौ ॥२०॥
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रतपसां मुक्तिदायिनां । आराधनां परा आराधयत्येवाघहानये ॥२१॥
सर्वान् परीषहान् जित्वा सत्त्वोत्साहकलाद् बली । कृशदेहोऽपि धत्ते न मानक् क्लेशं क्षुधादिभिः ॥२२॥
आर्तरौद्रद्वयं हत्वा धर्म्यशुक्लात्तमानसः । स्थिरचित्तेन योगी स महाध्यानं सदा भजेत् ॥२३॥
ध्यानमादौ करोत्येव पंचानां परमेष्ठिनां । मनशुद्धयै च तत्त्वानामानुप्रेक्षादिचिंतकः ॥२४॥

नामकी प्रकृतिके असाधारण कारण दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक सदा अपने मनमें भाते रहते थे। दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंके भानेसे उनके अनंते कल्याणोंका करनेवाला और तीनों लोकको खलबला डालनेवाला तीर्थंकर प्रकृतिका बंध बँध गया ॥१८॥ सर्वथा अतीचारोंसे रहित समस्त मूलगुणोंको पालन करनेवाले उन मुनिराज वैश्रवणके सम्यग्ज्ञानपूर्वक उत्तम तप तपनेसे अनेक प्रकारकी ऋद्धियोंका समूह प्रकट हो गया। इस प्रकार बहुत काल तक तप करते-करते मुनिराज वैश्रवणको यह ज्ञान हो गया कि मेरी आयु बहुत ही कम रह गई है और इस प्रकारकी उत्तम आयुका पाना दुर्लभ है उन्होंने अन्त-कालमें समाधि आदिकी सिद्धिके लिये निर्मल परिणामोंसे संन्यास धारण कर लिया ॥१९-२०॥

उन मुनिराजने समस्त पापोंके नाशके लिये साक्षात् मोक्ष प्रदान करनेवाली सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र और तप इन चारों आराधनाओंका भक्तिपूर्वक बड़े उत्साहसे भावना किया ॥२१॥ क्षुधा तृषा शीत उष्ण आदि समस्त परीषहोंको उत्साह और बलसे जीतनेके कारण यद्यपि उन मुनिराजका शरीर नितान्त कृश हो गया था तथापि भूख प्यास आदिके कारण उनके चित्तमें रंचमात्र भी क्लेश न था, परमात्मपदकी प्राप्तिकी अभिलाषासे सदा उनका चित्त प्रसन्न रहता था ॥२२॥ मुनिराज वैश्रवणके चित्तसे आर्त और रौद्र ध्यान सर्वथा नष्ट हो चुके थे सदा धर्म-ध्यान और शुक्लध्यानका ही चिंतवन था इसलिये चित्तको स्थिरकर वे सदा इन्हीं दोनों प्रशस्त ध्यानोंका चिंतवन करते रहते थे निन्दित ध्यानकी ओर स्वप्नमें भी उनकी दृष्टि नहीं जाती थी ॥२३॥ अनित्य अशरण आदि बारह भावनाओंके चिंतवन करनेवाले वे मुनिराज मनकी विशुद्धताके लिये सबसे पहिले अर्हंत सिद्ध आचार्य

ततः स्थिरमना ध्यानी चिदानंदमयं परं। अनंतगुण कर्तारं ध्यायेत्स्वात्मानमंजसा ॥२५॥
तेन ध्यानेन योगींद्रः प्रसन्नमनसा दश। प्राणान्विश्वहितानंते विससर्ज समाधिना ॥२६॥
रत्नत्रयतपोयोगमहापुण्योदयात्ततः। सोऽनुत्तरत्रिमानेषु ह्यपराजितनामनि ॥२७॥
शिलासंपुटमध्यस्थे दिव्ये पल्यंककोमले। शुक्लरत्नहतध्वांते अहमिंद्रो बभूव हि ॥२८॥
घटिकाद्वयकालेन प्राप्य संपूर्णयौवनं। दिव्यस्रग्वस्त्रभूषाढ्यं दिव्यं त्यक्तोपमं महत् ॥२९॥
उत्थाय शयनाद्देवो वीक्षते स्म दिशोऽखिलाः। चाहमिंद्रविमानानि महर्द्धीन् विस्मिताशयः ॥३०॥
ततोऽप्यनंतरं प्राप्यवधिज्ञानं स तत्क्षणं। तेनाज्ञासीद्धि सर्वं प्राग्जन्मव्रततपः फलं ॥३१॥

उपाध्याय और सर्व साधु इन पाँचों परमेष्ठियोंका ध्यान करते थे, पश्चात् जीव अजीव आदि तत्त्वोंका ध्यान करते थे ॥२४॥ पाँचों परमेष्ठि और तत्त्वोंके चिन्तवनके बाद वे मुनिराज मनको सर्वथा निश्चल कर चिदानन्द चैतन्य स्वरूप और अनंत गुणोंके स्थान अपनी आत्माका भले प्रकार ध्यान करते थे ॥२५॥ स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियाँ मनोबल वचनबल और कायबल ये तीन बल एवं श्वासोच्छ्वास और आयु ये दश प्राण हैं।[1] इस प्रकार ध्यान करनेवाले योगियोंके इन्द्र मुनिराज वैश्रवणने प्रसन्न चित्त होकर अन्तमें समाधिके द्वारा समस्त लोगोंका हितकारी इन दश प्राणोंका परित्याग किया ॥२६॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्-चारित्र और तपके सम्बन्धसे मुनिराज वैश्रवणके महा पुण्यका उदय हो चुका था इसलिये उस तीव्र पुण्यके उदयसे उन्होंने विजय वैजयंत जयन्त अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ये जो पाँच अनुत्तर विमान हैं उनमें चौथे अपराजित विमानमें जन्म लिया एवं वहाँ पर शिलाके मध्यभागमें एक अत्यन्त दिव्य कोमल सेज बनी हुई है जो कि अपने महा उज्वल सफेद रत्नोंकी प्रभासे समस्त अंधकारको नष्ट करनेवाली है उस कोमल सेज पर उत्पन्न हो अहमिंद्र पदका लाभ किया ॥२७-२८॥ अपनी उत्पत्ति कालके दो घड़ी बाद उस अहमिंद्रने भूषित, दिव्य अनुपम और महान ऐसी पूर्ण दिव्यमाला वस्त्र और यौवन अवस्थाको प्राप्त भूषणोंसे किया हो। इसके बाद महान ऋद्धिका धारी वह अहमिंद्र देव उस अनुपम सेजसे उठा और आश्चर्यसे विस्मित उसने समस्त दिशा और अहमिंद्रोंके विमानोंको बड़े ध्यानसे देखा। उसके बाद उसे क्षणभरमें अवधिज्ञान प्राप्त हो गया एवं "पहिले जन्ममें मैंने रत्नत्रय व्रत और उत्तम

---

१. पंचवि इन्दियपाणा मनवचकायेण तिण्णि बलपाणा। आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेव हुंति दहपाणा ॥ यह गाथा मूल प्रतिकी टिप्पणीमें है इसका अर्थ ऊपर लिखा है।

अहो पश्य व्रतस्येदं माहात्म्यमद्भुतोदयं । अत्रेति हृदि संचित्य धर्मं दध्यात्परां मतिं ॥३२॥
ततोप्यादौ जिनागारे गत्वानेकर्धिसंकुलैः । अहमिंद्रैः समं दिव्यसामग्र्या श्रीजिनेशिनां ॥३३॥
महामहं चकारोच्चैः संकल्पोत्पन्नवस्तुभिः । निरोपम्यैर्महानीरादिफलांतैर्मनोहरैः ॥३४॥
भक्त्या नुतिस्तवाद्यैश्च विधायोत्सवमद्भुतं । उपार्ज्य बहुधा पुण्यं निजस्थानमगात्ततः ॥३५॥
विशुद्धे स्फाटिके रम्ये विमानेऽत्यंतसुन्दरे । विश्वर्द्धिसंकुदे सारे संख्ययोजनविस्तरे ॥३६॥
सद्वनोपवनादौ च क्रीडाद्रौ तुंगधामनि । अहमिंद्रैः समं सोऽत्र रमतेस्म क्वचिन्मुदा ॥३७॥
अहमिंद्रैरनाहूतमिलितैः सार्धमात्मवान् । क्वसित्स कुरुते गोष्ठीं महाधर्मभवांपरान् ॥३८॥
निसर्ग सुन्दरे तत्रास्थानेऽतीव मनोहरे । या रतिर्जायते तेषां ना नोऽन्यत्र क्वचिद्भुवि ॥३९॥

तपका आचरण किया था उसका यह फल है ।" ऐसा अवधिज्ञानके बलसे जान लिया जिससे इसका समस्त आश्चर्य दूर हो गया ॥२९-३१॥

ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि व्रतका माहात्म्य बड़ा ही आश्चर्यकारी है देखो ! कहाँ तो राजा वैश्रवणका जीव मुनि अवस्थामें था और कहां जाकर अपराजित नामके अनुत्तर विमानमें महान् ऋद्धिका धारक अहमिंद्र हो गया इसलिये सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे यह परम आश्चर्यकारी व्रतका माहात्म्य अच्छी तरह विचारकर सदा अपनी उत्कृष्ट बुद्धिको धर्मके अन्दर ही लगावें—किसी भी अवस्थामें धर्मके स्वरूपको न विसारें ॥३२॥ जिस समय उस अहमिंद्रको अपने स्वरूपका पूर्णरूपसे ज्ञान हो गया वह सबसे पहिले भगवान जिनेन्द्रके मन्दिरमें गया और वहाँ स्मरण करते ही सामने आनेवाली अनुपम मनोहर ऐसी जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य दीप धूप और फलरूप दिव्य सामग्रीसे बड़ी-बड़ी ऋद्धियोंके कारण अहमिंद्रोंके साथ भगवान जिनेन्द्रकी भक्तिपूर्वक महा पूजा की ॥३३-३५॥ महापूजाके बाद बड़ी भक्तिसे भगवानको नमस्कार किया । ललित शब्दोंमें स्तुति की । अत्यन्त आश्चर्य करनेवाला उत्सव किया । जिससे उसे बहुत प्रकारके पुण्यकी प्राप्ति हुई पश्चात् वह अपने स्थानस्वरूप विमानमें आ गया ॥३५॥ वह अहमिंद्रका जीव निर्मल स्फटिकमयी रिझानेवाले अत्यन्त सुन्दर, समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त उत्कृष्ट और संख्यात योजन चौड़े अपने विमानमें उत्तमोत्तम वन और उपवन आदिमें क्रीड़ा पर्वतोंमें और ऊँचे-ऊँचे महलोंमें अहमिन्द्रोंके साथ मनमानी आनन्द क्रीड़ा करता था, कभी-कभी बिना बुलाये अपने आप आये हुए अहमिन्द्रोंके साथ महाधर्म-जैनधर्मपर विचार करने-वाली गोष्ठी करता था ॥३६-३८॥ स्वभावसे ही सुन्दर अतएव मनोहर उस

अहमिंद्रोऽहमिंद्रोऽस्मि मत्तो नान्यो हरिर्महान् । वितर्कयेति हृदा ते लभंते स्वोन्नतिजं सुखं ॥४०॥
समभोगोपभोगाढ्याः सादृश्या दिव्यमूर्त्तयः । समज्ञानकलातेजःकांतिकल्पाणसद्गुणाः ॥४१॥
समप्रेममहद्धींशाः समधर्मपरायणाः । समानोत्कृष्टसच्छुक्ललेश्याः शुद्धाशयान्विताः ॥४२॥
समाचरणपुण्योत्थविपाकेनातिसुन्दराः । सादृशा अहमिंद्रास्ते भवंति मुक्तिगामिनः ॥४३॥
यत्सुखं जायते स्वर्गे शक्राणां देवतोभवं । तस्मात्तेषामसंख्यातं निःप्रवीचारमेव तत् ॥४४॥

विमानमें जितना उन अहमिन्द्रोंका घनिष्ठ प्रेम था उतना पृथिवीके अन्य किसी स्थानपर उनका प्रेम न था ॥३९॥

वहाँपर अहमिंद्रः अहमिंद्रः अर्थात् मैं इन्द्र हूँ, मैं इन्द्र हूँ मुझसे बढ़कर कोई भी इन्द्र नहीं, सदा ऐसा विचार हृदयमें उछलता रहता है इसलिये सर्वदा ऐसा मनके अन्दर विचार रखनेसे वे अपनी उन्नतिसे उत्पन्न स्वाधीन सुखका भोग करते हैं ॥४०॥ समस्त इन्द्रोंके भोग और उपभोग समान रूपसे होते हैं—रंचमात्र कमी-बेशी नहीं होती। उनकी दिव्यमूर्ति भी समान होती है—जो एकको मूर्ति होगी वही दूसरेकी होगी, रंचमात्र भी उसमें भेद नहीं हो सकता। समस्त अहमिंद्रोंका ज्ञान भी समान रहता है। कला प्रताप कीर्ति कल्याण और उत्तम गुण भी सबोंके समान ही होते हैं। सबोंका प्रेम भी समान ही होता है। महान् ऋद्धियोंका स्वामीपन भी सबोंका एकसा है। धर्ममें तत्परपना भी सबोंका समान है। सदा शुद्ध आशय रखनेवाले उन अहमिंद्रोंके उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या भी समान है तथा समान रूपसे चारित्रके पालनेसे जायमान पुण्यके विपाकसे समस्त अहमिंद्र अत्यन्त सुन्दर होते हैं इस रूपसे समस्त अहमिंद्र सब बातोंके समान हैं किसीमें किसी प्रकारकी हीनाधिकता नहीं तथा वे समस्त अहमिंद्र मोक्षगामी हैं अधिकसे अधिक दो बार मनुष्य भव धारण कर वे नियमसे मोक्ष चले जाते हैं ॥४१-४३॥ स्वर्गोंके अन्दर जो सुख देवरूपसे इन्द्रोंको प्राप्त हैं उस सुखकी अपेक्षा अपराजित विमानवासी अहमिंद्रोंका सुख

---

१. विजयादिषु द्विचरमाः ॥२६॥ अर्थात् विजय आदि चार विमानवासी देव द्विचरम हैं, अधिकसे अधिक दो बार मनुष्यभव धारणकर नियमसे मोक्ष चले जाते हैं सर्वार्थसिद्धि विमानवासी एक भवावतारी ही हैं। अ० ४ तत्त्वार्थसूत्र।

२. कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥७॥ अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्गनिवासी देवोंमें कायजनित प्रवीचार—मैथुन सेवन है "शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः" ॥८॥ अर्थात् पहिले और दूसरे स्वर्गोंके सिवाय अन्य स्वर्गोंके देवोंमें स्पर्श आदि जनित प्रविचार है। तथा "परेऽप्रवीचाराः" ॥९॥ अर्थात् सोलह स्वर्गोंके ऊपरके देव प्रवीचार रहित हैं—उनके प्रवीचार जनित किसी प्रकारका सुख नहीं। तत्त्वार्थसूत्र अ० ४।

सर्वोत्कृष्टं सुखं यच्च संसारे पुण्यसंभवं। तत्सर्वंविद्यते तेषां तत्र शांतांतरंगजं ॥४५॥
तेजः पुंजनिभं दिव्यं शरीरं तस्य विद्यते। निःसर्गसुन्दरं विश्वदलग्भूषांवरशोभितं ॥४६॥
हस्तोच्छ्रितिषरं रम्यं कांतिद्योतितदिमुंखं। पुण्यमूर्तिरिवात्यंतसुभगं विक्रियातिगं ॥४७॥
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुः स शुभध्यानतत्परः। अस्पंदनयनो रेजे ध्यानारूढो मुनिर्यथा ॥४८॥
त्रयस्त्रिंशत्सहस्रोक्तवत्सराणां व्यतिक्रमे। मनसा दिव्यमाहारमादत्तेऽतिसुखप्रदं ॥४९॥
अतिक्रांते त्रयस्त्रिंशत्पक्षाणां लभते मनाक्। उच्छ्वासं सोऽहमिंद्रोऽतिसुगंधीकृतदिग्व्रजं ॥५०॥

असंख्यात गुणा अधिक है और वह सुख प्रवीचार—मैथुनकी अभिलाषासे रहित है अर्थात् सोलह स्वर्ग पर्यन्त देवोंका सुख तो प्रवीचारसहित है। उनमें सौधर्म और ऐशान स्वर्गनिवासी देव मनुष्योंके समान शरीरसे मैथुन सेवन करते हैं आगेके स्वर्गोंके देवोंमें कोई कोई अपनी देवांगनाओंके स्पर्शमात्रसे ही तृप्त हो जाते हैं कोई-कोई रूप देखकर तो कोई-कोई भूषणोंका शब्द सुनकर एवं कोई-कोई अपनी देवांगनाओंका मनमें स्मरण करनेसे ही तृप्त हो जाते हैं किन्तु सोलह स्वर्गोंके आगेके देवोंमें प्रवीचारका कोई सम्बन्ध नहीं वे प्रवीचार रहित हैं इसलिये अपराजित विमानवासी देव भी प्रवीचाररहित दिव्य सुखके भोगने वाले हैं ॥४४॥ पुण्यसे जायमान संसारमें जो भी उत्कृष्ट सुख माना गया है वह समस्त शान्तिस्वरूप और अन्तरंगसे जायमान सुख अहमिन्द्रोंके मौजूद है ॥४५॥ मुनिराज वैश्रवणके जीव अहमिन्द्रका शरीर साक्षात् तेजका पुंज ही है क्या ऐसा था। स्वभावसे ही सुन्दर था एवं सब प्रकारकी माला उत्तमोत्तम भूषण और वस्त्रोंसे अत्यन्त शोभित था। तथा वह एक हाथ ऊँचा था। महामनोहर था। अपनी अनुपम कांतिसे समस्त दिशाओंके मुखोंको जगमगानेवाला था, पुण्यकी साक्षात् मूर्तिके समान—अत्यन्त सुभग था और विक्रियासे रहित था ॥४६-४७॥ उस अहमिन्द्रकी तेतीस सागरकी आयु थी। सदा वह शुभ ध्यानमें लीन लगा रहता था और उसके नेत्र स्पंदन क्रियासे रहित निर्निमेष थे इसलिए वह ऐसा जान पड़ता था मानो ध्यान क्रियामें तल्लीन यह साक्षात् मुनि हैं ॥४८॥ जिस समय तेतीस हजार वर्ष व्यतीत हो जाते थे उस समय वह मनसे संकल्पित दिव्य आहार ग्रहण करता था जो कि अत्यंत सुख प्रदान करनेवाला होता था ॥४९॥ वह पुण्यात्मा अहमिंद्र जब तेतीस पक्ष बीत जाते थे तब थोड़ासा उच्छ्वास लेता था और वह इतना उत्कट सुगंधित होता था कि उसकी सुगंधिसे समस्त दिशाओंके समूह महक जाते थे—समस्त दिशाओंमें सुगंध ही सुगंध फैल जाती थी ॥५०॥ वह महा-

लोकनाडयंतरालस्थं मूर्तं वस्तु चराचरं । सर्वंजानाति शक्तोऽसौ सावधिज्ञानचक्षुषः ॥५१॥
समर्थः स्वावधिज्ञानसमक्षेत्रे सुरोत्तमः । विक्रियर्द्धिबलात्कर्तुं गमनाद्यखिलक्रियां ॥५२॥
निसर्गस्थिरचित्तोऽसौ सर्वकार्यादिवर्जितः । न कुर्याद्विक्रियां जातु निराशो गमनादि च ॥५३॥
स्थानस्थोऽपि जिनेशानां कृत्रिमाकृत्रिमाणि सः । ज्ञात्वा ज्ञानेन चैत्यानि नमति स्म निरंतरं ॥५४॥
पंचकल्याणकालेऽपि जिनेंद्राणां वृषाप्तये । प्रणमं विनयं भक्त्या कुर्यात्तत्रस्थ एव हि ॥५५॥
मुनीनां ज्ञाननिर्वाणकालं ज्ञात्वावधेर्बलात् । नमस्कारं सदा कुर्यान्मूर्ध्ना भक्तिभराङ्कितः ॥५६॥
इत्यादि बहुधा धर्मं भजमानस्तथा सुखं । निमग्नस्तत्र धर्माब्धौ सोऽस्थाच्चिंतातिगो महान् ॥५७॥

प्रतापी अहमिंद्र तीन सौ तेतालीस योजन घनाकार लोक नाड़ीके अन्दर जितने स्थावर जंगम मूर्तिक पदार्थ भरे हुए हैं अपने दिव्य अवधिज्ञानरूपी नेत्रसे भले लोक नाड़ीके अन्दरका ऐसा कोई भी मूर्तिक पदार्थ बाकी नहीं बचा था जिसे वह अपने अवधिज्ञानसे न जानता हो ॥५१॥ उस अहमिन्द्रके अवधिज्ञानका विषय लोकनाड़ी बतलाया है इसलिये जितना क्षेत्र उसके अवधिज्ञानका विषय है उतने क्षेत्र तक वह अपनी विक्रिया ऋद्धिके बलसे गमन आगमन आदि समस्त क्रियाओंके करनेमें समर्थ था तथापि वह स्वभावसे ही स्थिर चित्तका धारक था समस्त कार्य आदिसे रहित था कोई भी उसे कार्य करना न था इसलिये कभी भी विक्रिया शक्तिको काममें नहीं लाता था एवं कहीं भी जाने आनेकी उसकी इच्छा न होती थी इसलिये वह कहीं पर जाना आना नहीं करता था अपने निजी स्थानमें ही अनेक प्रकारकी क्रीड़ाओंको करता हुआ आनन्दसे रहता था ॥५२-५३॥ अपने स्थान पर रहकर केवल क्रीड़ा कौतूहलोंमें ही वह दिन नहीं बिताता था किन्तु अपने अवधिज्ञानके बलसे कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालयोंको अच्छी तरह जानकर उनमें विराजमान भगवान जिनेन्द्रके प्रतिबिम्बोंको सदा भक्तिपूर्वक नमस्कार करता था ॥५४॥ जिस समय तीर्थंकरोंके गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाणरूप पाँचों कल्याणोंका समारोह होता था उस समय भी वह पुण्यात्मा अहमिन्द्र धर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे तीर्थंकरोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता था और उनके गुणोंमें चित्तके अन्दर बड़ी भारी विनय करता था ॥५५॥ जिस समय उसे अवधिज्ञानके बलसे सामान्य मुनियोंके ज्ञान कल्याणका भी पता लगता था उस समय उन्हें भी वह भक्तिके भारसे नम्रीभूत हो सदा मस्तक झुकाकर नमस्कार करता था ॥५६॥ इस प्रकार अनेक प्रकारसे धर्मका आराधना करता हुआ वह महान् ऋद्धिका धारी अहमिंद्र कल्याणके समुद्रस्वरूप उस अहमिंद्र पदके सुखमें सदा निमग्न

अथात्र भारते क्षेत्रे महापुरुषसंभूते । वंगदेशोऽतिविख्यातो भवेद्धर्माकरो महान् ॥५८॥
यत्र पत्तनसत्खेटपुरग्रामादयो बुधैः । धार्मिकैश्च जिनागारैर्भांति धर्माकरा इव ॥५९॥
वनानि तृप्तिकर्तृणि रम्यानि सफलानि च । भ्राजंते यत्र तुंगानि यतेराचरणानि वा ॥६०॥
तृष्णाशर्मापनोदाश्च सद्वो वाप्यादयः पराः । गंभीराः शीतलाः स्वच्छा मुन्याद्या इवाबभुः ॥६१॥

रहता था एवं उस समय उसे किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी पड़ी थी—वह वहाँ निश्चिन्त हो सुखसे काल व्यतीत करता था ॥५७॥

अनेक महापुरुषोंके स्थान स्वरूप इसी भरत क्षेत्रमें अत्यन्त मनोहर एक बंग (बङ्गाल) देश है जो कि पृथ्वीपर अत्यन्त विख्यात है धर्मका परम स्थान है और धन-धान्य आदिसे समृद्ध होनेके कारण अत्यंत महान् है ॥५८॥ उस समय उस देशके पत्तन खेट पुर और गांव आदिमें धर्मात्मा लोग निवास करते थे। जगह-जगह भगवान जिनेंद्रके मन्दिर जगमगाते थे इसलिये वह देश उस समय धर्मकी खानि सरीखा जान पड़ता था। इस बंग देशके स्वभाव सिद्धवन मुनियोंसे आचार सरीखे जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार मुनियोंके आचार मनोहर आनन्दको प्रदान करनेवाले हैं उसी प्रकार ये वन भी अत्यन्त मनोहर थे। जिस प्रकार मुनियोंके आचार फलविशिष्ट होते हैं अर्थात् स्वर्ग मोक्ष आदि फलोंके प्रदान करनेवाले होते हैं उसी प्रकार वे वन भी फल विशिष्ट थे नारंगी संतरा अनार अंगूर आदि उत्तमोत्तम फलोंसे सदा लदे रहते थे एवं जिस प्रकार मुनियोंके आचार तुंग—उच्च होते हैं उसी प्रकार वे वन भी महा ऊँचे-ऊँचे और विशाल थे ॥५९-६०॥ उस बंगदेशकी वापियाँ भी मुनिराज-के चित्तोंके समान पवित्र थीं क्योंकि जिस प्रकार मुनियोंके चित्त तृष्णा और उससे जायमान क्लेशसे रहित हैं उसी प्रकार वे वापियाँ भी तृष्णा और उससे जायमान क्लेशसे रहित थीं अर्थात् उन्हें देखते ही लोगोंकी तृष्णा और उससे जायमान क्लेश दूर भाग जाता था। मुनियोंके चित्त परम शीतल और स्वरूपमें लीन रहते हैं उसी

---

१. ये वैमानिक देवोंमें विशिष्ट जातिके देव हैं। इनका निवासस्थान ब्रह्मस्वर्गके अन्तमें है। इन देवोंमें बड़े छोटेका विभाग इसलिये नहीं स्वतन्त्र हैं। विषय-वासनासे रहित ब्रह्मचारी हैं इसलिये इन्हें देवर्षि [देवोंमें ऋषि] कहा जाता है तथा इसी कारण अन्य देव इनकी पूजा सत्कार करते हैं। ये मोदह पूर्वके धारी सदा ज्ञानकी भावना भानेवाले, संसारसे भयभीत, अनित्य आदि भावनाओंके सदा चिन्तवन करनेवाले, परम सम्यग्दृष्टि भगवान् तीर्थंकरके तप कल्याणके समय आकर दीक्षनेवाले होते हैं और एक भव धारण कर मोक्ष चले जाते हैं।

विरहंति यतीशाश्च भव्यानुग्रहकारिणः। सार्धं संघाटकेनात्र धर्मवर्तनहेतवे ॥६२॥
तीर्थयात्रादिसंभूतो धर्मप्रभावनोद्भवः। जिनपूजादिजो यत्रोत्सवो नित्यं प्रवर्तते ॥६३॥
यत्रोत्पन्नाः विदः केचित्तपसा यांति निर्वृतिं। केचिज्ज्व गृहिधर्मेण नाकं लौकांतिकास्पदं ॥६४॥
केचित्सत्पात्रदानेन भोगभूमि सुखाकरां। भजतींद्रपदं केचिच्छीजिनेंद्रादिपूजया ॥६५॥
यत्रेहंते स्वजन्माहो धर्मसिद्धयै सुधाभुजः। तस्य स्वर्मुक्तिहेतोर्हिदेशस्य का वर्णना परा ॥६६॥
इत्यादिवर्णनोपेतदेशस्य नाभिवत्तरां। मिथिलाख्या पुरी भाति स्वपुरीव सुधार्मिकैः ॥६७॥
तुंगशालप्रतोलीभिर्दीर्घखातिकया च सा। अयोध्येवाभाच्छत्रूणामागम्या च भटोत्तमैः ॥६८॥

प्रकार वे वापियाँ परम शीतल और अपने परिमित स्वरूपमें विराजमान थीं ॥६१॥ संसारमें वास्तविक धर्मकी प्रवृत्ति है इस अभिलाषासे मोक्षाभिलाषी भव्योंपर उपकार बुद्धिसे प्रेरित हो सदा वहाँ अपने संघके साथ मुनिगण विहार करते थे ॥६२॥ वहाँ कोई कोई पवित्र तीर्थोंकी यात्राकी तैयारियाँ करते थे। कोई कोई धर्मकी प्रभावना करने वाले कार्य करते और कोई कोई भगवान जिनेन्द्रकी पूजा आदिका बड़े ठाट-बाटसे समारोह करते थे इसलिये उस देशमें तीर्थयात्रा धर्म प्रभावना और भगवान जिनेन्द्रकी पूजा आदिका उत्सव सदा होता रहता था ॥६३॥ उस बंग देशमें उत्पन्न होनेवाले कोई कोई विद्वान् पुरुष घोर तपोंको तपकर मोक्ष प्राप्त करते थे और कोई वास्तविक रूपसे गृहस्थ धर्मके पालन करनेवाले पुरुष, उस गृहस्थ धर्मकी कृपासे जहाँपर लौकांतिक देवोंका निवास स्थान है ऐसे पांचवें स्वर्गमें जाकर जन्म धारण करते थे ॥६४॥ कोई कोई महानुभाव उत्तम पात्रोंमें आहार आदि दानोंके देनेसे सदा सुखस्वरूप भोगभूमिके सुखका रसास्वादन करते और कोई कोई पुण्यात्मा भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्र आदिकी पूजाकर दिव्य इन्द्रपद प्राप्त करते थे ॥६५॥ बंगदेशमें उस समय जैनधर्मका ही सर्वत्र प्रचार था और उसके द्वारा लोग सदा स्वर्ग और मोक्ष पदोंको प्राप्त करते थे इसलिये परम धर्मके स्थान और मोक्षके कारण उस देशमें सदा अमृत पान करनेवाले देवगण भी जन्म धारण करनेकी अभिलाषा करते थे ॥६६॥

इस प्रकार उत्तम वर्णनके धारक बंग देशमें एक मिथिला नामकी नगरी है जो कि मनुष्यके शरीरमें नाभि (टुंडी) के समान ठीक उस देशके मध्यभागमें है। अपनी अनुपम शोभासे स्वर्गपुरीके समान है एवं सर्वत्र धर्मात्मा लोगोंसे भरी रहनेके कारण अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है ॥६७॥ जिस प्रकार ऊँचे ऊँचे परकोटे विस्तीर्ण

आह्वयंतीव देवेशां सानेकर्द्धियुता बभौ । प्रसादाग्रध्वजाघातैः समीरांदोलितांशुकैः ॥६९॥
उत्तुङ्गतोरणोपेता यत्र प्रासादपंक्तयः । सशालाः श्रीजिनेन्द्राणां शोभंते वा वृषाश्रयः ॥७०॥
हेमरत्नादिबिंबाढ्यैं गीतनृत्यस्तवादिभिः । दिव्योपकरणैर्वाद्यैर्तायातैश्च धार्मिकैः ॥७१॥
कचित्सुपात्रदानोद्भवसद्रत्नादिवृष्टिभिः । नित्यमन्यैः सुमांगल्यैर्बततैऽस्यां महोत्सवः ॥७२॥
जिनेन्द्रगुरुभक्ताश्च ज्ञान विज्ञानवेदिनः । दानिनो धर्मशीलाः सङ्घसाः पुण्यानुगामिनः ॥७३॥

गलियां और विशाल खाइयोंसे भूषित अयोध्याकी शोभा शास्त्रमें वर्णित है उसी प्रकार मिथिलापुरीमें भी उसी समय बड़े ऊंचे-ऊंचे परकोटे थे । विस्तीर्ण गलियां थीं और चारों ओर विशाल खाई थी इसलिये वह साक्षात् अयोध्या सरीखी जान पड़ती थी तथा उसमें अयोध्याके समान बड़े बड़े वीर पुरुषोंका निवास स्थान था इसलिए वह शत्रुओंके अगम्य थी कोई भी शत्रु उस समय उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देख सकता था ॥६८॥ उस मिथिलापुरीके बड़े बड़े महलोंके अग्रभागोंमें रंग बिरंगी अनेक ध्वजायें लगी हुई थीं और उनके वस्त्र पवनके झकारोंसे फरहरा रहे थे उससे ऐसा जान पड़ता था कि अनेक प्रकार की ऋद्धियोंसे शोभायमान मिथिलापुरी अपनी ऋद्धियोंका भोग करानेके लिये देवोंको बुला रही है ॥६९॥ बड़े बड़े ऊंचे तोरणोंसे भूषित और अटारियोंसे शोभायमान भगवान जिनेन्द्रके मन्दिरोंकी पंक्तियां ऐसी जान पड़ती थीं मानो वे साक्षात् धर्मकी समुद्र हैं—कोई भी आकर उनमें धर्मलाभ कर सकता है इसलिये जिन मन्दिरोंकी पंक्तियोंसे वह मिथिलापुरी उस समय अत्यन्त शोभायमान थी । मिथिलापुरीके जिनमंदिरोंमें सुवर्णमयी और रत्नमयी प्रतिबिम्ब विराजमान थे । सदा उनमें गीत नृत्य और स्तुतियां आदि हुआ करते थे । छत्र चमर आदि दिव्य उपकरण भी जगह-जगह मंदिरोंकी शोभा बढ़ाते थे । नौबत घुरा करती थी और धर्मात्मा लोगोंका सदा आवागमन बना रहता था इसलिये वे मंदिर महारमणीक जान पड़ते थे ॥७०-७१॥

उस समय मिथिलापुरीमें उत्तम पात्रोंको दानसे तीव्र पुण्यका बंध होता था इसलिए उसके फल स्वरूप रत्न पुष्प और गंधोदक आदिकी वर्षा होती रहती थी तथा अन्य भी नाना प्रकारके मांगलिक कार्य हुआ करते थे इसलिये वह मिथिलापुरी अनेक महोत्सवोंसे सदा जगमगाती रहती थी ॥७२॥ उस मिथिलापुरीके रहने वाले पुरुष भगवान जिनेंद्र और गुरुओंके परम भक्त थे । अनेक प्रकारके ज्ञान विज्ञान-

सदृष्टयोऽतिर्जनः सविनयाः शुद्ध चेतसः । भोगिनो धार्मिकः शूरा विचारचतुरा नराः ॥७४॥
नार्यस्तादृग्गुणोपेतः प्राग्जन्मार्जितपुण्यतः । तस्यामुत्तुंगसौधेषु निवसंति महाकुलाः ॥७५॥
इत्यादिवर्णनाढ्यायां नगर्यां भूपतिर्महान् । कुंभनामातिविख्यातो बभूवादभुतपुण्यवान् ॥७६॥
त्रिज्ञानलोचनो वाग्मी इक्ष्वाकुकुलखांशुमान् । न्यायमार्गरतः काश्यपगोत्रतिलकोपमः ॥७७॥
विश्वाभरणदिव्यांबरमालादीप्तिकांतिभिः । भूषितांगोऽतिधर्मात्मा सदाचारपदार्थवित् ॥७८॥
दाता भोक्ता महादक्षो व्रतशीलादिमंडितः । जिनरक्तो विवेकी सद्दृष्टिर्लोकप्रियोमहान् ॥७९॥

कला-कौशलोंके जानकार थे। सदा आहार आदि दानोंके देनेसे परम दानी थे, धर्मात्मा और शीलवान थे। उत्तमोत्तम व्रतोंके आचरण करने वाले थे। जो मार्ग पुण्य प्राप्ति करानेवाला था उसीके अनुयायी थे, पापवर्धक मार्गका कभी अनुगमन नहीं करते थे। परम सम्यग्दृष्टि थे। जैनधर्मके परम श्रद्धानी थे। अत्यंत विनयालु और सदा शुद्धचित्तके धारक थे, धर्मानुकूल भोगोंको भोगने वाले थे, धर्मको ही सब कुछ माननेवाले थे, शूरवीर थे एवं अच्छे बुरे विचारोंके करनेमें अत्यंत प्रवीण थे। जिस प्रकार पुरुषोंके अन्वर गुण थे उसी प्रकार स्त्रियोंके अन्वर गुण थे अर्थात् वे भी पुरुषोंके ही समान भगवान जिनेंद्र और गुरुओंकी भक्त थीं एवं अनेक प्रकारके कलाकौशलोंकी जानकार आदि थीं। इस प्रकार पहले जन्ममें कमाए गए पुण्यके उदयसे महान् कुलोंमें उत्पन्न वे स्त्री पुरुष उस मिथिलापुरीके ऊंचे-ऊंचे महलोंमें बड़े आनन्दसे निवास करते थे ॥७३-७५॥

इस प्रकार उत्तम वर्णनको धारक उस मिथिलापुरीका राजा कुम्भ था जो कि अनेक राजाओंका शिरोमणि था। पृथ्वीपर प्रसिद्ध था और अत्यन्त पुण्यवान था ॥७६॥ वह राजा कुम्भ मति श्रुत अवधि इन तीन ज्ञानोंका धारक था। हितकारी और परमित वचनोंके बोलनेके कारण वाग्मी था। इक्ष्वाकु वंशरूपी आकाशके लिए बंदीप्यमान सूर्य था। सदा न्यायमार्गका अनुसरण करनेवाला एवं काश्यप गोत्रका तिलक स्वरूप था ॥७७॥ समस्त लोकके आभूषण, दिव्य और मनोहर वस्त्र, माला, तेज और मनोहरतासे उसका शरीर शोभायमान था। अत्यन्त धर्मात्मा था। उत्तम आचरणका आचरनेवाला और पदार्थोंके स्वरूपका भले प्रकार जानकार था ॥७८॥ उत्तम आदि पात्रोंको आहार आदि दान देनेके कारण दाता था। धर्मानुकूल भोगोंका भोगनेवाला होनेके कारण भोक्ता था। राजकार्यमें अत्यन्त प्रवीण था। अहिंसादि पांच अणुव्रत एवं तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार सात

विश्वद्विसंकुलो मान्यो राजते न्यायवर्त्मना । चक्रीव सोऽतिपुण्यात्मा जिनधर्म प्रवर्धकः ॥८०॥
प्रजावतो महादेवी तस्यासीत्प्राणवल्लभा । पुण्यलक्षणपूर्णांगा सत्प्रभाभरणांकिता ॥८१॥
द्विपंचनखचंद्राशुद्युतिदिव्यक्रमाम्बुजा । कदलीगर्भसादृश्यचारुजंघा मनोहरा ॥८२॥
कांचिदामांशुकैः सारैर्विभूषितकटीतटा । कृशोदरा सुवृत्तांतर्नाभिश्चारुपयोधरा ॥८३॥
अनर्घ्यहारसंयुक्तदिव्यवक्षःस्थला सती । मुद्रिकाकंकणाढ्यातीवकोमललसत्करा ॥८४॥
विभ्वाभरणदीप्तांगा दिव्यकंठातिसुस्वरा । महातेजःकलाकांतिकपोलांकितसन्मुखा ॥८५॥

प्रकारका शीलव्रत एवं अन्यान्य व्रतोंका भी भले प्रकार आचरण करनेवाला था। भगवान जिनेंद्रका परम भक्त था। विवेकी और सम्यग्दृष्टि था। समस्त लोकका प्यारा था और महान् था ॥७९॥ वह महानुभाव कुम्भ नामका राजा चक्रवर्तीके समान था क्योंकि चक्रवर्ती जिस प्रकार समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त रहता है। उसी प्रकार यह राजा भी अनेक प्रकारकी ऋद्धि–विभूतियोंसे व्याप्त था, चक्रवर्तीका जिस प्रकार सब लोग आदर सत्कार करते हैं उसी प्रकार राजा कुम्भका भी सब लोग आदर सत्कार करते और मानते थे। चक्रवर्ती जिस प्रकार नीतिमार्गसे प्रजाकी रक्षा करता है उसी प्रकार राजा कुम्भ भी नीतिमार्गसे प्रजाका पालन करता था तथा वह राजा चक्रवर्तीके समान अत्यन्त पुण्यवान और जैनधर्मका संसारमें प्रवर्तानेवाला था ॥८०॥

महानुभाव राजा कुम्भकी प्राणोंको अतिशय प्यारी प्रजावती नामकी पटरानी थी जो कि समस्त शुभलक्षणोंके धारण शरीरसे शुभ थी एवं दैदीप्यमान प्रभाके धारक अनेक प्रकारके आभूषणोंसे भूषित थी। महादेवी प्रजावतीके दशों नखरूपी चन्द्रमाकी किरणोंसे शोभित और दिव्य दोनों चरण कमल थे। केलाके थंभोंके समान अत्यन्त मनोहर दोनों जंघायें थीं ॥८१-८२॥ करधनीकी महामनोहर और सारभूत किरणोंसे उसका कटिभाग अत्यन्त जाज्वल्यमान था। उसका उदर अत्यन्त पतला होनेसे वह कृशोदरी थी। उसकी नाभि भीतरमें चक्करदार और गोल थी और दोनों स्तन अत्यन्त मनोहर थे ॥८३॥ उसका उदर वक्षःस्थल महामूल्यवान हीरोंसे युक्त होनेके कारण जगमगाता था और उसके अत्यन्त कोमल महा मनोहर दोनों हाथ मुद्रिका और कङ्कणोंसे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते ॥८४॥ संसारके समस्त उत्तमोत्तम आभूषणोंकी कांतिसे उसका सारा अंग अत्यन्त दैदीप्यमान था। कंठ अत्यन्त मनोहर था इसलिये उसका बहुत ही मीठा और मनोहर स्वर था एवं

चारुनेत्रोत्पला तुंगनासा भ्रूक्षेपशोभिता । न्यस्ताभरणसत्कर्णा अलिकेशी सुमस्तका ॥८६॥
दिव्यांशुकसुपुष्पस्रग्भिः सर्वैर्विभंडिता । दिव्यलक्षणसम्पूर्णा महारूपा जनप्रिया ॥८७॥
कलाविज्ञानचातुर्यज्ञानसौभाग्यभागिनी । जिनभक्ता सदाचारा विनयाढ्या महासती ॥८८॥
दिव्यभोगोपभोगादिसंप्राप्तप्रस्वमनोरथा । पुण्यकर्मकरा दक्षा व्रतशीलादिभूषिता ॥८९॥
मान्या सर्वजनैः सा भाद्भारतीव प्रजावती । रूपलावण्यसौभाग्यसुखवारिधिपारगा ॥९०॥
तया सार्धं नृपोऽत्यंतप्रेम्णा भोगान्निरंतरं । भुनक्ति स्म यथाकाले तृप्तिकृत् स्वपुण्यजान् ॥९१॥
अथ तस्याहमिंद्रस्य शेषं षण्मासजीवितं । ज्ञात्वा शक्राज्ञया रत्न आगतो मिथिलापुरीं ॥९२॥

उसका मनोहर मुख सौन्दर्यसे लावण्यसे देदीप्यमान कांतिके घर कपोलोंसे भूषित था ॥८५॥ उसके नेत्ररूपी कमल महामनोहर थे, ऊँची नाक थी सुन्दर भृकुटियें थीं उसके दोनों कान पहिने हुए आभूषणोंसे जाज्वल्यमान थे, भौरोंके समान काले केश थे और सुन्दर ललाटसे वह शोभायमान थी ॥८६॥ वह महारानी प्रजावती महामनोहर वस्त्रोंकी पोशाक पहिनती थी। माला आदिका मंडन करती थी समस्त दिव्य गुणोंसे परिपूर्ण थी अतएव महारूपवती और समस्त लोककी प्यारी थी ॥८७॥ अनेक प्रकारकी कलाएँ विज्ञान ज्ञान और सौभाग्यसे शोभायमान थी भगवान जिनेंद्रके गुणोंमें अत्यन्त भक्ति करती थी। सदाचारका आचरण करती थी। अत्यन्त विनय करनेवाली और महासती थी। पुण्यके उदयसे उसे भांति-भांतिके दिव्य भोग और उपभोग आदि प्राप्त थे इसलिये उसके समस्त मनोरथोंकी सिद्धि होती थी। वह महारानी प्रजावती समस्त पवित्र कार्योंको ही करनेवाली थी, हर एक बातमें अत्यन्त चतुर थी और व्रतशील आदिको भले प्रकार पालन करनेवाली थी ॥८८-८९॥ जिस प्रकार सरस्वती देवीका सब लोग आदर सत्कार करते और उसे मानते हैं उसी प्रकार महारानी प्रजावतीको भी सब लोग अति आदरकी दृष्टिसे देखते थे। तथा रूप लावण्य सौभाग्य और सुखरूपी समुद्रके पारको प्राप्त थी अर्थात् परम रूपवती थी, परम लावण्यवती थी और परम सुखको भोगनेवाली थी ॥९०॥ इस प्रकार उत्तमोत्तम गुणोंकी स्थान उस महारानी प्रजावतीके साथ वह राजा कुम्भ तृप्तिके करनेवाले और निज पुण्यसे प्राप्त नाना प्रकारके भोगोंको यथाकाल बड़े स्नेहके साथ निरंतर भोगने लगा ॥९१॥

राजा वैश्रवणका जीव जो कि अपराजित विमानमें जाकर अहमिंद्र हुआ था जब उसकी आयुकी समाप्तिमें केवल छह मासका समय बाकी रह गया–

अनर्घ्यनिकषारत्नत्रयस्वर्णधारावृजैः परैः । स्थूलैर्गजकराकारैः पुष्पांबुकणसंकुलैः ॥९३॥
मणिरश्मिहतध्वांतः कुबेरे सदनाधिपः । रत्नवृष्टिं मुदा नित्यं तयोर्धामनि मन्दिरे ॥९४॥
तदा नृपांगणं सर्वं हेमरत्नादिपूरितं । धर्मस्येव फलं दृष्ट्वा मतिं धर्मे व्यधाज्जनः ॥९५॥
प्रत्यहं रत्नवृष्ट्या स पूरयामास यक्षराट् । स्वर्णरत्नैर्नृपागारं षण्मासांतं लुभाप्तये ॥९६॥
अथ सुप्तेकदा देवी सा सौधे मृदुतल्पके । निशायाः पश्चिमे भागेऽपश्यत् स्वप्नांश्च षोडश ॥९७॥
ऐंद्रं गजेंद्रमुत्तुंगं गवेंद्रं पांडुरद्युतिं । मृगेंद्रमिंदुसच्छायं स्नाप्यां सां हरिविष्टरे ॥९८॥
सुगंधपुष्पमालें च पूर्णचंद्रं सतारकं । हृतध्वांतं च भास्वंतं पद्मास्थौ हिरण्यघटौ ॥९९॥

उस समय वह भगवान मल्लिनाथ तीर्थंकर होनेवाला था और भगवान तीर्थंकरके जन्मसे पन्द्रह मास पहिले उनकी जन्मभूमिमें कुबेर द्वारा रत्नोंकी वर्षा होने लगती है यह नियम है इसलिए इन्द्रने मिथिलापुरी जानेके लिए कुबेरको आज्ञा दी और इन्द्रकी आज्ञानुसार वह शीघ्र ही मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गया ॥९२॥ मिथिलापुरीमें आकर उसने मोटी मोटी हाथीके सूढ़की आकारकी, पुष्प और जल-कणोंसे व्याप्त अमूल्य अनेक प्रकारके रत्नोंकी धारायें वर्षानी प्रारम्भ कर दीं जिनमें कि वर्षनेवाली मणियोंकी प्रभासे समस्त अन्धकार नष्ट होता था इसप्रकार उस दिनसे वह कुबेर राजा और रानीके मनोहर महलमें बड़े आनन्दसे रत्नोंकी वर्षा करने लगा ॥९३-९४॥ उस समय राजा कुम्भके समस्त आंगनको रत्न और सुवर्ण आदिसे परि-पूर्ण देख मनुष्योंने उसे साक्षात् धर्मका फल समझा एवं उस दिनसे उन्होंने धर्मके अन्दर विशेष रूपसे चित्त लगाया ॥९५॥ वह कुबेर पुण्य फलकी प्राप्तिकी अभि-लाषासे प्रतिदिन रत्नवृष्टि करता था इसलिये छहमास पर्यन्त वह राजा कुम्भके मकानको सुवर्ण और रत्नोंसे प्रतिदिन भर दिया करता था ॥९६॥

कदाचित् महारानी प्रजावती अपने शयनागारमें अत्यन्त कोमल मनोहर सेजपर सो रही थी कि अकस्मात् जब रात्रिका कुछ ही भाग शेष रह गया उस समय उसने महामनोहर सोलह स्वप्ने देखे। सबसे पहिले स्वप्नमें उसने इन्द्रका ऐरावत (१) हाथी देखा जो कि महामनोहर अत्यन्त विशाल था। उसके बाद अत्यन्त उन्नत, २ बैल देखा जो कि अत्यन्त सफेद कांतिका धारक था। उसके बाद अत्यन्त परा-क्रमी, ३ सिंह देखा जो कि चंद्रमाकी कांतिके समान कांतिका धारक था। उसके बाद, ४ लक्ष्मी देखी जो कि महामनोहर सिंहासनपर दुग्धके घड़ोंसे स्नान कराई जा

मत्स्यौ सरसि पद्माढ्ये चाब्जपूर्णं सरोवरं । क्षुभ्यंतमब्धिमुद्वेलं हैमं सिंहासनं परं ॥१००॥
नाकालयं स्फुरद्दीप्रं फणींद्रभवनं महत् । रत्नाशिं हृतध्वांतं निर्धूमं विषमार्चिषं ॥१०१॥
दृष्टाविमान् षोडश स्वप्नास्तदंते सा ददर्श च । प्रविशंतं स्वष्ट्वक्त्राब्जे गजेंद्रं तुंगविग्रहं ॥१०२॥

इति सुकृतिविपाकात्प्राप्य रत्नादिवृष्टिं स्वजननृसुरमान्या प्राप्तसौभाग्यसारा ।
जिनपतिसुतकर्त्रीः स्वप्नराशीश्च दृष्ट्वा सकलसुयुवतिमध्येऽप्यभूत्सा प्रभूता ॥१०३॥

रही थी । उसके बाद, ५ वो पुष्प मालायें देखीं जिनकी सुगंधिसे समस्त दिशायें सुगन्धित थीं । उसके बाद आकाशमें महामनोहर अखंड, ६ चंद्रमा देखा जो कि अपने परिकर ताराओंके समूहसे व्याप्त था । उसके बाद अत्यन्त देदीप्यमान, ७ सूर्य देखा जिसकी प्रभासे समस्त अन्धकार विनष्ट हो रहा था । उसके बाद, ८ वो सुवर्ण-मयी घर देखे जिनका कि मुख कमलोंसे ढका हुआ था। उसके बाद कमलोंसे परिपूर्ण सरोवरमें किलोल करता हुआ, ९ मीनोंका जोड़ा देखा उसके बाद विशाल स्थिर, १० सरोवर देखा जो कि सर्वत्र कमलोंसे व्याप्त था । उसके बाद खलबलाता हुआ, ११ समुद्र देखा जिसका जल तीरसे भी ऊपर बहता था । उसके बाद एक सुवर्णमयी महामनोहर, १२ सिंहासन देखा । उसके बाद देवोंका स्थान १३ स्वर्ग देखा जो कि अपनी जगमगाती हुई कांतिसे अत्यन्त शोभायमान था उसके बाद १४ नागेंद्रका भवन देखा जो कि कांतिसे जगमगाता हुआ अत्यन्त विशाल था उसके बाद जगमगाती हुई १५ रत्नोंकी राशि देखी जिनकी उग्र प्रभासे अन्धकार बीस तक नहीं पड़ता था उसके बाद जलती हुई १६ अग्नि की शिखा देखी जिसमें धुआंका नाम निशान तक भी न था ॥९७-१०१॥ जिस समय यह महादेवी उपर्युक्त सोलह स्वप्न देख चुकी उस समय अन्तमें क्या देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर शरीरसे शोभायमान विशाल हाथी उसके मुख कमलमें प्रवेश कर रहा है ।

रानी प्रजावतीके तीव्र पुण्यके उदयसे पहिले तो रत्नसुवर्ण आदि पदार्थोंकी वर्षा हुई जिससे उसके कुटुम्बीजन अन्य मनुष्य बड़े बड़े देव उसका आदर सत्कार करते थे और समस्त सौभाग्यका सार प्राप्त किया था उसके बाद उस महारानी प्रजावतीने भगवान जिनेन्द्रकी उत्पत्तिको सूचन करनेवाले उपर्युक्त सोलह स्वप्न देखे जिससे रनवासके अन्दर अनेक रानियोंके रहते भी उनकी शिरोमणि पटरानी बही हुई ॥१०३॥

स्वर्मोक्षकर्ताऽखिलविघ्नहर्ता सुमुक्तिभर्ता वरधर्मनेता।
कर्मारिहंताऽखिलविद्विधाता दाता विजेता मम सोऽस्तु सिद्धयं ॥१०४॥

इति भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते श्रीमल्लिनाथचरित्रे अहमिंद्रभववर्णनो नाम तृतीयः परिच्छेदः ॥ ३ ॥

स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाले, समस्त विघ्नोंके नाशक, मोक्ष-लक्ष्मीके जीवोंको धर्म मार्ग पर ले चलनेवाले, ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मरूपी वैरियोंको मूलसे नष्ट करनेवाले अखंड ज्ञानके विधाता एवं जयशील वे भगवान मल्लिनाथ हमारे लिये सिद्धि प्रदान करें ॥१०४॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० भजाधरलालजी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिकामें अहमिंद्रका भव वर्णन करनेवाला तीसरा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थः परिच्छेदः

इन्द्रनीललसत्कायं मुक्तिकांताप्रियंकरं। त्रिजगत्स्वामिनं वंदे पार्श्वनाथं जगद्धितं ॥ १ ॥
अथ प्रबोधकांस्तूर्यान् ध्वनतः सुस्वरान्परान्। बंदिनां च सुगीतानि मंगलान्यप्यनेकशः ॥ २ ॥
प्रातर्भेरीरवं श्रुत्वा दरनिद्रान्विता सती। प्रबोधमगमद्देवी विश्वमांगल्यधारिणी ॥ ३ ॥
अनुत्थाय स्वपल्यंकाद्विश्वमांगल्यसिद्धये। सामायिकादिं च देवी धर्मध्यानं चकार सा ॥ ४ ॥
स्नात्वालंकृत्य भूषाद्यैः स्वात्मानं हर्षिताननां। जनैः कतिपयैः सार्धं नृपास्थानं ययौ मुदा ॥ ५ ॥
आगच्छंतीं स्वकांतां तां दृष्ट्वा वाक्यैर्यथोचितैः। संतोष्य प्रददौ तस्मै सोऽर्द्धं सिंहासनं मुदा ॥ ६ ॥

जिनके शरीरकी कांति इन्द्रनील मणिके रंगके समान महामनोहर है जो मोक्षरूपी लक्ष्मीके परम प्यारे हैं। तीनों लोकके स्वामी हैं एवं समस्त जगतका हित करनेवाले हैं ऐसे श्रीपार्श्वनाथ भगवानको मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥१॥ यह प्राचीन प्रथा है कि महाराज और महारानियोंका जो समय उठनेका होता है उस समय मधुर शब्द करनेवाले बाजे बजाए जाते हैं और बन्दीगण स्तुति अलापते हैं उनके शब्दसे महाराज और महारानीकी निद्रा भंग होती है और उस समय वे उठकर अपनी प्रातःकालकी नित्य क्रियामें प्रवृत्त होते हैं प्रातःकालमें जिस समय महारानी प्रजावतीके उठनेका समय उपस्थित हुआ उस समय उसे जगानेवाले उत्कृष्ट एवं महामनोहर शब्द करनेवाले तूर्य जातिके बाजे बजने लगे तथा बन्दीगणोंके द्वारा अत्यन्त मंगलको सूचन करनेवाली महामनोहर अनेक प्रकारकी स्तुतियाँ बखानी जाने लगीं। महारानी प्रजावती उस समय सूक्ष्म निद्रासे निद्रित पलंगपर लेटी हुई थी ज्योंही प्रातःकालमें उसने महामनोहर भेरीका शब्द सुना समस्त जगतका मंगल करने-वाली वह पलंगसे उठकर बैठ गई ॥२-३॥ कुछ समय बाद शांतिपूर्वक उसने पलंगका परित्याग किया और वह देवी समस्त जगतके मंगल सिद्धिकी कामनासे सामायिक आदि क्रियाओंके द्वारा धर्मध्यानका आचरण करने लगी ॥४॥ सामायिक आदि नित्य क्रियाओंके बाद उसने प्रसन्न चित्तसे स्नान किया। उत्तमोत्तम आभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत किया एवं कुछ खास मनुष्योंके साथ हृदयमें अत्यन्त प्रमोद रख वह राजसभाकी ओर चल दी ॥५॥ इस प्रकार ठाटबाटसे राजसभामें आनेवाली अपनी परम प्यारी महारानी प्रजावतीको देखकर राजा कुम्भ बड़ा प्रसन्न हुआ। महामनोहर वचनोंसे उसका शिष्टाचार उसे अत्यन्त सन्तुष्ट किया एवं बड़े आनन्दसे

सुखासीना ततो राज्ञी विधाय स्वमुखे मुदं । भर्त्रे दिव्यासनोत्थाय दिव्यवाण्या व्यजिज्ञपत् ॥ ७ ॥
देवाद्य यामिनीभागे पश्चिमे सुखनिद्रिता । अद्राक्षं षोडश स्वप्नान् गजेंद्रादीन् शुभोदयान् ॥ ८ ॥
स्वामिंस्तेषां फलं सर्वं कृपां कृत्वा ममादिशः । शृणु प्रिये फलं तेषां वक्ष्ये कृत्वा वशोमनः ॥ ९ ॥
गजेक्षणान्महान् पुत्रो भविष्यति सुरार्चितः । देवि ! ते वृषभालोकाज्ज्येष्ठो धर्मधुरंधरः ॥१०॥
सिंहेनानंतवीर्यश्च दामाभ्यां धर्मतीर्थकृत् । लक्ष्म्याभिषेकमाप्तासौ सुरैर्मेरुमस्तके ॥११॥
पूर्णेंदुना जनाह्लादी मोहध्वांतविनाशकृत् । भास्वता बालसूर्यानंतभोहंता स्फुरद्द्युतिः ॥१२॥

आधा सिंहासन उसके बैठनेके लिये प्रदान किया । अपने स्वामी महाराज द्वारा इस प्रकारका सम्मान पा रानी प्रजावतीका मुख आनन्दसे पुलकित हो गया वह सुखपूर्वक आसनपर बैठ गई एवं दिव्य आसनसे कुछ उठकर अपनी दिव्य वाणीसे गद्‌गद् होकर इस प्रकार अपने स्वामीसे निवेदन करने लगी—हे देव ! आज प्रातःकाल जब कि रात्रिका कुछ ही भाग शेष रह गया था उस समय मैं पलंगपर सुखपूर्वक सो रही थी, अचानक ही अत्यन्त शुभ फलके प्रदान करनेवाले गजेन्द्र आदिके सोलह स्वप्न मुझे दीख पड़े हैं । स्वामिन् ! उन पवित्र स्वप्नोंका फल क्या है कृपाकर उस समस्त फल-को मुझे बतलाइए—मुझे उन फलोंके जाननेकी बड़ी भारी अभिलाषा और उत्कण्ठा है । फलोंको जाननेके लिए रानीको इस प्रकार उत्कण्ठित देख राजा कुंभ बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रियवचनोंसे वह इस प्रकार कहने लगा—प्राणप्यारी ! तुम चित्तको स्थिरकर सुनो—मैं उन स्वप्नोंका विस्तारसे फल कहता हूँ ॥७-९॥

देवि ! स्वप्नमें जो तुमने विशाल गजराज देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारे एक महान् पुत्र होगा जिस बड़े बड़े ऋद्धिधारी देव आकर पूजेंगे और अपने-को धन्य समझेंगे । विशाल बैलके देखनेका यह फल है कि तुम्हरा पुत्र ज्येष्ठ होगा—समस्त लोक उसे बड़ा मानेगा और उसकी आज्ञाका पालन करेगा एवं वह धर्मकी धुराका धारण करनेवाला अर्थात् धर्मका स्वामी होगा । स्वप्नमें जो सिंह देखा है उसका फल यह है कि वह पुत्र जिस प्रकार सिंह बलशाली होता है उसी प्रकार अनन्त बलका धारक होगा दो मालायें जो देखी हैं उनका फल यह है वह धर्म तीर्थका प्रवर्तक होगा । दुग्धके घड़ोंसे स्नान करती हुई जो लक्ष्मी देखी है उसका फल यह है कि बड़े बड़े देव आकर तुम्हारे पुत्रको मेरु पर्वतके मस्तक पर ले जाकर स्नान करावेंगे । स्वप्नमें जो पूर्ण चंद्रमा देखा है उसका फल यह है कि जिस प्रकार चंद्रमा जीवोंको आनंद प्रदान करनेवाला है और अंधकारका नाशक है उसी प्रकार

कुंभाभ्यां निधिभागी च मत्स्याभ्यां स्यान्महासुखी । सरसा लक्षणः पूर्णः सोऽब्धिना केवलेक्षणः ॥१३॥
सिंहासनेन साम्राज्यपदयोग्यो जगन्नुतः । विमानदर्शनात्कल्पातीतादवतरिष्यति ॥१४॥
फणीन्द्रभवनालोकादवधिज्ञाननेत्रभाक् । भवेद् दृक्विदावृत्तानामाकरा रत्नराशितः ॥१५॥
अग्निना कर्मकाष्ठानां भस्मराशिं करिष्यति । तव पुत्रो जगन्नाथः शुक्लध्यानोरुवह्निना ॥१६॥
गजेंद्रास्यप्रवेशेन द्रत्वर्भे निर्मले परे । मल्लिनाथो जिनाधीश स्वमाधास्यति निश्चितं ॥१७
अवधिज्ञानिना तेनेत्युक्तं राज्ञा तदा सतो । श्रुत्वानंदं परं सागात्पुत्रं प्राप्तेव तत्क्षणं ॥१८॥

तुम्हारा पुत्र भी संसारको आनन्दका प्रदान करनेवाला और मोहरूपी अंधकारका सर्वथा नाश करनेवाला होगा । सूर्य जो देखा है उसका फल यह है कि जिस प्रकार सूर्य अंधकारका नाशक है अर्थात् उसके उदय होते ही संसारके घट पट आदि पदार्थ स्फुट रूपसे दीख पड़ते हैं एवं सर्वत्र उसकी कांति देदीप्यमान रहती है उसी प्रकार तुम्हारा पुत्र भी समस्त अज्ञानरूपी अंधकारका नाश करनेवाला होगा एवं सर्वत्र संसारमें उसका प्रताप फैलेगा । दो सुवर्ण मयी घड़े जो देखे हैं उनका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र निधियोंका स्वामी होगा। किलोल करती दो मीन देखी हैं उसका फल यह है कि वह पुत्र परम सुखका स्थान होगा । जलसे लबालब भरा हुआ जो सरोवर देखा है उसका फल यह है कि वह पुत्र समस्त मनोहर लक्षणोंसे पूर्ण होगा । तीरको भेदकर बहनेवाले जलसे युक्त जो समुद्र देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारा पुत्र लोकालोकको प्रकाश करनेवाले केवलज्ञानका स्वामी होगा । सिंहासनके देखनेका फल यह है कि वह साम्राज्य पदके योग्य होगा और समस्त जगत उसे नमस्कार करेगा । स्वप्नमें जो विमान देखा है उसका फल यह होगा कि वह कल्पातीत विमानसे तुम्हारे गर्भमें आवेगा । जगमगाता हुआ जो नागेंद्रका भवन देखा है उसका फल यह होगा कि वह अवधिज्ञानरूपी नेत्रका धारक होगा, रत्नराशिके देखनेका यह फल है कि वह अखंड सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका खजाना होगा । जाज्वल्यमान निर्धूम अग्नि जो देखी है उसका फल यह है समस्त जगतका स्वामी तुम्हारा पुत्र शुक्लध्यानरूपी तीव्र अग्निसे कर्मरूपी काष्ठको खाख कर डालेगा तथा सोलह स्वप्नोंके अंतमें मुखमें गजेंद्र प्रवेश करता हुआ देखा है उसका फल यह है कि तुम्हारे निर्मल गर्भमें उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ जिनेंद्र स्वयं अवतीर्ण होकर निश्चयसे जन्म धारण करेंगे ॥९-१७॥ राजा कुंभ अवधिज्ञानके धारक थे इसलिये उसके मुखसे स्वप्नोंका इस प्रकार उत्तम फल सुन-

सौधर्मेंद्रोपदेशेनाथा गत्वात्र हृदालयाः । ह्याद्या षट् देव्य एवाशु भक्त्या सद्धर्मवासिताः ॥१९
गर्भं संशोध्य तीर्थेशमातुर्द्रव्यैः सुनिर्मलैः । कुर्युः सेवां च शुश्रूषां तत्कालोचितकर्मभिः ॥२०॥
श्रीः श्रियं ह्रीः सुलज्जां च धृतिर्धैर्यं किलादधुः । कीर्तिः स्तुतिं च बोधिं च बुद्धिर्लक्ष्मीश्च वैभवं ॥२१॥
तस्या गुणानिमान् स्वांश्च सा प्राग्निसर्गसुन्दरा पुनः । सुसंस्कृता ताभीरेजेऽनर्घ्यो यथा मणिः ॥२२॥
चैत्रमासे सिते पक्षे सुलग्ने प्रतिपर्दहनि । अश्विनीनाम्नि नक्षत्रे शुभयोगादिके सति ॥२३॥
सोऽहमिंद्रस्ततश्च्युत्वा त्रिबोधो मुक्तिहेतवे । तस्या गर्भेऽवतीर्णोऽतिशुद्धस्फाटिकसन्निभे ॥२४॥

कर महारानी प्रजावतीको परमानंद हुआ एवं मारे आनंदसे उसको यह उस समय मालूम पड़ने लगा मानो साक्षात् पुत्र ही प्राप्त कर लिया है ॥१८॥

अथानंतर माता प्रजावतीकी सेवाके लिये सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी आज्ञासे श्री ह्री धृति कीर्ति बुद्धि और लक्ष्मी ये छह देवियाँ बड़ी भक्तिसे शीघ्र ही मिथिलापुरी आ गईं। ये समस्त देवियां भरतक्षेत्रके पद्म आदि सरोवरोंके कमलोंमें रहनेवाली हैं एवं परम धर्मकी सदा सेवन करनेवाली हैं ॥१९॥ मिथिलापुरीमें आकर समस्त देवियोंने अत्यंत निर्मल पदार्थोंसे माता प्रजावतीके गर्भका संशोधन किया। एवं जिस समयमें जिस कार्यके करनेकी आवश्यकता होती थी उसे कर वे भक्तिपूर्वक माताकी सेवा और आज्ञाका पालन करती थीं ॥२०॥ श्री देवी माताके शरीरके अन्दर अनेक प्रकारकी शोभा उत्पन्न करती थीं। ह्री देवीकी सेवासे माताके हृदयके अंदर विशेष-रूपसे लज्जाका प्रचार था। धृति देवीकी कृपासे विशेषरूपसे धीर वीरता उत्पन्न हो गई थी। कीर्ति देवीकी सेवासे यह गुण प्रगट हुआ था कि सर्वत्र उसकी कीर्ति फैल गई थी इसीलिये सब लोग बड़ी भक्तिसे उसकी स्तुति करते थे। बुद्धि देवीकी सेवा-से माताके सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके अंदर विशेष निर्मलता होने लगी थी एवं लक्ष्मी देवीकी सेवासे माताको अनेक प्रकारके ऐश्वर्योंका लाभ था तथापि वह माता प्रजावती अपने तीव्र पुण्यके उदयसे स्वभावसे ही सुन्दर थी तथापि स्वभावसे निर्मल भी। मणिपर जिस प्रकार संस्कार कर देनेसे और भी अधिक चमक आ जाती है उसी प्रकार श्री आदि देवियोंके द्वारा शोभा आदि गुणोंसे संस्कार युक्त की गई वह माता और भी विशेष रूपसे सुन्दर जान पड़ने लगी ॥२१-२२॥

कदाचित् चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपदाके दिन जब कि शुभ लग्न था अश्विनी नामका शुभ नक्षत्र था और योग आदि भी शुभ थे वह अहमिंद्र भगवान मल्लिनाथका जीव अपराजित नामके विमानसे चया एवं मति श्रुत और अवधिरूप

घंटादिनादिसिंहासनकंपादिसुलक्षनैः । ज्ञात्वा तदावतारं हि चतुर्णिकायनिर्जराः ॥२५॥
सेंद्राः स्ववाहनारूढाः सकलत्रा नभोंऽगणं । द्योतयंतः स्वदीप्त्याद्यैस्तत्राजग्मुः शिवाप्तये ॥२६॥
तत्र प्रथमकल्याणे स्मृत्वा गर्भगतं जिनं । गर्भवत्याः प्रजावत्याः पादावुल्लुठयोर्मुदा ॥२७॥
प्रणामं शिरसा चक्रे मणिशेखरशालिना । सौधर्मेंद्रोऽखिलैर्देवैः सार्धं भक्त्या वृषाप्तये ॥२८॥
ततः प्रपूज्य तीर्थेशपितरौ भूषणादिभिः । प्रशस्य कृतकार्यास्ते स्वं स्वं स्थानमगुः सुराः ॥२९॥
नित्यं शक्राज्ञया दिक्कुमार्यस्तद्योग्यकर्मभिः । कुर्वंति परमां सेवां जिनमातुः स्वशर्मणे ॥३०॥
काश्चिन्मांगल्यचारिण्यः काश्चिद्भूषणदायिकाः । काश्चित्क्षौमांशुकं स्रग्दायिन्यः काश्चित्प्रसाधिकाः ॥

तीन ज्ञानका धारक वह मोक्षमार्गको प्रगट करनेके लिए अत्यन्त स्वच्छ स्फटिक पाषाणके समान माता प्रजावतीके गर्भमें आकर अवतीर्ण हो गया ॥२३-२४॥ भगवान मल्लिनाथके गर्भमें आते ही भवनवासी आदि चारों निकायोंके देवोंके घरोंमें घंटा आदि बजने लगे एवं सिंहासन आदि कंप गये । बस ! घंटा आदिका बजाना एवं सिंहासनका कंपना आदि शुभ लक्षणोंसे उन्हें भगवान मल्लिनाथके गर्भमें आनेका निश्चय हो गया । वे अपने अपने निकायोंके इंद्र और अपनी अपनी देवांगनाओं के साथ शीघ्र ही अपने अपने वाहनों पर सवार हो गये एवं अपनी देदीप्यमान प्रभासे समस्त आकाशको प्रकाशमान करते हुए वे मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषासे शीघ्र ही मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गये ॥२५-२६॥ गर्भावतार नामक पहिले कल्याणमें आये हुए सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने समस्त देवोंके साथ धर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषासे गर्भमें आये हुए भगवान जिनेन्द्रके गुणोंका भक्तिभावसे स्मरण किया एवं गर्भवती माता प्रजावतीके दोनों चरण कमलोंको मणिमयी मुकुटोंसे चमचमाते हुए अपने मस्तकोंसे हर्षपूर्वक नमस्कार किया ॥२७-२८॥ उसके बाद इन्द्र आदि देवोंने भगवान मल्लिनाथके माता पिता दोनोंकी पूजा की । भूषण आदि प्रदानकर सन्मान किया एवं इस प्रकार पवित्र कार्यको पूराकर वे समस्त देव अपने अपने स्थानोंपर चले गये ॥२९॥ उस दिनसे छप्पन दिक्कुमारियां इन्द्रकी आज्ञासे सदा माताके पास रहने लगीं एवं जिसे जो कार्य करनेके लिए सौंपा जाता था उसे आनन्दपूर्वक पूराकर अपनेको कल्याणकी प्राप्ति हो इस अभिलाषासे वे माता प्रजावतीकी बड़ी भक्तिसे सेवा करने लगीं ॥३०॥ उनमें बहुत सी कुमारियां माताके चित्तको प्रसन्न

---

१ भवनवासी २ व्यंतर ३ ज्योतिषी ४ और वैमानिक ये देवोंकी चार निकाय हैं ।

काश्चिन्मज्जनपालिन्यः काश्चिच्चोद्वर्तनोद्यताः । तस्याः शर्मविधायिन्यो बभूवुस्ताः सुरांगनाः ॥३२॥
काश्चित्सम्मार्जनं कुर्युः काश्चिद्रसवतीं पराः । काश्चिन्मणिप्रदीपांश्चास्या गेहेऽमरयोषितः ॥३३॥
काश्चित्तत्सुतजंगीतैः काश्चिद्वाद्यैश्च नर्तनैः । काश्चित्क्रीडाविनोदाद्यैस्तन्मनोरंजयत्यलं ॥३४॥
धनदोऽपि मुदा नित्यं प्रतिचक्रे तदालये । हेमरत्नमयीं वृष्टिं नवमासान्महर्धिकां ॥३५॥
अंतर्वत्नीमथाभ्यर्णे नवमे मासि तामिति । रंजयंति च ताः श्लोकैर्गूढार्थैः प्रश्नराशिभिः ॥३६॥
नित्यं कांताविरक्तो यः सकामः कामजिन्महान् । साकांक्षो च निराकांक्षो त्रिनेत्रो वर्तते स कः ॥३७॥

करनेके लिये मंगलीक पदार्थ हाथमें लेकर खड़ी रहती थीं । बहुत सी माताको भाँति भाँतिके भूषण पहनातीं थीं । कोई कोई उसे रेशमी वस्त्र पहिनातीं थीं और मालायें प्रदान करती थीं बहुत माताका शृंगार करती थीं कोई कोई कुमारियां माताके लिए स्नानकी तैयारियाँ करतीं । बहुत-सी उबटन आदि लगाकर उनके शरीरकी रक्षा करती थीं । बहुतसी कुमारियाँ 'माताको सुख मिले' ऐसे उपायोंको रचा करती थीं । कोई कोई देवांगना माताके रहनेके मकानको झाड़ बुहारकर साफ करती थीं । बहुत-कुमारियां माताकी इच्छानुसार महास्वादिष्ट रसोई करतीं । कोई-कोई देवांगनायें माताके मकानमें मणिमयी दीपक जलाती थीं । कोई-कोई बालकके जन्मकालमें जो गीत गाये जाते हैं उन गीतोंको गाती थीं । कोई-कोई महामनोहर शब्द करनेवाले बाजे बजाती थीं । कोई कोई महामनोहर नृत्य करतीं एवं कोई कोई कुमारियां नाना प्रकारकी क्रीड़ायें एवं मनको प्रसन्न करनेवाली कथायें करती थीं । इस प्रकार वे समस्त कुमारियां भांति भांति की मनोहर क्रियायें कर माताका चित्त अत्यन्त प्रसन्न रखती थीं ॥३१-३४॥ भगवान मल्लिनाथके गर्भमें आते ही कुबेरको भी परमानन्द हुआ था । इसलिये नौ मास पर्यन्त बड़ी रिद्धिके साथ वह प्रतिदिन बराबर उनके महलमें सुवर्ण और भांति भांतिके रत्नोंकी वर्षा करता रहता था ॥३५॥ आठ महीनों के बीत जानेपर जब नवमें मासका आरम्भ हुआ उस समय गर्भवती माता प्रजावती के समीपमें बैठकर वे देवांगनायें गूढ़ार्थक अर्थात् जिनका अर्थ गूढ़ होता था हर एक नहीं समझ सकता था ऐसे श्लोकोंसे एवं नाना प्रकारके उत्तमोत्तम प्रश्नोंसे माताके मनको रिझाती थीं ॥३६॥ कोई कोई कहती थीं अच्छा माता ! इस पहेलीका अर्थ बताओ कि—

ऐसा त्रिनेत्र—तीन नेत्रोंका धारण करनेवाला संसारके अन्दर महादेव कौन है जो 'नित्यंकांताविरक्तः' अर्थात् सदा स्त्रियोंसे विरक्त हो अथवा नित्यकांता-मोक्ष-

(प्रहेलिका) मनोहरादिहर्षादीनां[1] च त्वद्गर्भसंभवात्। भजस्वजैसुमांगल्यान्विसवात् देव सुमंगले १८

रूपी स्त्रीमें विशेषरूपसे रक्त हो। प्रारम्भमें काम सहित हो परन्तु पीछेसे सर्वथा कामका विजय करनेवाला हो, अत्यन्त महान हो। तथा प्रारम्भमें कुछ परिग्रहसे आकांक्षा रखनेवाला हो परन्तु पीछेसे जो सर्वथा उनकी आकांक्षासे विमुख हो गया हो। यदि कहा जायगा कि संसारके अन्दर जो महादेव प्रसिद्ध हैं वही इन गुणोंका धारक महादेव हो सकता है सो ठीक नहीं क्योंकि वह पार्वती नामकी स्त्रीको अपना आधा अंग बनाये हुए है इसलिये स्त्रीमें अत्यन्त रक्त रहनेके कारण वह सदा स्त्रियोंसे विरक्त नहीं माना जा सकता तथा अत्यन्त विषयलोलुपी होनेके कारण वह मोक्षरूपी स्त्रीमें भी विशेष रूपसे रक्त नहीं हो सकता क्योंकि इस प्रकारकी विषयवासनामें लिप्त पुरुषोंसे मोक्ष स्त्री अत्यन्त दूर रहती है। तथा वह आदिमें काम सहित हो पीछेसे कामका जीतनेवाला हो यह भी बात उसके अन्दर नहीं बन सकती। क्योंकि जो कामके अत्यन्त वशीभूत होकर पार्वती नामकी स्त्रीको सदा बगलमें रखता है वह कभी कामका जीतनेवाला नहीं कहा जा सकता। इसलिये संसारमें जो प्रसिद्ध महादेवको कामका बैरी माना जाता है वह सर्वथा मिथ्या है। तथा वह पहिले परिग्रहोंसे आकांक्षा रखनेवाला हो और पीछेसे उनकी आकांक्षासे विमुख हो यह भी बात नहीं क्योंकि वह स्त्रीरूप परिग्रहको एक क्षण भी अपनेसे दूर नहीं कर सकता। प्रत्युत उनमें ऐसा लिप्त है कि स्त्रीको ही अपना आधा अंग मानता है और उसीमें अपनी शोभा समझता है। माता प्रजावती इस प्रश्नका यह उत्तर देती थी कि—ऐसा महादेव भगवान तीर्थंकर ही हो सकता है क्योंकि भगवान तीर्थंकर ही भावोंकी अपेक्षा सदा स्त्रियोंसे विरक्त रहते हैं अथवा सदा विद्यमान रहनेवाली मोक्षस्त्रीमें वे ही अत्यंत रक्त रहते हैं। प्रारम्भमें कामदेवके जालमें फंस जाने पर भी अन्तमें वे कामदेवको सर्वथा नष्ट करने वाले होते हैं। प्रारम्भमें परिग्रहमें कुछ आकांक्षा रखने पर भी पीछे वे उससे सर्वथा रहित हो जाते हैं एवं जन्मते ही नियमसे मति श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक होते हैं ॥३७॥ कोई कोई जिसमें क्रिया गुप्त है ऐसा श्लोक कह कर इस प्रकार माताकी प्रशंसा करती थी—

हे देवी ! हे मंगलमयी माता ! तुम्हारे गर्भमें भगवान मल्लिनाथने जन्म

---

१. मनोहार्यादिहर्षादीत्यादि पाठ ठीक जान पड़ता है।

(क्रियागोपितं) अन्तातीतगुणाधारो जगन्नाथो जगद्गुरुः। नित्यस्त्रीरक्तचित्तो यो जयतात्सखि ! ते सुतः

(नैरोष्ठ्यं) कात्र त्वत्सदृशी रामा ? या सूते धर्मनायकान् ।
को गुरुर्यः सुतत्रज्ञो निर्ग्रंथं स्वान्यतारकः ॥४०।

कुगुरुःकोऽक्षसंसक्तः संग्रन्थोऽतिप्रमादवान् । कः पुरुषोत्तमो यस्तु त्यक्तमोहः शिवोद्यतः ॥४१॥

धारण किया है इसलिए उस विशिष्ट गर्भके द्वारा आदिहर्यादीनां मनः अहारि अर्थात् प्रथम स्वर्गके इन्द्रको आदि लेकर समस्त देवोंका मन हरा गया है—वे भी तुम्हारे सेवक हो गये हैं अतः तुम मनुष्य लोकके उत्तमोत्तम पदार्थोंके भोगके साथ स्वर्ग लोकके समस्त मंगलीक—उत्तमोत्तम पदार्थोंका भी भोग करो। यहाँ पर "अहारि" यह क्रिया पद गुप्त है। कोई-कोई देवांगना जिनके उच्चारण करनेमें ओठ आपसमें न लगें ऐसे अक्षरोंका श्लोक बनाकर इस प्रकार माताकी प्रशंसा करने लगीं—हे सखी! अनन्त गुणोंका धारण करने वाला, तीनों लोकका नाथ, सकल संसारका गुरु और नित्य स्त्री अर्थात् शिवरूपी स्त्रीके गुणोंविषै सदा अनुराग करने वाला तेरा पुत्र चिरकाल तक जयवन्त हो। इस श्लोकमें ओष्ठस्थानीय अर्थात् जिसका उच्चारण ओठोंकी सहायतासे हो ऐसा कोई भी वर्ण नहीं है ॥३८-३९॥ बहुत-सी देवांगनायें माताके पास बैठकर अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम प्रश्न करतीं थीं और माता प्रजावती बुद्धिपूर्वक उसका स्पष्ट उत्तर देती थीं। उनमें कुछ प्रश्नोत्तर इस प्रकारके थे—

प्रश्न—माता ! इस संसारमें तुम्हारे समान परम सौभाग्यवती अन्य कौन स्त्री हो सकती है ? उत्तर—जो स्त्री धर्मके स्वामी तीर्थंकरोंको उत्पन्न करनेवाली हो। प्रश्न—संसारके अन्दर अज्ञानको दूर करनेवाला उत्तम गुरु कौन हो सकता है ? उत्तर—जो गुरु वास्तविक रूपसे तत्त्वोंका जानकार हो, बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे रहित हों एवं अपनेको और संसार समुद्रमें डूबते हुए प्राणियोंको पापसे तारनेवाले हों।

प्रश्न—संसारमें कुगुरु—मिथ्या गुरु कौन है ? उत्तर—जो स्पर्शन रसना आदि पांचों इन्द्रियोंके विषय में आसक्त हो, बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकारके परि-

१. ऋकारका अर्थ स्वर्ग भी है इसलिये 'ऋजसुर्मांगल्यान् भजस्व' अर्थात् स्वर्ग सम्बन्धी अत्यन्त मांगलिक पदार्थोंको प्राप्त करो, यहाँ पर 'भजस्व, यह भी एक गुप्त क्रिया है परन्तु यह स्पष्ट जान पड़ती है एवं इस क्रियाको गुप्त माननेपर अर्थका अच्छी तरह संघटन नहीं होता अतः 'अहारि' यही क्रियापद चमत्कार परिपूर्ण है अथवा 'मनोहरद्युहर्यादीनां' ऐसा भी पाठ हो सकता है और उस पाठमें अहरत' यह क्रियापद गुप्त है। 'अहारि' और 'अहरत्' का अर्थ एक समान है।

कोऽधमो यस्तपस्योऽप्यक्षमोऽक्षाद्यरिघातने। को विद्वान् यो विचारज्ञो हेयादेयागमादिवित् ॥४२॥
को मूर्खो यः श्रुतज्ञोऽपि समदः पापमाचरेत्। त्वरितं किं बुधैः कार्यं साधनं स्वर्गमोक्षयोः ॥४३॥
किं पथ्यं यत्तपो दानं वृत्तं शीलदृगादि च। किं सबलं वृषं यत्सत्तपोदानादिभिः कृतं ॥४४॥
कीदृशं वचनं श्लाघ्यं हितं तथ्यं मितं शुभं। को जागर्ति निजात्मज्ञो मोहनिद्रातिगोऽत्रयः ॥४५॥
किं प्रशस्यं कृतं यच्च तपोदानं सुदुर्बलैः। के वैरिणः कषायाश्च दुर्ध्यानविषयादयः ॥४६॥

ग्रहमें ममत्व रखनेवाला हो एवं क्रोधी मानी आदि होने से अत्यन्त प्रमादी हो। प्रश्न—संसारमें समस्त पुरुषोंमें उत्तम पुरुष कौन है? उत्तर—जो मोहसे रहित हो और मोक्षके लिए सदा प्रयत्न करनेवाला हो ॥४०-४१॥ प्रश्न—संसारके अन्दर सबसे नीच पुरुष कौन है? उत्तर—जो अनेक प्रकारसे तपोंको आचरण करनेवाला तो हो परंतु इंद्रियरूपी शत्रुओंके घातनेमें असमर्थ हो अर्थात् विषयोंका लंपटी होनेके कारण इन्द्रियोंको वश करनेवाला न हो। प्रश्न—संसारमें विद्वान् पुरुष कौन है? उत्तर जो हर एक पदार्थका वास्तविक रूपसे विचार करनेवाला हो, यह पदार्थ छोड़ने योग्य है और यह पदार्थ ग्रहण करने योग्य है इस प्रकारका अच्छी तरह जानकार हो तथा आगमका भी जानकार हो ॥४२॥ प्रश्न—संसारके अन्दर मूर्ख कौन है? उत्तर—जो अनेक प्रकारके शास्त्रोंको जानकर भी अत्यन्त अहंकारी हो और सदा पापोंका आचरण करनेवाला हो। प्रश्न—संसारमें सबसे जल्दी मनुष्योंको क्या कार्य करना चाहिये? उत्तर—स्वर्ग और मोक्षका साधन ॥४३॥ प्रश्न—इस संसारमें पथ्य—हितकारी पदार्थ क्या है? उत्तर—तप दान व्रतोंका पालन और सम्यग्दर्शन आदिका धारण। प्रश्न—संसारमें सबसे बलवान पदार्थ क्या है? उत्तर—उत्तम तप और दान आदिके द्वारा प्राप्त किया हुआ उत्कृष्ट धर्म। प्रश्न—संसारमें कैसा वचन बोलना अच्छा माना जाता है? उत्तर—हितकारी सत्य परिमित और शुभ। प्रश्न—संसारमें जागनेवाला कौन है? उत्तर—जो महापुरुष सदा अपनी आत्माके स्वरूपका चिन्तवन करनेवाला हो एवं मोह और निद्रासे रहित हो। प्रश्न—संसारमें उत्तम कार्य क्या माना जाता है? उत्तर—जो पुरुष अत्यन्त दुर्बल है तप और दानके करनेमें असमर्थ है उनके द्वारा किया गया तप और दान। प्रश्न—संसारमें सामान्य रूपसे जीवोंके बैरी कौन हैं? उत्तर—क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय, निंदित ध्यान और इंद्रियोंके विषय ॥४४-४६॥

को मित्रः (?) साह्यकर्ता यो धर्मं वृत्तार्चनादिषु । कः शत्रुर्यस्तपोदानं धर्मकर्त्रे ददाति न ॥४७॥ पीयूषमिव किं पेयं जिनेन्द्रवचनामृतं । कः सुखी योऽत्र संतोषी को दुःखी योऽक्षलंपटः ॥४८॥ को धनी योल्पद्रव्योऽपि बहुदानादिकारकः । को दरिद्री धनाढ्योऽपि भ्रमेद्देशान् धनाशयः ॥४९॥ सर्वोत्कृष्टोऽत्र को यः सत्पंचकल्याणशर्मभाक् । किंकराः कस्य देवेंद्रा मत्पुत्रस्य न चान्यथा ॥५०॥ किं कार्यं येन जायेत यशोधर्माखिलं सुखं । किमकार्यं च येनोत्पद्यते पापायशोऽसुखं ॥५१॥ इत्यादि बहुप्रश्नानि प्रयुक्तानि शुभानि च । दुष्कराण्यपि देवीभिर्जिनेशमातरं प्रति ॥५२॥

प्रश्न—संसारमें वह पुरुष कौन है जो मित्र हो ? उत्तर—जो धर्मका पालन करनेवाला, चरित्रका आचरण करनेवाला और पूजा आदि उत्तम कार्योंमें सहाय करनेवाला हो । प्रश्न—शत्रु पुरुष कौन है ? उत्तर—जो धर्म करनेवालेको न तपका उपदेश देता है और न दान आदि देता है ॥४७॥ प्रश्न—संसारमें अमृतके समान पीने योग्य पदार्थ क्या है ? उत्तर—भगवान जिनेन्द्रका वचनरूपी अमृत । प्रश्न—संसारमें सुखी पुरुष कौन है ? उत्तर—जो संतोष रखनेवाला है । प्रश्न—संसारमें दुखी पुरुष कौन है ? उत्तर—जो स्पर्शन आदि पाँचों इन्द्रियोंके विषयमें लंपट है ॥४८॥ प्रश्न—संसारमें अत्यन्त धनवान पुरुष कौन माना जाता है ? उत्तर—धन तो जिनके पास कम हो परन्तु दान आदि उत्तम कार्योंको अधिकतासे करनेवाला हो । प्रश्न—संसारमें निर्धनी पुरुष कौन है ? उत्तर—जो अत्यन्त धनवान होने पर भी धनकी आशासे परदेशोंमें घूमता फिरता हो एवं दान आदि उत्तम कार्योंमें धन खर्च करनेवाला न हो ॥४९॥ प्रश्न—संसारमें सबसे उत्कृष्ट पुरुष कौन है ? उत्तर—जिसके गर्भ जन्म आदि पाँचों कल्याण हों । प्रश्न—इस संसारमें ऐसा पुरुष कौन है जिसके नौकर बड़े बड़े देवेन्द्र भी होते हैं ? उत्तर—मेरे पुत्रके अर्थात् तीर्थंकर भगवानके देवेन्द्र आदि नौकर रहते हैं । अन्य किसीके वे नौकर नहीं हो सकते ॥५०॥ प्रश्न—संसारमें उत्तम कार्य क्या माना जाता है ? उत्तर—जिसके करनेसे सर्वत्र यश विस्तरे, धर्मका लाभ हो और समस्त प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति हो । प्रश्न—संसारमें अकार्य-निन्दित कार्य क्या है ? उत्तर—जिससे पापकी उत्पत्ति हो । सर्वत्र निंदा फैले एवं अनेक प्रकारके दुःखोंकी प्राप्ति हो ॥५१॥ भगवान मल्लिनाथकी माता प्रजावतीके प्रति देवियोंने ऊपर कहे गए प्रश्नोंको आदि लेकर और भी शुभ अत्यन्त कठिन कठिन प्रश्न किए थे जिनका कि उत्तर देना साधारण न था तथापि उस माताके गर्भमें तीन ज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक स्वयं भगवान

तेषां प्रश्नोत्तरं राज्ञी ददौ व्यक्तं सुयुक्तिभिः । त्रिज्ञाननेत्रतीर्थेशतद्गर्भस्थप्रभावतः ॥५३॥
जगन्नाथेन तेनासौ गर्भस्थेन परां श्रियं । बभार रत्नगर्भेव मही चाकरगोचरा ॥५४॥
तीर्थेशोऽप्योदरस्थोपि न स्वामातुरजीजनत् । मनाक् पीड़ां तथा मुक्ताफलः (लं) शुक्तिपटास्थितः (तं) ॥
त्रिवलीभंगुरेऽस्या नोदरेऽभूत्कापि विक्रिया । तथापि ववृधे गर्भः प्रभावात्तज्जिनेशिनः ॥५६॥
पूर्णेऽथ नवमे मासि मार्गशीर्षसमाह्वये । अश्विन्याख्ये सुनक्षत्रे धवलैकादशीदिने ॥५७॥
शुलग्ने शुभयोगे तं पुत्रं ज्ञानत्रयाश्रित । सुखेन विजगत्स्वामिनं प्रासूत प्रजावती ॥५८॥

तीर्थंकर विराजमान थे इसलिये उनके प्रभावसे कठिनाति कठिनरूपसे किये गये भी देवियोंके प्रश्नोंका उत्तर माताने बड़ी युक्ति और गम्भीरताके साथ स्पष्ट रूपसे दिया था। गर्भमें विराजमान भगवान तीर्थंकरके माहात्म्यने ऐसा कोई भी देवियोंका प्रश्न नहीं बचा था जिसका उत्तर मातासे न बना हो ॥५२-५३॥

यद्यपि वे तीन लोकके नाथ भगवान मल्लिनाथ गर्भके अन्दर विराजमान थे, गर्भसे बाहिर उनका कोई भी शरीरका अवयव प्रकट न था तथापि जिस प्रकार रत्नोंकी प्रभासे देदीप्यमान खानोंकी धारक पृथिवी अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है उसी प्रकार उस माताके शरीरमें भी अलौकिक शोभाको छटा छटकने लगी थी ॥५४॥ यद्यपि वे तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ अपनी माता प्रजावतीके उदरमें विराजमान थे तथापि जिस प्रकार सीपके मध्य भागमें मोती रहता है—वह रंचमात्र भी सीपको क्लेशका करनेवाला नहीं होता उसी प्रकार माता प्रजावतीको भी उनके गर्भमें रहनेपर किसी प्रकारका क्लेश न था अर्थात् गर्भके भारसे जैसा अन्य स्त्रियोंको क्लेश उठाना पड़ता है वैसा भगवान मल्लिनाथको गर्भमें धारण करनेसे माता प्रजावतीको रंचमात्र भी क्लेश न था ॥५५॥ गर्भसे पहिले माता प्रजावतीका उदर त्रिवलीसे शोभायमान था भगवान मल्लिनाथके गर्भमें आनेपर त्रिवली नष्ट होकर उदरको बढ़ना चाहिये था परन्तु उन जिनेन्द्रके अनुपम प्रभासे वह त्रिवली जैसी थी वैसीकी वैसी ही विद्यमान रही रंचमात्र भी उदरके अन्दर किसी प्रकारका विकार नहीं हुआ। परन्तु ऐसा होनेपर भी गर्भ—गर्भके अन्दर बालक भगवानका शरीर निरन्तर बढ़ ही रहा था किन्तु उदरके न बढ़नेसे गर्भ न बढ़ता था यह बात न थी ॥५६॥

जब ठीक नवमा मास पूर्ण हो गया उस समय अगहन मासकी शुक्लपक्षकी एकादशीके दिन जब कि अश्विनी नामका शुभ नक्षत्र था लग्न भी अत्यन्त सुन्दर था, योग भी शुभ था माता प्रजावतीने मति श्रुत अवधिरूप तीन ज्ञानके धारक एवं तीन

तदा तज्जन्ममाहात्म्यात्स्वर्लोकेऽसुरभूरुहाः । मुमुचुः कुसुमान्युच्चर्ववौ च शिशिरो मरुत् ॥५९॥
अनाहूता महानादा दध्वनुर्निजरानकाः । आसनानि सुरेशानामकस्मात्प्रचकंपिरे ॥६०॥
बभूवुर्मौलयो नम्रा घंटाध्वानोऽभवत्स्वयं । इति चिह्नेन देवेशास्तदुत्पत्तिमजानत ॥६१॥
ज्योतिर्लोकालये सिंहनादोऽभूद्भावनालये । शंखशब्दोऽतिगंभीरो व्यंतराणां च धामनि ॥६२॥
भेरीरवस्तथाऽशेषमाश्चर्यमभवत्तरां । इति चिन्हेन तच्छक्रास्तत्कल्याणे मतिं व्यधुः ॥६३॥
ततोऽखिलस्वसामाग्र्याः स्वस्ववाहनमास्थिताः । जय जीवेड्य नंदार्च्येति कोलाहलकारिणः ॥६४॥
द्योतयंतो दिशा व्योम स्वांगभूषणरश्मिभिः । पूरयंतो दिशः खे च सुवाद्यध्वनिकोटिभिः ॥६५॥
सुगीतनर्तनोत्साहैर्महोत्सवशतोत्सुकाः । सामराः सकलाश्चत्वारो निकायवासवाः ॥६६॥

लोकके स्वामी पुत्र—भगवान मल्लिनाथको जन्म दिया ॥५७-५८॥ परम पावन भगवान मल्लिनाथके जन्मके माहात्म्यसे आकाशसे देवोंके द्वारा कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी विपुल वर्षा होने लगी। मन्द मन्द शीतल सुगन्धित पवन बहने लगी, बिना बजाये एवं गम्भीर शब्द करनेवाले देवोंके बाजे बजने लगे। अकस्मात् ही देवोंके आसन कंपायमान हो गये। उनके मुकुट नम्रीभूत हो गये एवं घण्टोंका गंभीर शब्द होने लगा। इसलिये इन शुभ चिह्नोंसे देवोंको स्पष्टरूपसे मालूम पड़ गया कि भगवान मल्लिनाथका जन्म हो गया ॥५९-६१॥ उस समय भगवान मल्लिनाथके जन्मकालमें ज्योतिषी देवोंके घरोंमें आपसे आप सिंहनाद नामका बाजेका विपुल शब्द हो निकला। भवनवासी देवोंके भवनोंमें अत्यन्त गंभीर शंखका शब्द होने लगा था। व्यंतर देवोंके घरोंमें भेरी नगाड़ेका शब्द होने लगा था। वैमानिक देवोंके आसन कंपायमान हो निकले थे। इनके सिवाय भगवान मल्लिनाथके जन्मकालमें और भी अनेक प्रकारके आश्चर्य होने लगे थे जिनसे हर एक निकायके इन्द्र उनके जन्म-कल्याणमें सम्मिलित हुए थे ॥६२-६३॥ उसके बाद सैकड़ों प्रकारके महोत्सवोंके करनेमें लालायित सौधर्म स्वर्गके इन्द्रको आदि लेकर चारों निकायोंके समस्त इन्द्रोंने अपनी अपनी आवश्यक चीजें अपने अपने साथ ले लीं। अपने वाहनोंपर वे सवार हो गये "हे स्तुति करने योग्य भगवान! आप जयवंत रहें और जीवें। हे पूज्य! आप फले फूलें वृद्धिको प्राप्त हों" इस प्रकार उस समय बड़े जोरसे कोलाहल होने लगा। अपने अपने शरीरोंके उत्तमोत्तम भूषणोंकी किरणोंसे उन्होंने समस्त दिशायें और आकाश जगमगा दिया। सैकड़ों प्रकारके बाजोंके शब्दोंसे एवं मनोहर गीत नृत्य और उत्साह परिपूर्ण कार्योंसे समस्त दिशायें और आकाश पूर दिया

महाभूत्या समस्ताः सौधर्मेन्द्रप्रमुखा मुदा । पित्रोरास्थानमाजग्मुस्तज्जन्मोत्सवहेतवे ॥६७॥
तदा राजांगणं सर्वं स्वर्गलोकमिवाबभौ । अप्सरोदेवसेनाद्यैः पुरीमार्गवनादि च ॥६८॥
ततः शची प्रविश्याशु प्रसवागारमूर्जितं । कुमारेण सहापश्यज्जिनेंद्रमातरं मुदा ॥६९॥
मुहुः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य त्रिजगद्गुरुं । जिनांबायाः पुरः स्थित्वा श्लाघ्यते स्मेति तां शची ॥७०॥
त्वमेव ! भुवनांबासि जगद्गुरुप्रसूतितः । महादेवी त्वमेवाद्य महादेवसुतोद्भवात् ॥७१॥
त्वं जगत्त्रयनारीणां शिरोमणिः परासि च । स्वामिनी जगतां देवी ! त्वं कल्याणी सुमंगला ॥७२॥
इत्यभिष्टुत्य गूढांगी तां मायानिद्रयाऽयुजत् । तस्याः पुरो निधायाशु मायाशिशुमथापरं ॥७३॥

इस प्रकार अपने अपने आज्ञाकारी देव और अपनी अपनी देवांगनाओंके साथ वे भगवान मल्लिनाथका जन्मकल्याण मनानेके लिये विशाल विभूति और हर्षके साथ मिथिलापुरी आकर उपस्थित हो गये ॥६४-६७॥ जिस समय सौधर्म आदि इन्द्र और देवगण मिथिलापुरी में आ गये उस समय राजा कुम्भके महलका आँगन, समस्त मिथिलापुरी मार्ग वन आदिमें जहाँ देखो वहां देवांगना देव और आहन आदि दीख ही सर्वत्र नजर आती थी । इसलिये उस समय मिथिलापुरीमें स्वर्गलोकका दृश्य बोध पड़ता था । मिथिलापुरी ही लोगोंको दृष्टिमें स्वर्गभूमि जान पड़ती थी ॥६८॥ जिस महलके अंदर भगवान मल्लिनाथका जन्म हुआ था वह महल अपनी प्रभासे जगमगा रहा था । देवोंके राजमहलके आंगनमें पहुँचते ही सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणीने शीघ्र ही उस मनोहर महलके अन्दर प्रवेश किया एवं वहाँपर कुमार भगवान मल्लिनाथके साथ अत्यन्त कोमल सेजपर शयन करती हुई माता प्रजावती-को बड़े हर्षके साथ निरखा ॥६९॥ आनंदसे पुलकित हो इन्द्राणीने तीन लोकके गुरु भगवान जिनेंद्रको बार बार प्रदक्षिणा दी । पश्चात् अत्यन्त भक्तिसे नमस्कार किया । वह भगवान जिनेंद्रकी माताके सामने विनयपूर्वक बैठ गई एवं मनोहर शब्दोंमें इस प्रकार उसकी स्तुति करने लगी—

हे माता ! तीनों लोकोंके गुरु भगवान मल्लिनाथको तुमने जन्म दिया है इसलिये तुम समस्त लोककी माता हो । तुम्हींने देवोंके देव महादेव पुत्रको उत्पन्न किया है इसलिये हे माता ! तुम्हीं संसारके अन्दर महादेवी हो ॥७०-७१॥ माता ! तुम्हारे समान तीनों लोकके अंदर कोई भाग्यवती स्त्री नहीं इसलिये तुम्हीं तीनों लोककी स्त्रियोंकी शिरोमणि हो । तुम्हीं समस्त जगतमें उत्कृष्ट हो । तुम्हीं तीनों लोककी स्वामिनी हो एवं तुम्हीं कल्याणरूपिणी और मंगलमयी हो ॥७२॥ इस

जगन्नाथं स्वपाणिभ्यामादाय सागमन्मुदं । तन्महारूपसौंदर्यं पश्यंती कृतकौतुका ॥७४॥
तदा मंगलधारिण्यो दिक्कुमार्यः पुरो ययुः । विश्वमंगलकर्तुश्छत्राद्यारोपितपाणयः ॥७५॥
आनीय सुकरे देवी सौधर्मेन्द्रस्य तं व्यधात् । सोऽपि तद्रूपमालोक्य दिव्यां प्रीतिं परामगात् ॥७६॥
देव ! त्वं बालचंद्रोद्गतोऽस्माकं परमं मुदं । कर्तुं त्वमेव मोहांधतमोहंता भविष्यति ॥७७॥
त्वं नाथ ! केवलज्ञानभानोः किलोदयाचलं । आमनंति विदो मिथ्याज्ञाननिद्रातमोहरं ॥७८॥
मोहांधकूपपातास्त्वं धर्महस्तावलंबनात् । निःकारणजगद्बंधुरुद्धरिष्यसि नान्यथा ॥७९॥

प्रकार महामनोहर शब्दोंसे स्तुति कर इन्द्राणीने अपनी मायासे माता प्रजावतीको सुख निद्रामें निद्रित कर दिया। ठीक भगवानके ही आकार प्रकारके एक मायामयी पुत्रका निर्माण कर उसे माताकी गोदमें सुला दिया। तीन लोकके गुरु भगवान जिनेंद्रको माताकी सेजसे अपने हाथोंसे उठा लिये एवं बड़े आश्चर्यसे उनके महा-मनोहर रूप और सौंदर्यको देखकर मारे आनन्दके गद्गद् हो गई ॥७३-७४॥ जहां पर सौधर्म स्वर्गका इन्द्र खड़ा हुआ था भगवान जिनेंद्रको लेकर इंद्राणी उसी ओर चली। समस्त जगतके मंगलके कर्ता भगवान मल्लिनाथके आगे आगे जिनके हाथोंमें छत्र चमर आदि लगे हुए हैं ऐसे मंगलीक द्रव्योंको धारण करनेवाली दिक्-कुमारियां चलने लगीं ॥७५॥ पासमें आकर इन्द्राणीने सौधर्म स्वर्गके शुभ हाथोंमें भगवान जिनेंद्रको सौंप दिया। वह भी भगवान जिनेंद्रका अद्वितीय रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। एवं आनंदसे गद्गद् हो इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगा—

हे भगवन्, हे बालचंद्र ! हम लोगोंको परमानंद प्रदान करनेके लिए संसार-में तुम्हारा उदय हुआ है क्योंकि चंद्रमाके उदयसे लोगोंको हर्ष होता है यह प्रत्यक्ष सिद्ध है तथा जिस प्रकार चंद्रमा अंधकारका नाश करनेवाला होता है उसी प्रकार मोहरूपी गाढ़ अंधकारके तुम भी नियमसे नाश करनेवाले होगे। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेका स्थान उदयाचल है उसी प्रकार हे नाथ ! केवलज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेके लिये आप उदयाचल हो तथा हे भगवान् ! विद्वान् लोग तुम्हें ही मिथ्याज्ञान और निद्रारूपी अंधकारके नाश करनेवाले मानते हैं ॥७६-७८॥ हे भगवन्, संसारके समस्त प्राणी मोहरूपी अंधकारसे परिपूर्ण कूपमें पड़े हुए हैं उनको धर्मरूपी हाथका अवलंबन देकर आप ही उद्धार करेंगे दूसरे किसी व्यक्तिमें सामर्थ

अतस्तुभ्यं नमो नाथ ! विश्वानंदविधायिने । नमस्ते बालचंद्राय नमस्तेऽद्भुतमूर्तये ॥८०॥
नमस्ते मुक्तिकांतामनोहराय सुखात्मने । नमस्ते विश्वनाथाय विश्वकल्याण भागिने ॥८१॥
स्तुत्येति स तमादाय स्वांकमैरावताश्रितं । हस्तुसुच्चालयामास (?) मेरूं प्रति सुरावृतः ॥८२॥
जयेश नंद वर्धस्व त्वमिति ध्वनिकोटिभिः । तदा कलकलं चक्रुर्हृष्टा देवाः प्रमोदतः ॥८३॥
सौधर्मकल्पनाथस्यांकासीनं त्रिजगद्गुरुं । ऐशानेंद्रस्तदा भेजे सितच्छत्रेण सादरं ॥८४॥
सनत्कुमारमाहेंद्रस्वामिनौ धर्मचक्रिणः । चामरैस्तं व्यधुर्वातां क्षीराब्ध्यूर्मिनिभैः सितैः ॥८५॥
दृष्ट्वा तदातनीं भूतिं केचित्दृष्टिनिर्जराः । इन्द्रप्रामाण्यमाधाय च कुर्जेनमते मतिं ॥८६॥

नहीं जो उद्धार कर सके । इसलिये संसारमें बिना प्रयोजनके यदि बंधु हैं तो आप ही हैं अन्य कोई आपके समान निष्प्रयोजन बंधु नहीं हो सकता ॥७९॥

इसलिये हे नाथ ! आप समस्त लोकको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं अतः आपके लिये नमस्कार है । आप संसारमें सबको प्रसन्न करनेवाले बालचंद्रमा हैं इसलिये आपके लिये नमस्कार है । तुम आश्चर्यकारी मूर्तिके धारक हो इसलिये तुम्हारे लिये नमस्कार है । हे प्रभो ! मोक्षरूपी स्त्रीके चित्तको हरण करनेवाले आप ही हो और आप सुख ही स्वरूप हो इसलिये आपके लिये नमस्कार है । हे देव ! तुम्हीं समस्त लोकके स्वामी हो और तुम्हीं समस्त प्रकारके कल्याणोंको प्राप्त करनेवाले हो इसलिए तुम्हारे लिए भक्तिपूर्वक नमस्कार है ॥८०-८१॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक मनोहर शब्दोंसे स्तुति कर इन्द्रने भगवान मल्लिनाथको ऐरावत हाथीपर बैठे ही बैठे अपनी गोदमें ले लिया एवं उनका अभिषेक करनेके लिए अनेक देवोंसे वेष्टित वह मेरु पर्वतकी ओर चल दिया ॥८२॥ भगवान मल्लिनाथको इन्द्रकी गोदमें विराजमान देख समस्त देव मारे आनंदके पुलकित हो गये एवं मनके अंदर अत्यन्त प्रमोद धारण कर वे "हे स्वामी ! तुम चिरकाल तक जीवो, नाचो, विरचो" इस प्रकार गंभीर शब्दोंमें उन्नत कोलाहल करने लगे ॥८३॥ तीन जगतके गुरु भगवान मल्लिनाथको सौधर्म इन्द्रकी गोदीमें विराजमान देख ऐशान स्वर्गके इन्द्रको बड़ा भारी संतोष हुआ आनंदसे गद्गद् हो बड़े आदरसे उसने भगवान पर छत्र लगा लिया ॥८४॥ सनत्कुमार और माहेंद्र स्वर्गोंके इन्द्र भी धर्मके चक्रवर्ती भगवान मल्लिनाथपर चमर ढोरने लगे जो चमर क्षीर समुद्रकी तरंगोंके समान महामनोहर और सफेद थे ॥८५॥ भगवानके पांचों कल्याणोंमें समस्त देव सम्यग्दृष्टी ही आवें यह नियम नहीं बहुतसे मिथ्यादृष्टि देव भी आते हैं क्योंकि वे इन्द्रके आज्ञाकारी होते हैं इसलिये इन्द्रकी आज्ञानुसार अवश्य उन्हें वहाँ पर आना पड़ता है । भगवान

तस्मान्नजोगणं व्याप्य विभूत्या परया सम । स्वस्योहनभारुढैः कल्पनाथेमंहोत्सवे ॥८७॥
वीणामृदंगवंशाद्येर्ध्वनद्भिर्वाद्यकोटिभिः । गंधर्वकिन्नरीभिश्च गायंतीभिस्तदुत्सवं ॥८८॥
कुर्वंतीभिः परं नृत्यमप्सरोभिर्मनोहरं । छादयंतीभिराकाशं ध्वजछत्रादिपंक्तिभिः ॥८९॥
सौधर्मेंद्रोऽतिधर्मात्मा चासख्यसुरवेष्टितः । मेरुंपरीत्य सानंदो जगन्नाथं व्यधान्मुदा ॥९०॥
जन्मस्नानाय तीर्थेशं शचीचकादिभेष्टितं । तन्मूर्ध्नीशानदिक्पांडुकशिलाहरिविष्टरे ॥९१॥
शुद्धस्फटिकरत्नरश्मिकलिता प्रक्षालितानेकशो । वारान् क्षीरसमुद्र तोयनिवहैर्मुक्तामनां वा शिला ॥

मल्लिनाथके जन्मकालमें जो भी मिथ्यादृष्टि देव आये थे वे भी यह निश्चय कर कि "जब स्वयं सौधर्म स्वर्गका स्वामी भगवान मल्लिनाथकी सेवामें भक्तिपूर्वक लगा हुआ है तब यही ठीक जान पड़ता है कि समस्त मतोंमें जैन मत ही पवित्र और कल्याणका करनेवाला है अन्य मत नहीं" उनका जैनधर्म पर गाढ श्रद्धान हो गया ॥८६॥ उस समय मेरुपर्वतपर जानेका अवसर था इसलिये समस्त देव, मय अपने अपने इन्द्रोंके अपने अपने वाहनों पर सवार थे । भगवान जिनेंद्रके नाना प्रकार-के महोत्सवोंके करनेमें व्यग्र थे । वीन मृदंग बांसुरी आदि करोड़ों प्रकारके बाजे बजते थे । भगवान जिनेंद्रके उत्सवका गान गंधर्व जातिके देव और किन्नर जातिकी देवांग-नायें महामनोहर ललित शब्दोंसे करती चली जाती थीं । उस समय अप्सरायें नेत्रों-को परमानंद प्रदान करनेवाला महामनोहर नृत्य करती चली जाती थीं । ध्वजा और छत्र आदि चीजोंकी भरमारसे उस समय सारा आकाश ढका सरीखा जान पड़ता था । इस प्रकार उत्कृष्ट और विपुल विभूतिसे उस समय सारा आकाश व्याप्त था ॥८७-८९॥ जो अपने पीछे और आगे चलनेवाले असंख्यात देवोंसे व्याप्त था और परम धर्मात्मा था ऐसा सौधर्म स्वर्गका इंद्र जिस समय मेरु पर्वत पर आया भक्तिभावसे उसकी तीन प्रदक्षिणायें दी एवं अत्यन्त हर्षके साथ तीन लोकके स्वामी भगवान मल्लिनाथको मेरु पर्वतपर ले आया ॥९०॥ मेरु पर्वतके मस्तकपर ईशान-कोणमें एक पांडुक नामकी शिला है और उसके मध्य भागमें सिंहासन विद्यमान है । इन्द्राणि और अनेक इंद्र आदिसे वेष्टित सौधर्म स्वर्ग इन्द्र उस स्थान पर आया एवं तीर्थंकर मल्लिनाथका जन्माभिषेक करनेकी उत्कृष्ट अभिलाषासे उन्हें वहाँ पर विराजमान कर दिया ॥९१॥

जिस पांडुक शिलापर ले जाकर इन्द्रने भगवान मल्लिनाथको विराजमान

सायामा शतयोजनेश्च विमला तुंगाष्टभिर्विस्तृता । पंचाशत्प्रमितैर्विभाति नितरां छत्रादिसन्मंगलैः ॥
तत्रानल्पपरार्ध्यरत्ननिचिते हैमे सुसिंहासने, देवो दिव्यशरीरकांतिनिचयैरुद्योतिताशाचयः ।
यः शक्रादिगणैर्जिनेन्द्रपदभृत्सर्वेष्ठितः संबभौ, तं लोकत्रयतारणैकचतुरः स्तोष्ये गुणैस्तच्छिदे ॥९३॥

इति श्रीमल्लिनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते गर्भकल्याणवर्णनो नाम चतुर्थःपरिच्छेदः ॥४॥

किया था उस शिलाकी प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—कि वह पांडुक शिला अत्यन्त शुद्ध स्फटिकमयी पाषाण की है और उस स्फटिक मणिसे निकलने वाली रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त है। उस शिलापर अनंते तीर्थंकरोंका अभिषेक किया जा चुका है इसलिये क्षीर समुद्रके विपुल जलोंसे वह अनेक बार प्रक्षालित की जा चुकी है अर्थात् जब जब तीर्थंकरोंका अभिषेक हुआ है तब तब क्षीर समुद्रके विपुल जलसे ही हुआ है। इसलिये उस पांडुक शिलापर जिन-जिन महापुरुष तीर्थंकरोंका अभिषेक हुआ है उनके अभिषेकोंके साथ उस शिलाका भी अनेक बार अभिषेक हो चुका है अतएव पवित्रतासे वह सिद्धशिलाके समान महापवित्र और उत्तम है। वह निर्मल शिला सौ योजनकी लम्बी है। आठ योजन प्रमाण ऊंची है एवं पचास योजन प्रमाण उसकी चौड़ाई तथा सदा उसके ऊपर छत्र चंवरोंवे आदि मंगलीक द्रव्य तैयार रहते हैं इसलिए उनकी प्रभासे सदा जगमगाती हुई अत्यन्त शोभायमान जान पड़ती है ॥९२॥ उस महामनोहर शिलाके मध्यभागमें एक महामनोज्ञ सिंहासन है जो अगणित उत्तमोत्तम रत्नोंसे व्याप्त है और सुवर्णमयी है। भगवान जिनेन्द्रको उस पर जाकर विराजमान कर दिये। उस समय भगवानके दिव्य शरीरकी प्रभाओंसे समस्त दिशायें शोभायमान थीं और इन्द्र आदि देवोंसे चारों ओरसे वेष्टित वे भगवान मल्लिनाथ उस समय महामनोहर जान पड़ते थे इसलिये ऐसे तीनों लोकके जीवोंको तारनेवाले भगवानको मैं उनकी गुणसंपदाकी प्राप्तिकी अभिलाषासे भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं और उनके गुणानुवाद करता हूं ॥९३॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिकामें उनके गर्भ और जन्म इन दो कल्याणोंका वर्णन करने वाला चौथा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥४॥

पंचमः परिच्छेदः

वंदे जगत्त्रयानंदकर्तारं ज्ञानभास्करं । जिनचंद्र महामोहतमोहंतारमद्भुतं ॥ १ ॥
तामावेष्ट्याथ गीर्वाणास्तत्स्थुर्दिक्पालकामराः । यथायोग्य स्वदिग्भागे दृष्टुकामा जिनोत्सवं ॥ २ ॥
महामंडपविन्यासश्चक्रे देवैर्महोत्सवं । कुर्वूः सुराश्च तद्दृष्ट्यो गीतवाद्यादिनर्तनैः ॥३॥
ततः स्वर्णमयैः कुंभैर्मुखे योजनविस्तृतैः । अष्ठयोजनगंभीरैर्मुक्तामालादिभूषितैः ॥४॥
अनेकैर्वहवः स्वच्छांभः शुचिक्षीरवारिधेः । सुराः श्रेणीकृतास्तोषादानेतुं प्रसृतास्तदा ॥५॥

जो भगवान तीनों लोकके जीवोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं तथा जो सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्यस्वरूप भी हैं और महामोहरूपी अंधकारको नष्ट करनेवाले चन्द्रमा स्वरूप भी हैं अर्थात् जो चन्द्रमा है वह सूर्य नहीं हो सकता और जो सूर्य है वह चन्द्रमा नहीं हो सकते। क्योंकि दोनोंका स्वरूप परस्पर विरोधी और भिन्न है इसलिए एक ही भगवान जिनेन्द्र सूर्य और चन्द्रमा दोनों स्वरूपमें नहीं हो सकते परन्तु ऐसा होनेपर भी सूर्यके समान अपने ज्ञानसे पदार्थोंके प्रकाश करनेवाले होनेके कारण जो सूर्य स्वरूप भी एवं चन्द्रमा जिस प्रकार अंधकारका नाशक है उसी प्रकार जो महामोहरूपी अंधकारको नाश करनेवाले हैं इसलिये चन्द्रमा स्वरूप भी हैं ऐसी अद्भुत गतिके धारक भगवान जिनेन्द्रको मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥१॥ जिस पांडुक शिलाका वर्णन ऊपर किया जा चुका है भगवान जिनेन्द्रके अभिषेकका उत्सव देखनेके लिये देवगण चारों ओरसे उसे घेरकर बैठ गये तथा दिशाओंके पालन करनेवाले दिक्पाल देव भी उत्सवका ठाट बाट देखनेके लिये यथायोग्य अपनी अपनी दिशाओंमें स्थित हो गये। पांडुक शिलापर देवोंने भगवान जिनेन्द्रके अभिषेकके समय एक विशाल मण्डपका निर्माण किया था। देवियोंने महामनोहर गीत उत्तमोत्तम बाजोंके शब्द और नृत्योंके साथ भगवान जिनेन्द्रके अभिषेकका महान उत्सव करना प्रारम्भ कर दिया ॥३॥ भगवानके अभिषेकके समय देवगण सुवर्णमयी कुम्भोंसे क्षीरोदधि समुद्रका अत्यन्त स्वच्छ और पवित्र जल लाते हैं उससे भगवानका अभिषेक किया जाता है। जिन सुवर्णमयी कलशोंसे भगवान जिनेन्द्रके अभिषेकका जल लाया गया था उन कलशोंका मुख एक एक योजन चौड़ा था। आठ योजन प्रमाण वे गहरे थे। मोतियोंकी माला आदिसे भूषित थे और अनेक अर्थात् संख्यामें एक हजार आठ थे। क्षीर समुद्रसे जल लाते समय देवोंके चित्त आनन्दसे आनन्दायमान थे इसलिये

विनिर्मिमे मुदा बाहून् सहस्रप्रमितान् परान् । तत्स्नानायादिकल्पेशो दिव्याभरणमंडितान् ॥६॥
कुंभोद्धृतैर्जलसद्धस्तैर्जिनमूर्ध्नि सुरेश्वरः । जयेत्युक्त्वा परां धारां प्रथमां स न्यपातयत् ॥७॥
तदा कलकलो भूयान् चक्रेऽसंख्यसुरासुरैः । ततः कल्पाधिपैः सर्वैः समं धारा निपातिताः ॥८॥
महानद्य इवापतन्वार्धारास्तस्य मस्तके । लीलयैव महिम्नासौ ताः प्रतीच्छेदिगरींद्रवत् ॥९॥
तदा बभौ नभोभागं चापच्छटाभा (भि) संकुलं । तत्पाण्डुकवनं विश्वं क्षीरपूर्णं इवार्णवः ॥१०॥
अनेकगीतनृत्याद्यैः प्रध्वनद्वाद्यकोटिभिः । महोत्सवशतैर्नानाविधैर्देव्यादिभिः कृतैः ॥११॥

वे फैलकर उस समय लडीबद्ध खड़े थे ॥४-५॥ भगवान मल्लिनाथके अभिषेकके समय सौधर्म स्वर्गके इन्द्रके हर्षका भी पारावार न था। अभिषेकके समय उसे दो भुजाओंसे भगवान जिनेन्द्रका अभिषेक करना पसन्द न आया इसलिए अनेक दिव्य आभूषणोंसे मंडित शीघ्र ही उसने हजार भुजायें बना लीं ॥६॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने "हे भगवान जयवंते रहो" ऐसा भक्तिपूर्वक उच्चारण कर जिनमें सुवर्णमयी कलश विद्यमान हैं ऐसे अपने मनोहर हाथोंसे सबसे पहिले जलधारा भगवानके मस्तकपर छोडी। उस प्रथम जलधाराके देते ही वहाँ पर विद्यमान असंख्याते सुर और असुरों-को परमानन्द हुआ इसलिए उनका अत्यन्त कोलाहल होने लगा एवं उसके बाद समस्त इन्द्रोंने मिलकर भगवान जिनेन्द्रके मस्तक पर अगणित जलधारायें छोड़ीं ॥७-८॥ जिस समय इन्द्रगण उनके मस्तकपर जल धारा छोड़ते थे उस समय वे धारायें महान नदियोंके समान उनके मस्तक पर गिरती थीं परन्तु जिस प्रकार विशाल पर्वतपर पड़नेवाली नदियोंकी धाराओंसे वह रंचमात्र भी हिलता डुलता नहीं उसी प्रकार अचिंत्य शक्तिके धारक भगवान मल्लिनाथ भी अपने अनुपम प्रभावसे उन्हें क्रीड़ापूर्वक झेलते थे, घबड़ाकर जरा भी वे हिलते डुलते न थे ॥९॥ उस समय रंग विरंगी रत्नोंकी भूमियोंपर पड़नेके कारण रंग विरंगी जलकी बूंदोंसे व्याप्त आकाश इन्द्र-धनुषकी शोभासे व्याप्त जान पड़ता था। पांडुक वनमें सर्वत्र क्षीर समुद्रका जल ही जल डोलता नजर पड़ता था इसलिए पांडुक वन उस समय साक्षात् क्षीर समुद्र सरीखा जान पड़ता था ॥१०॥ इस प्रकार जिनमें अनेक प्रकारके गीत और नृत्य आदि कार्य हो रहे हैं अनेक प्रकारके करोड़ों बाजे बज रहे हैं एवं जिनका निर्माण अनेक देवी देवोंके द्वारा किया गया है ऐसे सैकड़ों महान् उत्सवोंके साथ क्षीर समुद्रके जलसे जब भगवानका अभिषेक समाप्त हो चुका तो उसके बाद धारा गिरते समय जिनसे जय जय शब्द निकलता है ऐसे सुगन्धित जलसे भरे कलशोंसे देवेन्द्रने भक्तिपूर्वक बड़े ठाट बाटसे भगवान जिनेन्द्रके

शुद्धाम्बुस्नपनं पूर्णमिति चक्रुः सुरेश्वराः । विभूत्या परया भक्त्या विभोः कुंभैर्जयस्वनैः ॥१२॥
ततो गंधोदकैः कुंभैः सुगंधिद्रव्यमाश्रितैः । अभ्यषिंचद्विधानज्ञो विधातारं शताधरः (?) ॥१३॥
गंधोदकमया धारा पतंती सा बभौ तरां । सुधां धारेव गात्रेऽस्य निसर्गसुरभौ वरे ॥१४॥
इत्युत्सवशतैर्गंधोदकस्नपदमद्भुतं । कृत्वोपार्ज्य महत्पुण्यं चक्रुस्ते स्वपवित्रतां ॥१५॥
समस्ता पूरयत्याशा गंधोदकमया सतां । पवित्रा पुण्यधारेव सा पवित्रीकरोतु नः ॥१६॥
इत्युक्त्वा मस्तके चक्रुः सर्वांगे च सुरोत्तमा । स्वर्गसोपायनं भक्त्या तद्गंधांबु स्वशुद्धये ॥१७॥
गंधांबुस्नपनस्यांते जिनेन्द्रांगे महोत्सवैः । व्यात्युक्षीममराश्चक्रुः सच्चूर्णैर्गंधवारिभिः ॥१८॥
निवृत्तावभिषेकस्य तं परीत्य दिवौकसः । आनर्चुः परया भक्त्या दिव्यार्घनसुवस्तुभिः ॥१९॥
सकलत्राः सुराः कृत्वेतीष्टिशांतिसुपौष्टिकान् । प्रणेमुरुत्तमांगेन परीत्यैनं जगद्गुरुं ॥२०॥

अभिषेकका आयोजन किया। नाना प्रकारकी महामनोहर सुगन्धित द्रव्योंसे मिश्रित सुगंधित जलके भरे हुए कलशे रक्खे गये एवं उनसे समस्त प्रकारके विधानोंके जानकार इन्द्रने तीन जगत्के जीवोंको मोक्षमार्गका विधान सुझानेवाले भगवान जिनेन्द्रका भक्तिपूर्वक अभिषेक किया ॥११-१२॥ भगवान जिनेन्द्रका शरीर स्वभावसे ही अत्यन्त सुगंधित था इसलिये उनके शरीरपर वह गिरती हुई सुगंधित जलकी धारा अमृतकी धाराके समान महा शोभायमान जान पड़ती थी ॥१४॥ इस प्रकार सैकड़ों उत्सवोंके साथ सबोंको आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला वह सुगंधित जलसे किया गया अभिषेक भी समाप्त हो गया एवं भक्तिपूर्वक अभिषेक कर उन देवोंने महान् पुण्यका संचय कर अपनेको पवित्र बनाया ॥१५॥ गंधोदकके सुगंधित जलसे उस समय समस्त दिशायें व्याप्त थीं और वह गंधोदककी धारा महापवित्र सज्जनोंके पुण्योंकी धारा सरीखी जान पड़ती थीं "वह पवित्र धारा हमें भी पवित्र करे" ऐसा उच्चारण कर देवोंने अपनी अपनी विशुद्धिकी कामनासे स्वर्गकी पैंडियों स्वरूप वह गंधोदकका पवित्र जल अपने अपने मस्तकोंसे लगाया पीछे भक्तिपूर्वक समस्त शरीरसे लगा डाला ॥१६-१७॥

सुगन्धित जलसे जिस समय भगवानका अभिषेक समाप्त हो गया उस समय अनेक प्रकारके महोत्सवोंके साथ देवोंने अगर तगर आदिके उत्तमोत्तम सुगन्धित चूर्णोंसे और सुगंधित जलोंसे भगवान जिनेन्द्रके शरीरका उबटन किया ॥१८॥ जब अभिषेकका कार्य और उबटनका समस्त कार्य समाप्त हो चुका उस समय दिव्य और सुगन्धित उत्तम पूजनकी सामग्रीसे भगवान जिनेन्द्रको चारों ओरसे वेष्टित कर देवोंने बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा की ॥१९॥ इस प्रकार देवोंने पूजा शान्तिविधानका कार्य समाप्त कर तीनों लोकके गुरु भगवान मल्लिनाथकी तीन प्रदक्षिणा दीं और

अथाभिषेके संपूर्णे इन्द्राणी कौतुकोत्सुका । प्रसामनविधौ यत्नमकरोद्धर्मदेशिनः ॥२१॥
तस्याभिषिक्तदेहस्य निसर्गसुन्दरस्य सा । अंगलग्नान् मामार्जाभः कणान् सूक्ष्मामलांशुकैः ॥२२॥
स्वभावेनातिसौरभ्यं विभोर्गात्रं च्युतोपमं । अन्वलिप्यत सा भक्त्या द्रव्यैः सांद्रैः सुगंधिभिः ॥२३॥
ललाटे तिलकीभूते जगतामीशितुर्दधे । तिलकं, मुकुटं, मूर्ध्नि मंदारस्रग्युतं च सा ॥२४॥
ज्ञाननेत्रप्रभोर्विश्ववेत्तुः परमचक्षुषः । चक्रेस्वजनसंस्कार स्वाचाराप्त्येह केवलं ॥२५॥
कर्णाविविद्धसच्छिद्रौ कुंडलाभ्यामलंकृतौ । चकार मणिहारेण कंठे शोभां परां विभोः ॥२६॥
बाहुयुगं च केयूरमुद्रिकाकंकणांकितं । चक्रे सास्य कटिभागं मणिदामविभूषितं ॥२७॥

मस्तक झुकाकर उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा अभिषेक आदि कार्योंके समाप्त हो जानेपर उनकी परम धीर वीरता देखकर आश्चर्यसे उत्सुक हो इन्द्राणीने शृंगारके लिये आयोजन करना प्रारम्भ कर दिया ॥२०-२१॥ जलसे प्रक्षालित शरीरके धारक और स्वभावसे ही सुन्दर भगवानके शरीरपर जो जलकी बूंद विद्यमान थीं इन्द्राणीने सूक्ष्म और निर्मल वस्त्रोंसे उन्हें पोंछकर साफ कर दिया ॥२२॥ जिसकी उपमा किसी भी शरीरसे नहीं दी जा सकती ऐसा भगवानका शरीर यद्यपि स्वभावसे ही महा सुगंधित था इसलिये अन्य सुगंधित द्रव्योंसे उसका लेप करना निरर्थक था तथापि अपनी भक्ति प्रगट करनेके लिये इन्द्राणीने अत्यन्त सुगंधित द्रव्योंका उनके अंगपर लेप किया था ॥२३॥ तीन जगत्के स्वामी भगवान जिनेन्द्रका ललाट समस्त अङ्गोंमें तिलकस्वरूप था अथवा संसारमें जितने भी ललाटधारी पुरुष हैं उन सबोंके ललाटमें तिलकभूत था इसलिये उस ललाटपर तो इन्द्राणीने तिलक लगाया तथा मस्तकपर मंदार जातिके कल्पवृक्षकी मालासे शोभायमान मुकुट पहिनाया ॥२४॥ नेत्रोंमें जो काजल लगाया जाता है वह नेत्रोंकी दीप्ति बढ़ानेके लिये लगाया जाता है । भगवान मल्लिनाथ समस्त लोकके जानकार थे और ज्ञानरूपी नेत्रके स्वामी थे इसलिये उनके नेत्रोंमें अंजन लगानेकी कोई भी आवश्यकता न थी तथापि उनके उत्तम नेत्रोंमें जो इन्द्राणीने अंजन लगाया था वह केवल शिष्टाचार पालन करनेके लिये ही था अर्थात् उसने अपना कर्तव्य कर्म पूरा किया था ॥२५॥ बींधे न जानेपर भी स्वभावसे ही उत्तम छिद्रोंसे शोभित भगवान मल्लिनाथके दोनों कानोंको इन्द्राणीने मनोहर कुंडलोंसे भूषित किया एवं मणिमयी महामनोहर हार पहिनाकर उनका कंठ शोभायमान किया था ॥२६॥ उनकी दोनों भुजाओंमें महामनोज्ञ अनंत मुद्रिका और कड़े पहिनाए थे । कटिभागपर महामनोहर मणिमयी करधनी बांधी थी, दोनों पैरोंमें मणिमयी घुंघरू पहिनाए थे जो कि अनुपम थे एवं

पादौ गोमुखनिर्भासैर्मणिभिस्तस्य रेजतुः । वाचालितौ सरस्वत्या कृतसेवाविवाद्भुतौ ॥२८॥
परब्रह्मस्वरूपौ वा ज्ञानमूर्तिरिवोत्थितः । रत्नकार इवात्यंतसुन्दरो धर्ममूर्तिवत् ॥२९॥
लक्ष्म्याः पुञ्ज वोद्भूतो निधिर्वा तैजसां महान् । राशिर्वा यशसां पुण्याणूनां वा परमाकरः ॥३०॥
आश्रयो वा गुणानां स तदा देवो बभौ तरां । परमांशुकनेपथ्यमालाद्यैः स्वांगकांतिभिः ॥३१॥
दृष्ट्वा तदातनी शोभां तृप्तिप्राप्य देवराट् । तं द्रष्टुं सहसा चक्रे सहस्रनयनान्यहो ॥३२॥
निमेषविमुखैर्दिव्य लोचनैश्च सुरासुराः । साश्चर्यहृदया देव्यो ददर्शुस्तं च्युतोपमं ॥३३॥
पुनस्तोषांतरेकेण शक्रास्तं स्तोतुमुद्ययुः । प्रकटीकृत्य तीर्थेशमाहात्म्यंतद्गुणाप्तये ॥३४॥
त्वं देव ! परमानंद कर्तुमस्माकमुद्गतः । प्रवर्धयितुमेवात्र धर्मार्णव बालचंद्रवत् ॥३५॥

घुनु घुनु शब्द करनेवाले थे सो ऐसे जान पड़ते थे मानो साक्षात् सरस्वती देवी उन दोनों घुघुरुओंकी सेवा कर रही है ॥२७-२८॥ उत्तमोत्तम वस्त्र भूषण और माला आदिसे सजाए गए एवं अपने शरीरकी मनोहर कांतिसे देदीप्यमान वे भगवान मल्लिनाथ ऐसे जान पड़ते थे मानो साक्षात् परम ब्रह्मस्वरूप हैं अथवा उदयको प्राप्त साक्षात् ज्ञानकी मूर्ति हैं। वा अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण साक्षात् रत्नाकर—समुद्रस्वरूप हैं वा साक्षात् धर्मकी मूर्ति हैं। अथवा लक्ष्मीके पुंज स्वरूप हैं वा तेजोंके अद्भुत खजाने हैं। अथवा यशोंकी राशि हैं वा जितनी भर भी संसारके अन्दर पुण्य परमाणुयें हैं उनके सर्वोत्कृष्ट स्थान हैं अथवा संसारमें जितने गुण माने जाते और कहे जाते हैं उन सबके आधार ये ही हैं। इस रूपसे भगवान मल्लिनाथकी उस समयकी शोभा अपरिमित थी ॥२९-३१॥ भगवान मल्लिनाथकी उस समयकी अलौकिक शोभा देखकर सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी तृप्ति न हो सकी इसलिये उनके महामनोज्ञ रूपके देखनेकी उत्कट लालसासे उसी समय उसने हजार नेत्र बना लिए एवं हजार नेत्रोंसे उनका स्वरूप निरखने लगा ॥३२॥ भगवानके उस समयके अनुपम रूपको सुर असुर और उनकी देवियां अपने पलक रहित दिव्यनेत्रोंसे टकटकी लगाकर देखने लगे एवं उनके उस प्रकारके अलौकिक रूपको देखकर अत्यन्त आश्चर्य करने लगे ॥३३॥ तथा तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथका माहात्म्य प्रगट कर उनके गुणोंकी प्राप्तिकी अभिलाषासे इन्द्रगण अत्यन्त संतोषके साथ उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

जिस प्रकार बाल चन्द्रमाके उदयसे लोगोंको आनंद होता है और समुद्र वृद्धिको प्राप्त होता है उसी प्रकार हे भगवन ! हम लोगोंको परमानंद प्रदान करनेके लिये और धर्मरूपी विशाल समुद्रके बढ़ानेके लिए बाल चन्द्रमाके समान आपका

मिथ्याज्ञानांधकूपेऽत्र पततां मोहिनां स्फुटं । त्वं कारुण्यात्प्रभो हस्तावलंबं च प्रदास्यसि ॥३६॥
त्वं नाथ ! जगतां भर्ता त्वामिच्छति शिवात्मजा । त्वं धर्मात्मा जगन्नाथस्त्वं धर्मतीर्थ कारकः ॥३७॥
अस्नातः पूतगात्रस्त्वं नः पवित्रीकरः सतां । त्वं जगन्मंडनीभूतो निरावरणभास्वरः ॥३८॥
त्वं च लोकत्रयीनाथो विश्वसत्त्व हितंकरः । मोहपाशं सतां छेत्ता त्वं बाल्येऽपि भविष्यसि ॥३९॥
त्वत्तो गुणाम्बुधेः सर्वं वृद्धिं यास्यंति सद्गुणाः । दृगाद्या धीमतां दोषाः क्षयं रागादयोऽपि च ॥४०॥
न भवत्सदृशो देव ! जगद्बंधुर्जगद्गुरुः । स्वान्ययोर्हितकर्ता च परो जातु परात्मकः ॥४१॥

उदय हुआ है ॥३४-३५॥ रतोंध आदिके द्वारा अंधे कूपमें पड़ा हुआ प्राणी थोड़ासा सहारा पाकर ही ऊपर आ जाता है । हे देव ! मोहसे मूढ़ ये प्राणी संसारके अन्दर मिथ्याज्ञानरूपी अंधेरे कुंआमें पड़े हुए हैं । इस समय इन्हें उस कुंआंसे निकालनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं । हे करुणासागर भगवान ! आपही दयासे गद्गद् हो अपने हाथका सहारा दे उन्हें निकालेंगे और उनका उद्धार करेंगे ॥३६॥ हे नाथ ! तुम समस्त जगतके भर्ता---पोषण करनेवाले हो [illegible] और उत्तम शक्तिके धारक आपहीको हे देव ! मोक्षरूपी कन्या वर बनानेकी इच्छा रखती है । हे तीन लोकके नाथ भगवान ! तुम ही धर्मस्वरूप हो और तुम ही धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिके करनेवाले हो ॥३७॥ हे भगवान ! स्नानके न किये जाने पर भी तुम पवित्र शरीरके धारक हो और सज्जनोंको पवित्र करनेवाले हो । हे नाथ ! तुम्हीं समस्त लोकके अलौकिक भूषण हो और तुम्हीं जिसपर कभी भी आवरण नहीं आ सकता ऐसे देदीप्यमान सूर्य हो ॥३८॥ हे प्रभो ! संसारमें तीनों लोकके नाथ आप ही हैं । समस्त जीवोंके हित और कल्याणके कर्ता भी आप ही हैं क्योंकि हे भगवान ! बालक (१) अवस्थामें ही समस्त मोक्षाभिलाषी जीवोंके मोहरूपी पाशको नष्ट करनेवाले आप ही होंगे ॥३९॥ हे समस्त गुणोंके समुद्र भगवान ! सम्यग्दर्शन आदि जितने भी संसारके अन्दर अनुपम और प्रशस्त गुण हैं आपकी कृपासे ही वे वृद्धिको प्राप्त होंगे—अर्थात् आप अपने अनुपम ज्ञानसे उनका स्वरूप समझावेंगे तब सज्जन पुरुष उन्हें अखंडरूपसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा करेंगे तथा संसारमें डुबानेवाले जो राग आदि दोष हैं आपकी कृपासे ही वे सज्जनोंके नष्ट होंगे ॥४०॥ हे देव ! संसारमें न तो कोई आपके समान समस्त जगतका बंधु है । न आपके समान कोई समस्त जगतका गुरु है । अपना और पराया हित करनेवाला भी आपके समान और कोई नहीं, हे नाथ ! आपके समान पवित्र आत्माका धारक भी कोई संसारके अन्दर दृष्टिगोचर नहीं ॥४१॥

१. विवाहके समय ही ये भगवान मल्लिनाथ विरक्त होकर दीक्षा ग्रहण करेंगे इसलिये बालब्रह्मचारी हैं ।

निस्वेदाय नमस्तुभ्यं नग्ने निर्मलमूर्तये । क्षीराभगोणितांगाय ते चाद्याकृतये नमः ॥४२॥
आदिसंहननायैव दिव्यरूपाय ते नमः । सौरभ्याय नमस्तुभ्यं सौलक्षण्याय ते नमः ॥४३॥
अप्रमाणसुवीर्य्याय नमस्ते हितवादिने । मितवक्त्रे सहोत्पन्नदातिशयशालिने ॥४४॥
अन्यामितगुणायास्तु नमस्ते ज्ञानचक्षुषे । नमस्ते जगदानंदकर्त्रे मुक्तिप्रियाय च ॥४५॥
त्वामभिष्टुत्य देवेश प्रार्थयामो जगाच्छ्रियं । न वयं किन्तु नो देहि भवद्वैभवमंजसा ॥४६॥

हे भगवान ! आपका शरीर स्वेद (पसेव) रहित है इसलिये पसेव रहित उत्तम शरीरके धारक आपके लिए नमस्कार है। आपका शरीर मल मूत्र रहित— निर्मल है इसलिये आपके लिये नमस्कार है। आपके शरीरके अन्दर निन्दित रक्त नहीं किन्तु महामनोहर क्षीर समुद्रके जलके समान महास्वच्छ रक्त है इसलिए क्षीर समुद्रके जलके समान रक्तसे परिपूर्ण अङ्गके धारक आपके लिये नमस्कार है। हे नाथ ! आप समचतुरस्रसंस्थानके धारक हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है। हे भगवान ! आप आदि संहनन—वज्रवृषभनाराच[1] संहननके धारक हैं और आपका रूप दिव्य रूप है इसलिए आपके लिए नमस्कार है। आपका शरीर अत्यन्त सुगंधिका धारक है और १००८ शुभलक्षणोंसे शोभायमान है इसलिए आपके लिए नमस्कार है ॥४२-४३॥ हे देव ! जिसका किसी प्रकारका परिमाण नहीं किया जा सकता ऐसे अनुपम पराक्रमके आप धारक हैं एवं सर्वदा हितकारी मार्ग सुझाने वाले हैं। इसलिए आपके लिए नमस्कार है। हे प्रभो ! आप परिमित और समीचीन बोलने वाले हैं इस प्रकार साथ साथ ही उत्पन्न होनेवाले दश अतिशयोंसे अत्यन्त शोभायमान हैं अर्थात् उत्पत्तिके समय दश आपके अतिशय होते हैं वे अन्यके नहीं हो सकते इसलिये आपके लिये नमस्कार है ॥४४॥ हे भगवान ! ऊपर जितने गुणोंका उल्लेख किया गया है उनसे भिन्न भी अपरिमित गुणोंके आप भण्डार हैं और महादीप्तिमान ज्ञानरूपी नेत्रके धारक हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है। हे प्रभो ! आप समस्त जगतको अलौकिक आनन्द प्रदान करने वाले हैं और अत्यन्त दुर्लभ मोक्षरूपी लक्ष्मीके प्यारे आप ही हैं इसलिए आपके लिए नमस्कार है ॥४५॥ हे जगन्नाथ ! आपकी स्तुति कर हम आपसे यह प्रार्थना करना नहीं चाहते कि आप हमें समस्त जगतकी लक्ष्मी प्रदान करें परन्तु प्रभो ! प्रार्थना यही

१. वज्रवृषभनाराच १ वज्रनाराच २ नाराच ३ अर्धनाराच ४ कीलित ५ स्फटिक ६ ये छह संहनन हैं। तद्भव मोक्षगामियोंके पहिला ही संहनन होता है।

इति स्तुत्वा जगन्नाथं परमानंदनिर्भराः । प्रणेमुः शिरसा शक्राः सकलत्राश्च सामराः ॥४७॥
मल्लिकाधिकगंधौघदिव्यांगधारणः प्रभो । जेतुः कर्मादिशत्रूणां मल्लिनाम सुरा व्यधुः ॥४८॥
शेषकार्याप्तये तस्मात्तमादाय जगद्गुरुं । देवेशाः परया भूत्या पूर्ववत्तत्पुरं ययुः ॥४९॥
तत्र राजांगणे रम्ये तुंगे सिंहासने मुदा । सर्वांगभूषितं देवं सौधर्मेंद्रो न्यवीविशत् ॥५०॥
शच्या प्रबोधिता माता बंधुभिः सह कुंभराट् । तेजः पुञ्ज मिवोद्भूतं मुदाऽपश्यन्निजसुतं ॥५१॥
निवेद्य सकलं मेरुवृत्तं तत्प्रीतरौ मुदा । प्रपूज्य स्वर्गजंभैत्या वस्त्राभरणादायभिः ॥५२॥
धन्यौ पूज्यौ परौ मान्यौ स्तुत्यौ सौभाग्यपारगौ । युवां गुरु च लोकेऽस्मिन शशंसेत्यादि कल्पराट् ॥५३॥

है कि जिस अलौकिक ऐश्वर्यको आपने प्राप्त किया है जिसके सामने सारी संसारकी विभूतियां तुच्छ हैं कृपाकर इस परमोत्तम ऐश्वर्यको हमें भी प्रदान कीजिये ॥४६॥ इस प्रकार तीन जगतके नाथ भगवान मल्लिनाथकी स्तुतिकर परमानन्दसे गद्गद् हो इन्द्रोंने अपने आज्ञाकारी देव और देवांगनाओंके साथ उन्हें मस्तक झुकाकर भक्ति-पूर्वक नमस्कार किया ॥४७॥ कर्म आदि शत्रुओंके जीतनेवाले भगवान मल्लिनाथ मल्लिका पुष्पकी सुगंधिसे भी उत्कट सुगंधिवाले दिव्य शरीरके धारक थे इसलिये देवोंने उनका अन्वर्थ नाम मल्लिनाथ रक्खा था ॥४८॥ देवगण मेरुपर्वतपर जिस समय समस्त कार्य समाप्त कर चुके उस समय जो कुछ उनके जन्म कल्याणक सम्बन्धी कार्य बाकी बचा था उसे पूरा करनेके लिए तीन जगतके गुरु भगवान मल्लिनाथको लेकर पहिलेके ही समान बड़े ठाटबाटसे पुनः मिथिलापुरी लौट आए ॥४९॥ राजा कुम्भके आंगनमें एक महामनोहर विशाल सिंहासन विद्यमान था। समस्त अंगोंमें पहिने हुए भूषणोंसे भूषित भगवान मल्लिनाथको इन्द्रने बड़े आनन्दसे उसपर विराजमान किया ॥५०॥ इन्द्राणी भगवानके गर्भ गृहमें गई और माताको जगाया तथा बंधु बांधवोंके साथ राजा कुम्भको भी मायामयी निद्रा दूर की। जहां-पर भगवान मल्लिनाथको विराजमान किया गया था वहांपर वे आए एवं आनन्दसे गद्गद् हो उदयको प्राप्त तेजपुंजके समान अपने पुत्रको देखा ॥५१॥ मेरुपर्वत पर जो भी अभिषेकके समय कार्य किया गया था वह सब भगवानके माता पितासे इन्द्रने आनन्दपूर्वक निवेदन किया। उत्तमोत्तम वस्त्र आभूषण और माला आदिसे समस्त देवोंके साथ भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की तथा "आप समस्त लोकमें धन्य हैं पूज्य हैं उत्कृष्ट हैं मान्य हैं, स्तुति करने योग्य हैं, सौभाग्यके पारको प्राप्त हैं। अर्थात् आपसे बढ़कर कोई भाग्यवान नहीं। विशेष क्या ? जब आप स्वयं तीर्थंकर भगवान के माता पिता हैं तब समस्त लोकके आप माता-पिता हैं। इस प्रकर मनोहर शब्दों

इन्द्रादेशेन पौरेश्च बंधुभिः सह तिस्पता । महापूजाभिषेकाद्यैर्जिनागारे महोत्सवं ॥५४॥
कृत्वावकार नानाविभूत्या तोरणकेतुभिः । गीतनर्तनवाद्याद्यैः पुर्यां जातं महोत्सवं ॥५४॥
तदा नाना विधैर्दानैः पूरयामास भूपतिः । आशां च निज बंधूनां दीनानाथादिवंदिनां ॥५६॥
प्रमोदनिर्भरं दृष्ट्वा समस्तं नगरीजनं । व्यक्तीकुर्वन् प्रमोदंस्वं पित्रादीन्पति देवराट् ॥५७॥
आनंदनाटकं रम्यं ननाटातिमनोहरं । स्वदेवीभिः सहोत्कृष्टं जगदाश्चर्यकृत्तदा ॥५८॥
अणुस्थलादिनानार्वषैः सन्निकटदूरगैः । वीणावंशमृदंगादिवाद्यैः संगीतनर्तनैः ॥५९॥
ततोऽस्य सवयोरूपनानावेषविधायिनः । बहून् सुरकुमारांश्च धात्रीदेवीर्जिनेशिनः ॥६०॥
निरूप्य परिचर्यायै शुश्रूषाक्रीड़नाय च । उपार्ज्यं बहुधा पुण्यं दिवं जग्मुर्युनायका ॥६१॥

में भक्तिपूर्वक इन्द्रने उनकी स्तुति की ॥५२-५३॥ पश्चात् इन्द्रके कहे अनुसार भगवान मल्लिनाथके पिता राजा कुम्भने पुरवासी अपने बन्धु-बांधवोंके साथ भगवान जिनेन्द्रके मन्दिरमें महापूजा और अभिषेक आदिका महान् उत्सव किया ॥५४॥ महोत्सवके बाद अनेक प्रकारकी बन्दन वारे ध्वजायें एवं गीत नृत्य और बाजे आदि से मिथिलामें भी बड़ा उत्सव मनाया गया ॥५५॥

भगवानके पिता राजा कुंभने अनेक प्रकारके दान देकर अपने बंधुओंकी और दीन अनाथ आदि बन्दियोंकी भी इच्छा अच्छी तरह पूरण कर दी थी ॥५६॥ जिस समय समस्त नगर निवासी जन आनन्दमें मग्न थे उस समय भगवानके माता पिता आदिके साथ विशिष्ट सहानुभूति प्रदर्शित करनेके लिए इन्द्रने अपनी देवियों-के साथ अत्यन्त आनन्दमयी नृत्य किया जो कि सुहावना लगनेवाला अत्यन्त मनो-हर था। नृत्य करते समय कभी छोटा आकार तो कभी बड़ा आकार मालूम पड़ते थे। कभी अत्यन्त निकटमें जान पड़ता था और कभी अत्यन्त दूर जान पड़ता था। वीणा बांसुरी मृदंग आदि अनेक प्रकारके बाजे बजते थे एवं अनेक प्रकारके गाने और अनेक प्रकारसे शरीरका हिलाना डुलाना होता था इसलिये इस विशिष्ट बातोंसे वह नृत्य समस्त जगतको आश्चर्य करनेवाला महामनोहर जान पड़ता था ॥५७-५९॥ जब नृत्यका कार्य समाप्त हो चुका उस समय धात्रीके वेषवाली देवियोंको और भगवान जिनेन्द्रका ही अवस्थावाले उनके ही समानरूपके धारक और अनेक प्रकार-के वेषोंके धारण करने वाले बहुतसे देव कुमारोंको उनकी सेवा शुश्रूषा और साथ-साथ खेलनेके लिये नियुक्त कर दिया। इसलिये वे बराबर उनकी सेवा शुश्रूषा करने लगे और साथ-साथ खेलने लगे। इस प्रकार भगवान जिनेन्द्रके प्रति अनेक प्रकारकी भक्ति प्रदर्शितकर और उससे जायमान अनेक प्रकारका पुण्य उपार्जन कर समस्त देव

हस्तस्यमकटैदीनां रूपमादाय ते सुराः । क्रीडयंतीक्वचि द्देवा क्वचिद् व्यश्च सादरं ॥६२॥
मंडयंति जिनं काश्चिन्नानामंडनवस्तुभिः । स्नपयन्त्यपरा देव्यः काश्चित्संभूषयन्ति च ॥६३॥
मुखऽमीस्मितमातन्वन् प्रसर्पन्मणिभूमिषु । पित्रोर्मुदं ततानाद्यवयःक्रीड़ास्मितादिभिः ॥६४॥
तस्यासीच्छैशवं दिव्यं चन्द्रवच्च कलोज्वलं । बंधुदेवादिनेत्राणां परानंदोत्सवप्रदं ॥६५॥
दिव्ये मुखाम्बुजेऽस्यासीत्क्रमान्मन्मनभारती । स्खलन् पदेपदे न्यासं संचरेन्मणिभूतले ॥६६॥
तद्योग्यामृत पानान्नैर्वपुषेऽस्य क्रमाद्वपुः । सार्धं चावयवै रम्यैः प्रज्ञाज्ञानगुणादिभिः ॥६७॥
कौमारत्वं ततः प्राप्य स्वयं परिणतिं ययुः । ज्ञानविज्ञानविद्या गुणास्त्रिज्ञानचक्षुषः ॥६८॥

स्वर्गको वा अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥६०-६१॥ जिन देव कुमारोंको भगवान जिनेन्द्रकी सेवा शुश्रूषा और उनके साथ खेलनेके लिये नियुक्त किया गया था वे देव कभी हाथीका रूप बनाकर तो कभी घोड़ाका रूप बनाकर तो कभी बन्दर आदिका रूप बनाकर भगवान जिनेन्द्रके साथ क्रीड़ा करते थे तथा उनकी सेवाके लिये जो देवियां नियुक्त थीं वे भी बड़ी भक्तिसे उनका आदर सत्कार करती थीं। उनमें कोई-कोई देवियां तो भगवानको अनेक प्रकार मंडन वस्तुओंसे मंडित करती थीं; बहुत-सी सुगंधित जलसे उन्हें स्नान कराती थीं; और बहुतसी अनेक प्रकारके भूषण उन्हें पहिनाती थीं ॥६२-६३॥ वे भगवान मल्लिनाथ मंदमंद हास्य हँसते अर्थात् मुलकते थे। मणिमयी भूमिपर रिंगते थे इसलिये बाल्य अवस्थाकी अनेक प्रकारकी क्रीड़ा और मुलकन आदिसे वे माता पिताको परमानन्द प्रदान करते थे ॥६४॥ जिस प्रकार चन्द्रमा नाना प्रकारकी कलाओंसे उज्ज्वल रहता है और देखनेवालोंके नेत्रोंको आनन्द और उत्सव प्रदान करता है उसी प्रकार उन भगवान मल्लिनाथका भी शैशव काल दिव्य था चंद्रमाके समान अनेक प्रकारके कला-कौशलोंसे देदीप्यमान था एवं बंधु-बांधव और देव आदिके नेत्रोंको अत्यन्त आनन्द और उत्सवका प्रदान करनेवाला था ॥६५॥ उन भगवानके मुखकमलसे मन्मन् स्वरूप अस्पष्ट भाषा निकलती थी। एवं मणिमयी भूमिपर खेलते हुए वे पद-पद पर गिरते पड़ते थे ॥६६॥

अपने योग्य महामनोज्ञ अन्न पान आदिके खानेसे उनका शरीर क्रमसे दिनों दिन बढ़ता जाता था। एवं जिस प्रकार शरीर बढ़ता चला जाता था उसी प्रकार उनके महामनोहर अवयव भी फैलते चले जाते थे एवं निरन्तर बुद्धि [चतुरता] ज्ञान और गुण आदिकी भी वृद्धि होती चली जाती थी ॥६७॥ मति श्रुति और अवधिरूप तीन ज्ञानके धारक भगवान जिनेंद्रकी बाल्य अवस्थाके बीत जानेपर जिस समय कुमार अवस्था प्रकट हुई थी उस समय ज्ञान विज्ञान और बुद्धि आदि गुण आपसे

तलोऽसौ परमानंदं पित्रादीनां प्रवर्धयन् । विमलैः स्वगुणैः प्राप क्रमात्सद्यौवनं शुभं ॥६९॥
क्वचिद्वीणादिवाद्यौघैर्नर्तकीनर्तनैः क्वचित् । क्वचित्काव्यादिगोष्ठीभिर्नानारूपादिचारिभिः ॥७०॥
क्वचिच्च चेटकैर्दिव्यैः सौधर्मेंद्रो व्यधात्तरां । स्वशर्मणे विभोः शर्म विनोदादिकुतूहलैः ॥७१॥
स्रक्क्षौमभूषणैर्दिव्यैर्वयोयोग्यसुरार्पितैः । भूषितांगोऽतिकांत्या स जित्वा चे (त्वैनं) न्दुं व्यभात्तरां॥७२
अष्टोत्तरसहस्रण लक्षणानामलंकृतं । दिव्यमौदारिकं देहं निरौपम्यं विभोर्बभौ ॥७३॥
मुकुटालंकृतं तस्य शिरोनीलशिरोरुहं । दिव्यमालाधरं कांतं मेरोः शृङ्गमिवाबभौ ॥७४॥
भाति भालं सुविस्तीर्णं चास्य कांत्याप्तदिङ्मुखं । ललितं भ्रूलते दीर्घे भ्रेतुर्नयंनोत्पले ॥७५॥
मणिकुंडलतेजोभः कर्णावस्य रराजतुः (?) । जिनचंद्रौ कपौलौ च तुंगनासा मनोहरा ॥७६॥

आप वृद्धिको प्राप्त होने लगे थे ॥६८॥ कुमार अवस्थामें पिता माताको परमानन्द प्रदान करनेवाले भगवान जिनेंद्रने अनेक निर्मल गुणोंके साथ धीरे धीरे क्रमसे अत्यन्त शुभ यौवन अवस्थाको भी प्राप्त कर लिया था ॥६९॥ उस समय सौधर्म स्वर्गका इन्द्र अपनेको कल्याण प्राप्तिकी अभिलाषासे कभी कभी वीन आदि बाजोंसे, कभी कभी नृत्य करनेवाली देवांगनाओंके नृत्योंसे, कभी कभी काव्य आदिकी गोष्ठियोंसे, कभी कभी अनेक रूप हाव भाव आदिको धारण करनेवाली चेटक विद्याओंसे एवं कभी कभी अन्य प्रकारके विनोद और कुतूहलोंसे भगवान जिनेंद्रको अत्यन्त प्रसन्न रखता था ॥७०-७१॥ देवगण अवस्था और समयके योग्य माला वस्त्र और भूषण भगवानको पहिनाया करते थे इसलिये अवस्थाके योग्य देवों द्वारा पहिनाए गए माला वस्त्र और भूषणोंसे अलंकृत शरीरके धारक भगवान जिनेंद्र अपनी उग्र कांतिसे चंद्रमाको जीतनेवाले थे इसलिये उस समय वे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे ॥७२॥ भगवान जिनेंद्रका शरीर एक हजार आठ लक्षणोंसे शोभायमान था, परम औदारिक था एवं उपमारहित था इसलिये वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥७३॥ नीले नीले घुंघरूले बालोंसे शोभायमान भगवान जिनेंद्रका मस्तक जिस समय मुकुटसे अलंकृत होता था उस समय वह देव सम्बन्धी मालाको धारण करनेवाला महामनोहर मेरुपर्वतका शृंग सरीखा जान पड़ता था ॥७४॥ अपनी अनुपम कांतिसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाला भगवान जिनेंद्रका अत्यन्त फैला हुआ ललाट अतिशय शोभायमान जान पड़ता था तथा उनकी महामनोहर भृकुटियें और विशाल दोनों नेत्र अत्यन्त शोभित जान पड़ते थे ॥७५॥ भगवान जिनेंद्रके दोनों कान मणिमयी कुण्डलोंकी किरणोंसे अत्यन्त शोभायमान थे । अपनी अनुपम दीप्तिसे चन्द्रमाको जीतनेवाले उनके दोनों कपोल

दिव्यभाषामृतं यन्मुखेंदोः स्रवति प्रत्यहं । मृत्यादिविषहृत्तस्य का परा वर्णना प्रभोः ॥७७॥
मणिहारेण वक्षोऽस्य रुरुचे नाभिमंडलं । केयूरभूषितौ बाहू सोऽधात्कल्पांघ्रिपोपमौ ॥७८॥
समेखलं कटिभागं सांशुकं स दधे शुभं । कदलीगर्भसादृश्ये जंघे चातीवकोमले ॥७९॥
त्रिजगत्स्वामिभिर्नित्यं सेवितो यो क्रमाम्बुजो । नखचंद्रांकितो भक्तस्तौको वर्णयितुं प्रभुः ॥८०॥
इत्यादिवर्णनोपेतं वज्रास्थिघननिर्मितं । आदिसंहननोन्नाम्नादिसंस्थानभूषितं ॥८१॥
पंचविंशतिचापोच्चतप्तचामीकरच्छवि । निसर्गसुंदरं दिव्यं पुण्याणुचयसंभवं ॥८२॥
औदारिकशरीरं च निरोपम्यं विभोस्तराां । भ्राजते दिव्यभूषास्रग्वस्त्रकांत्यादियौवनैः ॥८३॥

भी महामनोज्ञ थे एवं उनकी ऊपरकी उठी हुई ऊँची नासिका महामनोहर थी ॥७६॥ जिस प्रकार चन्द्रमासे अमृत झरता है और वह विषका हरनेवाला होता है ऐसी प्रख्याति है उसी प्रकार भगवान जिनेंद्रके मुख चंद्रमासे प्रतिदिन दिव्य भाषारूपी अमृत झरता रहता था जो कि मृत्युरूपी महा हलाहल विषका हरण करनेवाला था इसलिये अनुपम गुणोंके धारक उस भगवान जिनेंद्रका जितना भी वर्णन किया जाय थोड़ा है ॥७७॥ भगवान अपने वक्षःस्थलमें मणिमयी हार पहिनते थे और वह नाभि मंडल पर्यन्त लटकता रहता था। इसलिये मणिमयी हारसे उनका वक्षः-स्थल और नाभि दोनों ही अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे। उनकी दोनों भुजायें केयूरों भुजबंधोंसे शोभायमान रहती थीं और वे कल्पवृक्षकी लता सरीखी जान पड़ती थीं ॥७८॥ भगवान जिनेंद्रका महामनोहर कटिभाग करधनी और उत्तम वस्त्रसे सदा शोभायमान रहता था। उनकी दोनों जंघायें केलेके थंभों के समान अत्यन्त कोमल थीं ॥७९॥ भगवान जिनेंद्रके चरण कमलोंकी सेवा तीनों लोकके इन्द्र सदा किया करते थे एवं वे नखरूपी चन्द्रमाओंसे शोभायमान रहते थे इसलिये उनके असली स्वरूपके वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ न था ॥८०॥ इस प्रकार ऊपर कहे गए अनेक प्रकारके वर्णनोंसे युक्त अत्यन्त मजबूत वज्रमयी हड्डियोंसे बना हुआ, आदि संहनन-वज्रवृषभ नाराच संहननसे युक्त, आदि संस्थान समचतुरस्र संस्थानसे शोभायमान, पच्चीस धनुष प्रमाण ऊँचा, तपे हुए सुवर्णके समान कांतिका धारक स्वभावसे ही सुन्दर, दिव्य संसारमें जितनी भी पुण्यस्वरूप परमाणुएं थीं उनके समूह स्वरूप और अनुपम भगवान जिनेन्द्रका औदारिक शरीर, दिव्य आभूषण महा वस्त्र कांति और यौवन आदिकी परिपूर्ण शोभासे अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था

१. समचतुरस्र संस्थान १ न्यग्रोध परिमंडल संस्थान २ स्वाति संस्थान ३ कुब्जक संस्थान ४ वामन संस्थान ५ हुंडक संस्थान ६ ये छह संस्थान होते हैं।

वर्षाणां पंचपंचाशत्सहस्राणि जगत्पतेः । आयुर्बाधातिगं स्वान्यहितकृत् खंडवर्जितं ॥८४॥
सवत्सरशतं कालं परान् भोगान् बुभोग सः । मर्त्यदेवोपनीतान् कुमारयोग्यान् शुभोदयान् ॥८५॥
अन्यदा तनुजो देवविद्येशनृपसेवितः । इत्थमभ्यर्थितो भक्त्या राज्ञा संतानवृद्धये ॥८६॥
पृथ्वीपुराधिपस्यास्य भूपालाख्यस्य सत्सुता । ख्याता जगद्रतिर्यात्र सा पुत्र ! परिणीयतां ॥८७॥
इति पित्राग्रहेणासौ विभूत्या परया समं । ष्ठिवेतो नृपदेवार्द्यैर्विवाहार्थ व्रजन् तथि ॥८८॥
विलोक्य महतीं शोभां नगर्याः केतुपंक्तिभिः । तोरणैर्नृत्यवाद्याद्यैर्महोत्सवशतादिभिः ॥८९॥
स्मृत्वाऽपराजितं रम्यविमानं पूर्वजन्मनि । तत्क्षणं प्राप्य संवेगं सावधिरिति चिंतयेत् ॥९०॥

॥८१-८३॥ भगवान मल्लिनाथकी आयु पचपन हजार वर्षकी थी। वह समस्त प्रकारकी बाधाओं रहित थी। अपना पराया हित करनेवाली थी और अखंडित थी ॥८४॥ भगवान जिनेन्द्रने सौ वर्ष पर्यंत उत्तमोत्तम भोग भोगे जो कि मनुष्य लोकमें देवोंके द्वारा उपनीत थे कुमार भगवान जिनेन्द्रके योग्य थे और उनका उदय अशुभ न होकर शुभ था ॥८५॥

कदाचित् अपनी युवावस्थामें अनेक देव विद्याधर और राजाओंसे सेवित, भगवान मल्लिनाथ सानंद विराजमान थे कि उनके पिता पुत्र स्नेहसे प्रेरित हो उनके पास आए एवं "आगे भी वंशकी वृद्धि हो" इस अभिलाषासे वे भक्तिपूर्वक उनसे यह प्रार्थना करने लगे—प्रिय पुत्र ! इसी पृथिवीमंडल पर एक पृथ्वीपुर नामका नगर है। उसका पालन करनेवाला राजा भूपाल है उसके एक "जगद्रति" नामकी कन्या है जो कि अपने अनुपम रूप और गुणोंसे पृथिवीपर प्रसिद्ध है। मेरी यह विशिष्ट इच्छा है वह तुम्हारे सर्वथा योग्य है तुम उसके साथ विवाह करना स्वीकार करो ॥८६-८७॥ समस्त प्रकारके चातुर्योंके जानकार भगवान मल्लिनाथने अपने पिताके आग्रहसे जगद्रतिके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया एवं वे अनेक नृप और देवोंसे वेष्टित हो बड़ी विभूतिके साथ विवाहके लिये चल दिये। मिथिलापुरी उस समय रंग बिरंगी ध्वजाओंकी पंक्तियोंसे भाँति भाँतिके नृत्य और बाजे आदिसे जायमान सैकड़ों प्रकारके महोत्सवोंसे व्याप्त थी। राजद्वारसे निकलकर भगवान पृथ्वीपुरकी ओर जाने लगे। अपने पहिले जन्ममें उन्होंने अपराजित विमानकी विभूतिका उपभोग किया था इसलिये मिथिलापुरीकी अद्वितीय शोभा देखकर उन्हें अपराजित विमानका स्मरण उठ आया। उन्हें उसी समय संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हो गया एवं अवधिज्ञानके धारक वे भगवान मल्लिनाथ अपने चित्तमें इस प्रकारका विचार करने लगे ॥८८-९०॥

तत्रत्यैर्यद्यहो भोगैः परैस्तृप्तिकरैर्वरैः । नागातृप्तिमनाग्योऽगी निरोपम्यैः सुखोद्भवैः ॥९१॥
स किं यास्यसि दुःप्राप्यैरत्यर्थं दुःखसंभवैः । वर्गविडंबनोत्पन्नैस्तुच्छैर्भोगैर्व्यथार्णवैः ॥९२॥
तृप्तिमेति क्वचिद्धैवादग्निरिंधनराशिभिः । सरित्पूरै समुद्रो वा लोभी च धनसंग्रहात् ॥९३॥
कामी न जातु संभुक्तैरनंतभवगोचरैः । दुर्लभैर्विषयासक्तो भोगैरत्यंतदुस्त्यजैः ॥९४॥
इयंतं कालमेवायं भोगासक्तमना जनः । भुंजानो विविधं दुःखं भ्रमितो दुर्भवाटवीं ॥९५॥
भोगशा वर्तते मावच्चिते सर्वाशुभाकरा । तावत्कुतः सतां मोक्षस्तं विना च कुतः सुखं ॥९६॥
ज्ञात्वेति प्रथमं त्याज्या सर्वे भोगा इवोरगाः । हलाहलनिभा दूरं शत्रवो वा मुमुक्षुभिः ॥९७॥

अपराजित विमानके अन्दर जिन भोगोंका भोग किया गया वे भोग महा-मनोज्ञ थे तृप्तिको करनेवाले उत्कृष्ट थे, अनुपम थे और सुखके कारण थे। जब यह जीव उन विपुल भोगोंसे भी तृप्त नहीं हुआ तब क्या इस लोकके ऐसे भोगोंसे तृप्त हो सकता है ? जो भोग बड़े दुःखसे प्राप्त होते हैं, अनेक प्रकारके दुखोंको देनेवाले हैं, शरीरको नष्ट भ्रष्ट करनेवाले हैं, अत्यन्त तुच्छ हैं और आधि-व्याधि आदि अनेक व्यथाओंके समुद्र हैं ॥९१-९२॥[1] ईंधनके विपुल ढेरसे अग्निको तृप्ति नहीं हो सकती परन्तु कदाचित् दैवयोगसे उस ईंधनसे अग्निको तृप्ति हो जाय। अनेक नदियोंके प्रवाहोंसे समुद्रको तृप्ति नहीं होती परन्तु कदाचित् दैवयोगसे उसकी भी तृप्ति हो जाय। अनेक प्रकारके धनके संग्रहसे लोभी पुरुषकी तृप्ति नहीं हो सकती परन्तु दैवयोगसे कदाचित् उसकी भी तृप्ति हो जाय। परन्तु जो पुरुष विषयोंमें आसक्त कामी है उसको भले प्रकार भोगे जानेवाले अनंते भवोंसे प्राप्त होनेवाले जिनका मिलना बड़ी कठिनतासे है एवं जिनको छोड़ते समय भी महाकष्ट जान पड़ता है ऐसे भोगोंसे कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती ॥९३-९४॥ मनमें अत्यन्त भोगों-की लालसा रखनेके कारण भी यह जीव इतने विपुल काल पर्यन्त अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगता-भोगता इस दुष्ट संसाररूपी महाभयानक वनीके अन्दर चक्कर लगाता फिरता है एवं भोगोंमें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण इसे वास्तविक मार्ग-का ज्ञान नहीं होता ॥९५॥ यह भोगोंकी तीव्र अभिलाषा संसारमें अनेक प्रकारके अशुभोंको उत्पन्न करनेवाली है जब तक यहीं चित्तके अन्दर विद्यमान है तब तक कभी भी जीवोंको मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती। और जब तक मोक्षकी प्राप्ति नहीं तब तक वास्तविक सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिये यह भोगोंकी अभिलाषा ही वास्तविक सुखकी बाधक है ॥९६॥ इसलिये जो पुरुष भोगोंके स्व-

१. बहुनस्तृणकाष्ठसंचयैरपि तृप्येदुद्वहिर्नदीशतैः । न तु कामसुखैः पुमानहो वलवत्ता खलु कापि कर्मणः । —चन्द्रप्रभ काव्य ।

मुमुक्षुणामतश्चेदं महालज्जानिबन्धनं । विवाहादिकरं कर्म शिवघ्नं भवकारणं ॥९८॥
अलोकमंगलोपेतः कृत्स्नदुःखादिसागरः । चिताद्विशतकृन्नृणां विवाहः शर्मणे कुतः ॥९९॥
विना शृंखलया नारी बाह्यांतर्बंधकारिणी । दुःफला भववल्लो वा सतां नरकपद्धतिः ॥१००॥
शत्रुतुल्याः सुता विश्वधनधान्यादिभक्षकाः । इन्द्रजालनिभा लक्ष्मीः कुटुम्बं पाशसन्निभं ॥१०१॥

रूपके वास्तविक रूपसे जानकार हैं और मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे भोगोंका स्वरूप अच्छी तरह जानकर सबसे पहिले इन भोगोंको दूरसे ही छोड़ें। क्योंकि ये भोग साक्षात् सर्पके समान हैं अर्थात् सर्प जिसे डस लेता है फिर वह जल्दी उछंगता नहीं उसी प्रकार भोगरूपी सर्पोंका डसा हुआ भी जल्दी नहीं उछंगता तथा ये भोग हलाहल विषके समान हैं अर्थात् जिस प्रकार हलाहल विषको पोनेवाला बचता नहीं उसी प्रकार भोगोंका काटा हुआ भी नहीं बचता। इसीलिये ये विषय शत्रु स्वरूप हैं क्योंकि इनसे किसी प्रकारकी भलाईकी आशा नहीं ॥९७॥ इसीलिये जो महानुभाव मुमुक्षु हैं संसारके समस्त प्रकारके बंधनोंको तोड़कर केवल मोक्ष ही चाहने वाले हैं उन्हें विवाह आदिका कार्य सर्वथा छोड़ देना चाहिये क्योंकि यह विवाह आदिका कार्य अत्यन्त लज्जाका कारण है मोक्ष सुखका घात करनेवाला है और संसारमें घुमाने वाला है ॥९८॥ और भी यह बात है कि यह विवाह मिथ्या मंगलोंसे युक्त है अर्थात् विवाहमें जितने भी मंगलाचार किये जाते हैं वे सब मिथ्या हैं। समस्त दुख आदि विपत्तियोंका समुद्र है एवं विवाह होते ही सैकड़ों प्रकारकी चिंता पीछे लग जाती है इसलिये यह सैकड़ों प्रकारकी चिंताओं का कारण है इसलिये यह विवाह कभी भी कल्याणका करने वाला नहीं हो सकता—जो महानुभाव इसे कल्याण का करनेवाला समझते हैं वह केवल भ्रम ही है ॥९९॥ मनुष्य आदिका शरीर सांकलसे ही जिकड़कर बांधा जाता है परन्तु यह स्त्री सांकलके बिना ही भीतर बाहर दोनों प्रकारसे बांधनेवाली है अर्थात् अन्तरंगमें मोहकी तीव्रतासे मनुष्य स्त्रीको छोड़कर नहीं जा सकता और बाहिरमें जब छोड़कर चलता है तब वह उसके पीछे पड़ती है इसलिये भी छोड़कर नहीं जा सकता तथा यह स्त्री खोटे फलोंको धारण करने वाली संसाररूपी बेल है अर्थात् बेलपर अच्छे बुरे सब प्रकारके फल आते हैं परन्तु स्त्रीरूपी संसार बेलसे सदा दुष्ट फलोंकी ही प्राप्ति होती है। विशेष क्या ? यह स्त्री साक्षात् नरकका मार्ग है ॥१००॥ पुत्र जिनको कि संसारमें उत्कृष्ट पदार्थ माना जाता है वे महा शत्रु हैं एवं संसारके समस्त धन धान्योंको भक्षण करने वाले हैं। लक्ष्मी जो कि संसारमें बहुत बड़ी चीज मानी जाती हैं इंद्रजालके समान

जीवितं चपलं पुंसां प्रादेर्भजलोपमं । चाक्षार्थाः स्वजना विश्वे कामार्थाः क्षणभंगुराः ॥१०२
अतो वृत्तं समादाय बालत्वेऽपि विचक्षणैः । सम्यगेतो द्रुतं मोक्षो मृत्युमाशंक्य चाप्यते ॥१०३॥
आजन्मतो यमः स्वांतं जीवान्नयति प्रत्यहं । दिनार्द्धैर्यद्यहो कात्र धर्मे कालविलंबना ॥१०४॥
अक्षापुगृहराज्यभोगपरिवारश्च यादयश्चंचलाः, शंपाभाश्च न विद्यतेऽत्र शरणं मृत्योः सुधर्मं विना ।
संसारोऽति भयंकरोऽतिचपलो दुःखार्णवोशर्मभूदेकोऽज्ञप्यघपातकः प्रतिदिनं दुःखी भ्रमे संसृति॥१०५॥
आत्मान्योऽगकुटुम्ब कर्म सकलोऽज्ञानी प्रकृत्या महान्, कायोऽयं यमधामदुःखजलधिः सर्वाशुचीनां निधिः।
मिथ्यात्वादिभवोऽप्यनंतभवकृत कर्मास्रवो दुःखदः। सर्वाघादिनिरोधनोऽसुखहरो मोक्षप्रदः संवरः॥१०६

निस्सार है क्योंकि जिस प्रकार इन्द्रजालका ठाट बाट देखते-देखते विलीन हो जाता है उसी प्रकार लक्ष्मीका वैभव भी देखते देखते विलीन हो जाता है तथा यह कुटुम्ब साक्षात् पाशके समान है ॥१०१॥ प्रातःकालमें जिस प्रकार दर्भकी अनीपर लगी हुई जलकी बूंद अत्यन्त चंचल क्षण विनाशक होती है उसी प्रकार मनुष्योंका जीवन भी अत्यन्त चंचल और विनाशक तथा इन्द्रियोंके विषय बन्धु बांधव आदि स्वजन एवं संसारके समस्त काम भोग क्षणभंगुर हैं ॥१०२॥ इसलिये जो पुरुष विचक्षण हैं वास्तविक रूपसे संसारके स्वरूपके जानकार हैं उन्हें बाल अवस्थामें ही सम्यक्चारित्रको ग्रहण कर लेना चाहिये एवं प्रतिक्षण अपनी मौतकी आशंका कर उन्हें बहुत जल्दी मोक्षकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये ॥१०३॥ जबसे जीव उत्पन्न होता है तभीसे यह यमराज दिन पक्ष मास आदिके हिसाबसे जीवको मृत्युके मुखमें प्रविष्ट करानेका प्रयत्न करता है। इसलिये धर्मके अन्दर इस प्रकार कालका विलम्ब नहीं करना चाहिये कि हम आज धर्म सेवन न करेंगे तो कल कर लेंगे वा यह समय विषय भोग भोगनेका है वृद्धावस्थामें जाकर धर्म कर लेंगे क्योंकि मृत्युका कोई निश्चय नहीं ॥१०४॥ संसारके अन्दर इन्द्रियाँ आयु घर राज्य भोगोपभोग परिवार और लक्ष्मी आदि जितने भी पदार्थ हैं वे सब जिस प्रकार बिजली चमककर शीघ्र नष्ट हो जाने वाली है उसी प्रकार नष्ट हो जानेवाले हैं। यदि संसारमें शरण है तो एक समीचीन धर्म ही है। धर्मके सिवाय मृत्युके मुखसे बचानेवाला कोई भी शरण नहीं। यह संसार अत्यन्त भयानक है अतिशय चंचल है। अनेक प्रकारके दुःखोंका समुद्र है एवं अनेक प्रकारके अकल्याणोंका करनेवाला है। ऐसे महाभयानक संसारमें यह बिचारा दीन जीव अकेला ही अपने पाप कर्मों के फलसे महादुःखित हो भ्रमण करता फिरता है। इसे रंचमात्र भी शान्ति नहीं मिलती ॥१०५॥ आत्मा पदार्थ ज्ञानी है। आत्मासे भिन्न शरीर कुटुम्ब और समस्त कर्म स्वभावसे ही महा

दुःकर्मक्षयकारिणी वरतपोजा निर्जरा मुक्तिदा, लोको दुःखसुखाकरोऽतिविषयोऽनादिर्विधा शाश्वतः ।
मानुष्यं सकलेंद्रियं च सुकुलं बोध्यादिकं दुर्लभं, धर्मो विश्वसुखाकरो दशविधो दुःखाखिलाघातकः ।।१०७

इति कुम (मा) रजिनेशो भावना द्वादशैव विरजसि हृदयेऽनुचिंत्य संवेगसर्वं ।
शिवसुचरणहेतुं प्राप यः काललब्ध्या भवतपुषि सुखादौ सोऽस्तु मे तद्गुणाप्त्यै ।।१०८।।

इति श्रीमल्लिनाथचरित्रे भट्टारक श्रीसकलकीर्तिविरचिते मल्लिनाथवैराग्योत्पत्ति-
वर्णनो नाम पंचमः परिच्छेदः ।।५।।

अज्ञानी हैं । यह शरीर जिसका कि लोगोंको घमण्ड है वह यमराजके रहनेका स्थान है । अनेक प्रकारके दुःखोंका समुद्र है एवं रक्त मांस आदि जितने भी अपवित्र पदार्थ हैं उन सबका खजाना है । तथा कर्मोंका आस्रव मिथ्यात्व अविरति आदि कारणोंसे होता है । अनादिकाल पर्यन्त संसारमें घुमाने वाला है एवं नाना प्रकारके दुःखोंका देनेवाला है तथा संवर समस्त पाप कर्मोंका रोकने वाला है । दुःखका हरण करनेवाला है और मोक्षको प्रदान करता है ।।१०६।। संवरके बाद निर्जरा होती है वह निर्जरा समस्त अशुभ कर्मोंकी क्षय करने वाली है उत्कृष्ट तपसे जायमान है और मोक्षको प्रदान करनेवाली है । तथा यह लोक दुःख और सुख का स्थान है, अत्यन्त विषम है, अनादि है एवं ऊर्ध्वलोक मध्यलोक पाताललोकके भेदसे तीन प्रकारका सदा रहने वाला है । संसारमें मनुष्य भवका पाना, समस्त इन्द्रियोंका पूरा उत्तम होना कुलका मिलना एवं सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप बोधिका होना महादुर्लभ है—बड़ी कठिनतासे इनकी प्राप्ति होती है । धर्म समस्त संसारके सुखोंका स्थान है । उत्तम क्षमा १ उत्तम मार्दव २ उत्तम आर्जव ३ उत्तम शौच ४ उत्तम सत्य ५ उत्तम संयम ६ उत्तम तप ७ उत्तम त्याग ८ उत्तम आकिंचन्य ९ और उत्तम ब्रह्मचर्य १० के भेदसे दश प्रकारका है एवं संसारके अन्दर जितने भी दुःख हैं उन सबका सर्वथा नाश करनेवाला है ।।१०७।। इस प्रकार अनित्य १ अशरणत्व २ संसार ३ एकत्व ४ अन्यत्व ५ अशुचित्व ६ आस्रव ७ संवर ८ निर्जरा ९ लोक १० बोधिदुर्लभ ११ और धर्म १२ इन बारह भावनाओंका अपने निर्मल चित्तमें विचार करनेसे उन कुमार भगवान मल्लिनाथको संसार शरीर और विषय सुख आदिसे मोक्ष प्राप्तिका प्रधान कारण संवेग हो गया । उस समय सिवाय आत्म स्वरूपके कोई भी उन्हें अपना न सूझने लगा ।।१०८।।

इस प्रकार भट्टारक सकल कीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिकामें भगवान मल्लिनाथको वैराग्य उत्पत्तिका वर्णन करने वाला पांचवां परिच्छेद समाप्त हुआ ।।५।।

षष्ठः परिच्छेदः

निर्दग्धं येन बाल्येऽपि विषयारण्यमंजसा । साधं दुष्कर्मवृक्षौघैस्तपोऽग्निनात्र तं स्तुवे ॥ १ ॥
अथ देवर्षयो दक्षा निसर्गब्रह्मचारिणः । एकावतारिणः पूज्याः द्विसप्तपूर्ववेदिनः ॥ २ ॥
लौकांतिकास्तदागत्य सारस्वतस्त्रयोऽष्टधा । मूर्ध्वा नत्वाऽतिभक्त्या तं स्तोतुं प्रारेभिरे जिनं ॥ ३ ॥
त्वं देव त्रिजगत्स्वामी त्वं त्रातासि भवार्णवात् । कर्ता त्वमेव लोकेऽस्मिन् धर्मतीर्थस्य तीर्थराट् ॥ ४ ॥
निःकारणो जगद्बन्धुः कृपानाथस्त्वमेव हि । त्वमेव मुक्तिकांताया भर्ता संभवसि स्वयं ॥ ५ ॥
नः संबोधयिताऽसि त्वं न बोध्योऽस्माभिरेव च । दीयते किं प्रकाशाय दीपो दिनकरस्य च ॥ ६ ॥

जिन भगवान मल्लिनाथने तपरूपी जाज्वल्यमान अग्निके द्वारा विषयरूपी विस्तीर्ण वन सथदुष्कर्मरूपी वृक्षोंकी श्रेणीके बाल अवस्थामें ही देखते देखते भस्म कर डाला । उन बाल ब्रह्मचारी जिनेन्द्रको मैं भक्ति भावसे प्रणाम करता हूँ ॥१॥ संसार तथा शरीर भोगोंसे विरक्त होकर जिस समय भगवान मल्लिनाथ बारह भावनाओं-का चिंतवन कर रहे थे उसी समय लौकांतिक देव जो कि अपने परम पवित्र भावोंसे देवोंमें ऋषि कहे जाते हैं, महा चतुर होते हैं, स्वभावसे ही ब्रह्मचारी होते हैं, एक भवावतारी होते हैं—अर्थात् मनुष्य भव धारणकर ही मोक्ष चले जाते हैं अतएव पूज्य होते हैं; चौदह पूर्वोंके धारक होते हैं एवं सारस्वत आदित्य आठ जिनके भेद हैं, शीघ्र ही भगवानके समीप आये तथा मस्तक झुकाकर नमस्कार किया एवं भक्तिसे गद्गद् हो वे भगवान जिनेन्द्रकी इस रूपसे स्तुति करने लगे—

हे देव ! तुम तीन जगतके स्वामी हो, संसाररूपी अगाध समुद्रमें डूबते हुये प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले आप ही हैं । हे तीर्थोंके राजा ! इस लोकमें इस समय धर्मतीर्थके प्रवर्तक आप ही हैं ॥२-४॥ हे प्रभो ! आप समस्त जगतके अकारण बंधु हैं, कृपानाथ हैं एवं आप ही स्वयं मुक्तिरूपी स्त्रीके स्वामी होनेवाले हैं ॥५॥ लोग ऐसा समझते हैं कि जिस समय भगवान तीर्थंकरको वैराग्य होता है उस समय लौकांतिक देव उन्हें आकर संबोधते और उनके वैराग्यको दृढ़ करते हैं परन्तु हे भगवान ! यह कहना कल्पनामात्र है क्योंकि जिस प्रकार अखण्ड दीप्तिका भण्डार सूर्य स्वयं प्रकाशमान है उसे प्रकाश करनेके लिये दीपककी आवश्यकता नहीं पड़ती उसी प्रकार हे नाथ ! उत्तम ज्ञानके धारक आप इन सबोंको सम्बोधने वाले हैं—हमें समीचीन मार्गके सुझाने वाले हैं हमारे द्वारा कभी भी आप सम्बोधे नहीं जा

त्वं स्वयंभूः स्वयंबुद्धो विश्वज्ञो ज्ञाननेत्रवान् । स्वान्ययोर्हितकृद्देवत्वयाऽत्रेमनुष्ठितं ॥ ७ ॥
यतो बाल्येऽपि तीर्थेश ! मोहारिं मदनादिभिः । सार्धं हत्वा विरागासिना ःारित्रे मतिः कृता ॥ ८ ॥
भुक्त्वा ये विविधान् भोगान् तृप्यंते त्यजंति न । तदाश्च (स्व) र्यमिदं चित्रं त्वयिनाथ शिवोद्यते ॥ ९ ॥
अतो नाथ ! त्वमेवात्र धन्यो बाल्येऽपि रागजित् । मुखग्रासागतत्यागान्नान्यस्त्वत्सदृशो भुवि ॥१०॥
त्वयोदितमहाज्ञानपोतमासाद्य धीधनाः । भवाब्धिमुत्तरिष्यंति स्वामिन्नत्र न संशयः ॥११॥
भवद्वाक्यामृतैः पूर्णं धर्मतीर्थं विदो महत् । आप्य प्रक्षालयिष्यंति दुष्कर्म मलसंचयं ॥१२॥

सकते अर्थात् हमें आपको सम्बोधन करने वाला बतलाना सूर्यको दीपक दिखाना है ॥६॥ हे भगवान ! आप स्वयं उत्पन्न होनेवाले हैं इसलिये स्वयंभू हैं । आपको सम्बोधन करनेवाला कोई अन्य नहीं—अपने सम्बोधन करनेवाले आप ही हैं इसलिये आप स्वयंबुद्ध हैं समस्त लोक अलोकको जाननेके कारण आप सर्वज्ञ हैं । ज्ञानरूपी नेत्रके धारक हैं । हे देव ! आपने जो विचार किया है वह अपना पराया हित करने-वाला है इसलिए वह सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि हे दयासागर भगवान ! बाल्य अवस्थामें ही आपने वैराग्यरूपी तीक्ष्ण खड्गके द्वारा अत्यन्त भयंकर कामदेव आदिके साथ मोहरूपी शत्रुको नष्टकर महा तीक्ष्ण सम्यक्चारित्रके धारण करनेका साहस किया है ॥७-८॥ अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर जो पुरुष तृप्ति होनेपर भी उनसे विरक्त नहीं होते यह आश्चर्य है अर्थात् तृप्ति होनेपर भोगोंका सर्वथा त्यागकर देना चाहिये किन्तु जो ऐसा नहीं करते वे बड़ा अचरजका काम करते हैं । परन्तु मोक्ष प्राप्तिके लिए सर्वथा उद्यत आपने बिना ही भोगे उनका सर्वथा त्यागकर दिया यह सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात है । इसलिये हे नाथ ! इस संसारमें सबसे धन्यवादके पात्र आप ही हैं । हे भगवान ! बाल्य अवस्था ही में आप रागके जीतने वाले हैं अर्थात् किसी भी पदार्थमें आपका राग नहीं—सबसे अधिक रागका कारण स्त्री है सो उसका बंधन भी आपने नष्ट कर दिया—विवाहसे ही विरक्त हो गये, इसलिए मुखमें पहुँचते हुए ग्रासके त्यागके कारण अर्थात् रागके तीव्र बन्धन विवाहसे सर्वथा मुँह मोड़ने और सम्यक्चारित्रमें प्रवृत्त होनेके कारण आप एक अद्वितीय व्यक्ति हैं आपके समान कोई भी नररत्न संसारके अन्दर नहीं ॥९-१०॥ हे प्रभो ! आपके अन्दर महाज्ञान केवलज्ञानका उदय होगा । उस केवलज्ञानरूपी जहाजका आश्रय कर अर्थात् उस केवलज्ञानकी कृपासे यथार्थ उपदेश पाकर ये विद्वान् भव्य प्राणी संसार-रूपी महागंभीर समुद्रको तर जावेंगे इसमें कोई संदेह नहीं है ॥११॥ गम्भीर जलसे भरा हुआ गंगा आदिका तीर्थ जिस प्रकार मैलका काटने वाला माना जाता है उसी

स्वं ज्ञानज्योत्स्नया देव ! मोहादिध्वांतमंजसा । हत्वा संलोकयिष्यंति भव्या मुक्तिपथं भुवि ॥१३॥
भवंतं पोतसादृश्यं सहायीकृत्य योगिनः । केचिद्यास्यंति निर्वाणं रत्नत्रयधनेश्वराः ॥१४॥
भवद्धर्मोपदेशेनोपार्ज्यान्यपरमं वृषं । भव्याः सर्वार्थ सिद्धिं च नाकं वा त्वत्समं श्रियं ॥१५॥
केचिद् ग्रैवेयकं दिव्यं केचिच्चक्रकथोचितां । लक्ष्मीं केचिन्महाभोगान् वे भोक्ष्यन्ति न चान्यथा ॥१६॥
अतो देव ! त्वमेवाशु मुक्त्या कालविलंबितं । गृहाण संयमं येन स्वान्ययोर्हितमद्भुतं ॥१७॥
इत्यभिष्टुत्य तीर्थेशं संप्राप्यं यद्गतां श्रियं । मुहुर्नत्वा प्रशस्योच्चैर्दिव्यवाक्येर्मनोहरैः ॥१८॥
कृत्वात्मीयं नियोगं ते दीक्षाकल्याणशंसिनः । उपार्ज्यं बहुधा पुण्यं ब्रह्मलोकं मुदा ययुः ॥१९॥

प्रकार तुम्हारी वचनरूपी अमृतसे परिपूर्ण विशाल धर्मरूपी तीर्थको पाकर भव्य जीवोंके दुष्कर्मरूपी मैलका समूह नियमसे धुलेगा ॥१२॥

हे देव ! तुम्हारे ज्ञानरूपी चांदनीकी ही कृपासे मोह आदि रूप विपुल अन्धकार को नष्ट कर ये भव्यजीव इस संसारमें मोक्षके मार्गको भले प्रकार देखेंगे ॥१३॥ जिस प्रकार रत्नोंके व्यापारी सेठ जहाजकी सहायतासे अपने अभीष्ट स्थान-पर पहुँच जाते हैं उसी प्रकार जो योगी रत्नत्रयरूपी विशिष्ट धनके स्वामी हैं वे जहाजके समान आपकी सहायता पाकर मोक्षको प्राप्त होंगे ॥१४॥ हे भगवन् ! तुम्हारे द्वारा समीचीन धर्मका उपदेश सुन उत्तम धर्मका उपार्जन कर कोई कोई भव्य सर्वार्थसिद्धि प्राप्त करेंगे । बहुतसे स्वर्ग जायेंगे और बहुतसे तुम्हारे समान लक्ष्मी प्राप्त करेंगे अर्थात् आपके समान तीर्थंकर होकर अनन्त विभूति प्राप्त करेंगे ॥१५॥ कोई कोई दिव्य ग्रैवेयकमें जन्म धारण करेंगे कोई कोई अत्यन्त पुण्यशाली चक्रवर्तीके होने-वाली लक्ष्मी प्राप्त करेंगे और कोई कोई महानुभाव नियमसे मोक्ष प्राप्त करेंगे किन्तु उपदेशके बिना सर्वार्थसिद्धि आदि विशिष्ट अभ्युदयके कारण स्थानोंकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥१६॥ इसलिये हे देव ! हमारी यह विनम्र प्रार्थना है कि आप कालका अल्प भी विलम्ब न कर शीघ्र ही संयम धारण करें जिससे अपना पराया अलौकिक हित हो क्योंकि जब तक आप संयम न धारण करेंगे तब तक न तो आप अपना हित कर सकते हैं और न किसी दूसरेका ही ॥१७॥ इस प्रकार भगवानके दीक्षा-कल्याणकी प्रशंसा करनेवाले लोकांतिक देवोंने, पूर्वोक्त प्रकारसे भगवान मल्लिनाथ-की स्तुति कर, 'आपको जो कुछ विभूति प्राप्त है वह विभूति हमें भी प्राप्त हो' ऐसी प्रार्थना कर बार-बार नमस्कार कर एवं मनोहर दिव्य वाक्योंसे प्रशंसा कर अपना

अथ दिव्यविभूत्यामा जगदाश्चर्यकारिणः । गीतनर्तनवाद्याद्यैः स्वस्ववाहनभाश्रिताः ॥२०॥
चतुर्णिकायजाः शक्राः सकलत्राः सुरावृताः । धर्मात्तमानसास्तत्राजग्मुः कल्याणसिद्धये ॥२१॥
ततस्तं परिनिष्क्रांतिकल्याणाय सुरैः समं । अभिषिच्य महाभूत्या कुंभैः क्षीरांबुसंभृतैः ॥२२॥
देवेंद्रा भूषयामासुरारोप्य हरिविष्टरं । भूषणैः परमैर्भाव्यैर्वस्त्रैश्च मलयोद्भवैः ॥२३॥
दिव्यवाण्या प्रबोध्यानु महाकष्टेन मोहिनः । पित्रादींश्च श्रियं त्यक्त्वा तृणवत्संयमोद्यतः ॥२४॥
इन्द्रहस्तं समालंब्यारुरोह भूषणान्वितः । यानं जयंतसंज्ञं स पराद्यैर्मणिनिर्मितं ॥२५॥
देवोऽसौ शिविकारूढो वीयमानः सुचामरैः । सितैर्नवकराजस्यैर्वरो वाभात्तपःश्रियः ॥२६॥
सप्तपदानि तामूहुः स्कंधेन प्रथमं नृपाः । ततो विद्याधरान्यूह्योन्नि सप्तपदावली ॥२७॥

नियोग समाप्त किया तथा इन शुभ चेष्टाओंके द्वारा बहुत प्रकारसे पुण्य उपार्जन कर वे अपने निवास स्थान ब्रह्मलोकको सानंद चले गये ॥१८-१९॥

लोकांतिक देवोंके चले जानेके बाद चारों निकायके इन्द्रगण उनके तप-कल्याणकी पूजाके लिये मिथिलापुरी आए । वे देव उस समय बड़ी विशाल विभूति-से मंडित थे। गीत नृत्य और बाजे आदिसे समस्त जगतको आश्चर्य करनेवाले थे, अपनी-अपनी देवांगना और आज्ञाकारी देवोंसे व्याप्त थे और अत्यन्त धर्मात्मा थे ॥२०-२१॥ मिथिलापुरीमें आकर चारों निकायके इन्द्रोंने अपने साथमें आए हुए देवोंके साथ दीक्षा कल्याणके उपलक्षमें क्षीरोदधिसे भरे हुए मनोहर कलशोंसे भगवान जिनेन्द्रका बड़े ठाट बाटके साथ अभिषेक किया। सिंहासन पर विराजमान कर उत्तमोत्तम भूषण मालायें और मलयागिरिके वस्त्रोंसे उनका शृंगार किया ॥२२-२३॥ भगवान जिनेन्द्रका इस प्रकार जिनदीक्षाके लिये उत्साह देखकर परम मोही उनके माता-पिता महाशोक और महा दुःख करने लगे। भगवान जिनेन्द्रने बड़े कष्टसे उन्हें मनोहर वाणीसे समझाया और दिलासा दी। जीर्ण तृणके समान समस्त लक्ष्मी-का परित्याग कर दिया एवं संयम धारण करनेके लिये सर्वथा तैयार हो गए ॥२५॥

भूषणोंसे शोभायमान वे भगवान जिनेन्द्र इन्द्रके हाथका सहारा लेकर उत्तमोत्तम मणियोंसे निर्मित [1]जयंती नामकी पालकीमें शीघ्र ही सवार हो गये ॥२६॥ जिस समय वे पालकीमें बैठ गए उस समय देवगण अपने हाथोंमें धारण कर सफेद चमर उनपर ढोरने लगे इसलिये उस समय वे ऐसे जान पड़ने लगे मानो तपरूपी

---

१. हरिवंशपुराणमें मल्लिनाथ भगवानकी पालकीका नाम जयन्ती लिखा है।

ततः स्वकंधमारोप्य शिविकां तां सुरासुराः । समुत्पेतुः प्रमोदाढ्या जनानां दृष्टिगोचरं ॥२८॥
मोहारिविजयोद्भूतगीतप्रस्थानमंगलैः । स्वर्द्धिलिविधैर्वाद्यैर्नर्तनोत्सवकोटिभिः ॥२९॥
मोहारिविजयोद्योगं घोषयंतो जगद्गुरोः । जयकोलाहलं चक्रुर्हृष्टा अग्रेमुदा सुराः ॥३०॥
इत्यादिकृतमाहात्म्यकल्पेशैः परितो वृतैः । देवः पुराद्विनिष्क्रान् पौरैरित्यभिनंदितः ॥३१॥
व्रज सिद्धय हतारींश्च शिवःपन्था विभोस्तु ते । जय नंदेश देव त्वं विश्वकल्याणभाग भव ॥३२॥
तपोर्थं तं व्रजं तं विलोक्य कैश्चिद्विचक्षणाः । जगुः परस्परं होति परमाश्चर्यकारणं ॥३३॥
अहो पश्य महर्द्धीदं चित्रं देवोऽयमद्भुतः । त्यक्त्वा बाल्येऽपि कन्यादीन् यतो गृह्णति संयमं ।३४
अन्ये प्राहुरहो नेदं चित्रं किन्तु जिनोप्ययं । हत्वा घातीन् जगद्राज्यं स्ववशे संकरिष्यति ॥३५॥

लक्ष्मीके ये साक्षात् वूल्हा हैं ॥२७॥ सबसे पहिले सात पैड़ तक तो राजा लोग अपने कंधोंपर रखकर उनकी पालकी ले चलने लगे । उनके बाद आकाशमें सात पैड तक उनकी पालकी विद्याधरगण ले चले । उनके पीछे सुर और असुरोंने उनकी पालकी अपने-अपने कन्धोंपर रक्खी एवं आनन्दसे गद्गद् वे मनुष्योंकी दृष्टिके गोचर होकर आकाशमें चलने लगे ॥२८॥ उस समय मोहरूपी शत्रुके विजय सम्बन्धी गीत, प्रस्थान मंगल, नाना प्रकारके बजनेवाले बाजे और नृत्य इस प्रकार करोड़ों उत्सवोंके साथ तीन जगतके गुरु भगवान जिनेन्द्रके मोहरूपी शत्रुके विजयकी घोषणा करते हुये वे देव उस समय आनन्दसे पुलकित थे एवं बड़े हर्षसे "हे देव ! आपकी जय हो, जय हो", इस प्रकार उनके आगे-आगे जय जय शब्दका कोलाहल करते चले जाते थे ॥२९-३०॥ चारों ओरसे घेरकर खड़े रहनेवाले देवेन्द्रों द्वारा जिनका उपर्युक्त रूपसे माहात्म्य प्रकट किया गया है ऐसे वे भगवान जिनेन्द्र जिस समय मिथिलापुरीसे बाहर निकले थे उस समय पुरवासी लोगोंने उनका इस रूपसे अभिनन्दन किया था—

हे स्वामिन् ! हे देव ! आप मोक्षलक्ष्मी प्राप्त करनेके लिये सिधारें । कर्मरूपी शत्रुओंके नाश करनेमें आप समर्थ हों । हे प्रभो ! तुम्हारा मार्ग कल्याणका करनेवाला हो । आप जयवंते रहें, नावें विरदें एवं समस्त प्रकारके कल्याणोंको प्राप्त करनेवाले हों ॥३२॥ जिस समय भगवान तपके लिये जा रहे थे उस समय उन्हें देखकर बहुतसे चतुर पुरुष आपसमें यह कहकर अत्यन्त आश्चर्य करते थे कि देखो ! यह बात बड़ी ही अचरज करनेवाली है कि महान ऋद्धिके धारी, अद्भुत पराक्रमशाली ये भगवान जिनेन्द्र बाल अवस्थामें ही कन्या आदि लुभानेवाले पदार्थोंसे ममत्व तोड़कर संयम धारण करनेके लिये चल दिये हैं ॥३३-३४॥ अन्य बहुतसे मनुष्य यह

परे प्राहुरहो केचिज्जायते पुरुषोत्तमाः । अत्र हंतुं क्षमाः कौमारत्वेऽप्यिक्षस्मराद्यरीन् ॥३६॥
इत्यादिविविधालापैः श्लाघ्यमानः पुरैर्जनैः । संयमश्रीवराभोऽसौ पुरोपांत(?)व्यतीयिवान् ॥३७॥
अथ संप्रस्थिते सूनौ जिनांवांतःपुरावृता । बंधुभिःसह शोकाढ्या स्वपुत्रमनु निर्ययौ ॥३८॥
प्रस्खलत्पदविन्यासैर्मुक्तकेशा गतप्रभा । हा पुत्रेति रुदंती प्रताडयंती निजोदरं ॥३९॥
तद्वियोगाग्निदग्धांगा बभूवुर्बंधवस्तदा । निपेतुर्भूतले केचिन्मूर्च्छामीलितलोचनाः ॥४०॥
मत्स्वामिन् ! क्व गतोसि त्वं कदा मेलापकस्तव । धरिष्यामः कथं प्राणांस्त्वद्वियोगार्तचेतसः ॥४१॥
इत्यादि शोचनैर्वाक्यैर्भृत्याश्च बन्धवः स्त्रियः । कुर्वंतो रोदनं देव्यामा मार्गेऽनुव्रजंति तं ॥४२॥

कहते थे कि इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है। ये भगवान जिनेन्द्र कम चतुर नहीं हैं क्योंकि ये नियमसे समस्त घातिया कर्मोंको नष्टकर तीन लोकके राज्यको अपने वशमें करना चाहते हैं और नियमसे उसे अपने आधीन करेंगे ॥३५॥ बहुतसे चतुर पुरुष यह विचार प्रदर्शित करते थे कि इस संसारमें विरले ही ऐसे पुरुष उत्पन्न होते हैं जो कुमार अवस्थामें ही इन्द्रिय और कामदेवरूपी बैरीके जीतनेमें पूरी-पूरी सामर्थ्य रखते हैं ॥३६॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके वचन कह कह कर पुरवासी जनोंसे प्रशंसा किये गये और संयमरूपी लक्ष्मीके वर सरीखे जान पड़नेवाले वे भगवान जिनेन्द्र पुरवासी जनोंसे अदृश्य हो गये थे ॥३७॥

जिस समय भगवान जिनेन्द्र दीक्षाके लिए चले गये उनकी माता प्रजावती को बड़ा दुःख हुआ। शोकसे विह्वल हो वह अपनी अन्तःपुरकी रानियों और बन्धु बांधवोंके साथ भगवान जिनेन्द्रके पीछे-पीछे चलने लगीं ॥३८॥ रानी प्रजावतीकी दशा उस समय बड़ी दयार्द्र थी, दुःखकी तीव्रतासे उसके दोनों पैर लड़खड़ाते-लड़खड़ाते जमीन पर गिरते थे। शिरके बाल बुरी तरह बिखर रहे थे, शरीरकी सारी कांति फीकी पड़ गई थी। हाय प्यारे पुत्र! तू मुझ अभागिनीको क्यों छोड़कर दीक्षाके लिए चल दिया। इस प्रकार बार-बार रोती थी और अपनी छाती कूटती थी ॥३९॥ भगवान जिनेन्द्रके बहुतसे बन्धुगण उनके वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त दग्ध हो मूर्च्छासे बेहोश हो जमीनपर गिर गए एवं उन्हें उस समय इतना कष्ट हुआ था। कि उन्हें अपने शरीरकी रंग मात्र भी सुध बुध न थी ॥४०॥ उनके वियोगसे अत्यन्त दुःखित चित्त, बहुतसे बन्धुगण यह कह कहकर रुदन करते थे कि हे स्वामी भगवान जिनेन्द्र ! आप हमें छोड़कर कहां चले गये। अब कब हमें आपके दर्शन होंगे एवं आपके वियोगसे महा दुःखित हम कैसे संसारमें जीवित रह सकेंगे ॥४१॥ इस प्रकार अत्यन्त शोक

महत्तरैस्तदागत्य तां निरुद्ध्य निरूपितं । मा व्रज त्वं न किं वेत्सि देवि ! वृत्तं जगत्पतेः ॥४३॥
मृगवद्गेहपाशे तिष्ठेत्क्व सिंहः कथं तव । वीतरागो मुमुक्षुः किं भोगान् भुनक्ति मूर्खवत् ॥४४॥
इत्यादि मधुरवाक्यैर्बोधिता सा सती समं । बंधुभिर्याति कष्टेन जगाम जिनमन्दिरं ॥४५॥
अथ श्वेतवनोद्याने रम्ये पुष्पफलादिभिः युते । तत्रैर्निर्मितां शुद्धां मणिमण्डपभूषितां ॥४६॥
मङ्गलद्रव्यपार्श्वस्थां स्फटिकीं सुवृत्तां शिलां । यानादवातरद्देवो निर्जरैरवतारितात् ॥४७॥

परिपूर्ण वाक्योंसे भगवान जिनेन्द्रके भृत्य बंधु बांधव और उनकी माता आदि स्त्रियां बड़े ऊँचे ऊँचे स्वरोंसे रोते चिल्लाते थे और भगवान जिनेन्द्र जिस मार्गसे दीक्षावन-को गये थे उसी मार्गपर शोकसे विह्वल हो दौड़ते चले जाते थे ॥४२॥ वैमानिक देवोंमें एक महत्तर जातिके देव हैं। शोकसे विह्वल माता प्रजावतीको इस प्रकार जाती देख महत्तर लोग इनके पास आये और उन्हें रोककर इस रूपसे नम्र निवेदन करने लगे—

हे देवी ! तुम जो इस तरह शोकसे विह्वल हो जा रही हो सो तुम्हारा जाना शोभा नहीं देता। भगवान जिनेन्द्र तीनों लोकके स्वामी हैं। समस्त हित अहितके जानकार हैं। क्या तुम उनके हालको बिलकुल नहीं समझती हो ॥४३॥ मृग जिस प्रकार पाशके अन्दर फँसकर बँध जाता है उसी प्रकार सिंह पाशके अन्दर जिकड़कर नहीं रह सकता। हे माता ! आपके पुत्र भगवान जिनेन्द्र वीतराग हैं—समस्त संसारकी सम्पत्तिसे उनका राग छूट चुका है और मुमुक्षु हैं—मोक्ष प्राप्तिके लिये पूरी अभिलाषा चित्तमें ठान ली इसलिए भोगोंकी रमणीयता देखकर जिस प्रकार मूर्ख मनुष्य उनमें उलझ जाता है और उन्हें रात दिन भोगता है उस प्रकार वे भगवान जिनेन्द्र नहीं भोग सकते। उनके कार्यपर किसी प्रकारका शोक करना वृथा है ॥४४॥ जब महत्तर जातिके देवोंने इस प्रकार मधुर वचनोंमें माता प्रजावतीको समझाया तो उनकी समझमें आ गया एवं वह सती माता अपने बन्धुओंके साथ बड़े कष्टसे राज मन्दिरकी ओर लौट गई ॥४५॥

भगवान जिनेन्द्रने जिस वनमें जिन दीक्षा धारण की थी उस वनका नाम श्वेतवन था। श्वेतवनका उद्यान उस समय बड़ा ही मनोहर था एवं जगह जगह भांति भांतिके पुष्प और फल उनकी शोभा बढ़ाते थे। देवोंने वहांपर पहिले ही एक शिलाका निर्माण कर रक्खा था। वह शिला अत्यन्त शुद्ध थी, मणिमयी मंडपसे अत्यन्त शोभायमान थी। उसके पसवाड़ोंमें कलश झाड़ी आदि मंगलीक द्रव्य विद्यमान

क्षेत्रादिदशधाग्रन्थान् बाह्यान् सर्वस्त्रभूषणान् । द्विसप्ताभ्यंतरं ग्रन्थांस्त्रिशुद्धया व्युत्सृजेत्तदा ॥४८॥
ततः पूर्वमुखं स्थित्वा नत्वा सिद्धान् परान् जिनः । केशानलुंचत बद्धपल्यंकः पञ्चमुष्टिभि ॥४९॥
मार्गशीर्षसितैकादशीदिनेऽतिशुभे मुदा । अश्विन्याख्ये सुनक्षत्रे उच्चार्य सिद्धसा क्षिकं ॥५०॥
मोक्षमूलान् गुणान् मूलाख्यानष्टाविंशतिप्रमान् । मुक्त्ये मुक्तिसखो जैनीं दीक्षां देव उपाददौ ॥५१॥
सायाह्ने भूमिपः सार्धं त्यक्तरागैः शतत्रिकैः । मुमुक्षुर्भमहादक्षैरुपवासद्वयान्वितः ॥५२॥
निरुद्धयार्थं जिनो योगं संकल्पांश्च परात्मनि । दध्याद्धयानं विरस्याशु सावद्यान् सकलांश्चिदे ॥५३॥
केशान् रत्नपटल्यां तान्निधायांशुकसंवृतान् । भक्त्या नीत्वा विभूत्या सुराः क्षीरोदे निचिक्षिपुः ॥५४॥

थे । स्फटिकमणिकी बनी थी और गोलाकार थी । शिलाके पास आते ही जिस पालकीको देवगण लाए थे भगवान जिनेन्द्र उससे उतर पड़े । उसी समय भगवान जिनेन्द्रने क्षेत्र १ वास्तु २ हिरण्य ३ सुवर्ण ४ धन ५ धान्य ६ दासी ७ दास ८ कुप्य ९ भांड १० इस प्रकार दश प्रकारका बाह्य परिग्रह और मिथ्यात्व १ स्त्रीवेद २ पुरुष-वेद ३ नपुंसक वेद ४ हास्य ५ रति ६ अरति ७ शोक ८ भय ९ जुगुप्सा १० क्रोध ११ मान १२ माया १३ और लोभ १४ इस प्रकार यह चौदह—प्रकारका अंतरंग परिग्रह[1] । इस प्रकार चौबीस प्रकारके बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहका मन वचन और कायकी विशुद्धतासे सर्वथा त्याग कर दिया । वे भगवान् मल्लिनाथ उसी समय पूर्व दिशाकी ओर मुख कर बैठ गए । आठों कर्मोंके सम्बन्धसे रहित भगवान् सिद्धिपरमेष्ठीको नमस्कार किया एवं पल्यंक आसन (पलोती) मारकर पाँच मुष्टियोंसे शीघ्र ही केश लुंचकर फेंक दिए ॥४६-४९॥ उन भगवान मल्लिनाथने अत्यन्त शुभ अगहन सुदी एकादशीके दिन जब कि अत्यन्त कल्याणकारी अश्विनी नामका नक्षत्र था "ॐ नमः सिद्धेभ्यः सिद्ध भगवानको नमस्कार हो"—ऐसा उच्चारण किया एवं सिद्धोंकी साक्षी पूर्वक मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिकी अभिलाषासे उन्होंने अट्ठाईस प्रकारके मूलगुणों-को धारण किया एवं सायंकालके समय वीतरागी मोक्षाभिलाषी और महादक्ष तीन सौ राजाओं[2]के साथ शीघ्र ही मोक्षरूपी लक्ष्मीकी सखीस्वरूप दिगम्बर जैन दीक्षा धारण कर ली । उन भगवान जिनेन्द्रने दो उपवासोंका नियम लिया । मन वचन कायकी क्रियारूप योग और संकल्पोंका निरोध किया । वास्तविक आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिये समस्त सावद्य योगोंका परिहार कर दिया एवं परमात्माके स्वरूपमें

१. मिथ्यात्वस्त्रयो वेदा हास्यषट्भूतयोऽपि षट् । चत्वारश्च कषायाः स्युरन्तर्ग्रंथाश्चतुर्दश । —यशस्तिलकचम्पू ।
२. हरिवंशपुराणमें छहसौ छह राजा बतलाये हैं ।

ईषन्नम्रानना भक्त्या शक्रास्तद्गुणरंजिताः । तत्कालोचितसद्वाक्यैः स्तोतुं प्रारेभिरे प्रभुं ॥५५॥
त्वं देव ! भुवनाधीशो गुरुस्त्वं गुरुयोगिनां । धर्मवित्तीर्थकर्ता त्वं कृपानाथस्त्वमेव हि ॥५६॥
अंतर्बाह्यमलापायादद्य ते निर्मला गुणाः । विभ्राजंतेऽप्रमाणा देव ! चिंतामणयो यथा ॥५७॥
स्वमुक्ते निस्पृहोऽसि त्वं सस्पृहोऽनंतशर्मणि । निर्ग्रंथोऽपि महानर्घ्यरत्नत्रयेधनेश्वरः ॥५८॥
निरीहोऽप्यत्र नार्यादौ चाकांक्षी मुक्तिसंगमे । देव ! त्वं त्यक्तराज्योऽपि त्रिजगद्राज्यलोलुपः ॥५९॥

उन्होंने ध्यान लगाया ॥५०-५३॥ भगवान जिनेन्द्रने जो केश उखाड़ कर फेंके थे इन्द्रने उन्हें बड़ी भक्ति और आदरसे रत्नमयी पिटारीमें रक्खा । अतिशय उत्तम वस्त्रसे ढक लिये एवं बड़े ठाठ बाटके साथ क्षीरोदधि समुद्रके जलमें जाकर क्षेपण कर दिये ॥५४॥ जिनके मुख—मस्तक नम्रीभूत हैं और भगवानके गुणोंपर जिनका पूरा पूरा अनुराग है ऐसे वे इन्द्र उस समयके अनुकूल उत्तमोत्तम वाक्योंसे भगवान जिनेन्द्रकी इस प्रकार भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे—

हे देव ! आप तीनों लोकके स्वामी हो । जो योगी लोग बड़े-बड़े लोगोंके भी गुरु हैं उन पूज्य योगियों के भी आप गुरु हैं । समीचीन धर्मके स्वरूपके भले प्रकार जानकार हैं । जिनके पूजन करनेसे सैकड़ों भव्य जीव तर जाते हैं—संसारसे छूटकर मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति कर लेते हैं उन पवित्र तीर्थोंके आप प्रवर्तक हैं एवं समस्त जीवोंपर कृपा करनेवाले कृपानाथ आप हैं ॥५६॥ हे भगवान ? अंतरंग और बाह्य मैलके दूर हो जाने पर जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न चमचमा उठते हैं उसी प्रकार अंतरंग और बाह्य मलके नाश हो जानेसे आज आपके निर्मल और अपरिमित गुण चमचमा रहे हैं ॥५७॥ प्रभो ! यद्यपि आप स्वर्गोंके सुखोंमें सर्वथा अभिलाषारहित हैं परन्तु अनन्त कल्याण स्वरूप मोक्षके सुखोंमें आप पूरा-पूरी अभिलाषा रखनेवाले हैं बाह्य अभ्यंतर समस्त प्रकारके परिग्रहसे रहित हैं परन्तु रत्नत्रयरूपी अचिंत्य धनके आप स्वामी हैं । संसारकी समस्त स्त्रियोंमें यद्यपि आप अभिलाषा रहित हैं तथापि मोक्षरूपी स्त्रीके साथ संगम करनेके लिये आपकी पूरी-पूरी इच्छा है । हे देव ! यद्यपि आपने यहाँको राज्यविभूतिका सर्वथा त्याग कर दिया है परन्तु तीन लोकके राज्यके प्राप्त करनेमें आपको लोलुपता पूरी है । आपने दो उपवासोंका नियम ले रक्खा है इसलिये यद्यपि आप उपवासयुक्त हैं तथापि निरन्तर समीचीन ध्यानरूपी अमृतका आप पान करते रहते हैं । यद्यपि सब बातोंमें आप धीर वीर हैं किसी आपत्तिके आ जानेपर जल्दी क्षोभको प्राप्त नहीं होते इसलिये अक्षोभ्य हैं और अत्यंत

उपोषितोऽरि नाथ ! त्वं सद्ध्यानामृतपानवान् । धीरोऽक्षोभ्योऽपि दक्षस्त्वं कातरः कर्मबंधने ॥६०॥
रागादौ वीतरागोऽपि सरागो मुक्तिसाधने । क्षमावानऽपि लोके त्वं कोपी कर्मरिघातने ॥६१॥
निर्लोभस्तुच्छलक्ष्म्यादौ महालोभस्तपोधने । निर्मोहोऽपि स्वकार्यादौ मुक्तिस्त्रस्नेहतत्परः ॥६२॥
कौमारत्वेऽपि कामारिर्मोहाक्षारातिभिः समं । हतः स्वामिंस्त्वया शीघ्रमतो न त्वत्सऽमोपरः ॥६३॥
अतो देव ! नमस्तुभ्यं सद्बालब्रह्मचारिणे । निर्मोहायातिशांताय तपः श्रयलंकृताय ते ॥६४॥
नमस्ते दिव्यरूपाय नमो मुक्तिस्पृहालवे । नमो हितात्मने नाथ ! नमस्ते गुणसिंधवे ॥६५॥

चतुर हैं । परन्तु कर्मोंके बन्ध करनेमें कातर—डरनेवाले हैं, अर्थात् यह आपको सदा भय लगा रहता है कि कहीं मेरे कर्मोंका बन्ध न हो जाय इसलिये उनके बन्ध न होने के लिये आप पूरी-पूरी चेष्टा रखते हैं । उस समय कर्मोंके बाँधनेमें आपकी धीर वीरता एक ओर किनारा कर जाती है एवं कर्मोंके बन्धसे चित्त उथलपुथल हो निकलता है ॥५७-६०॥ हे भगवान ! अन्य रागद्वेष आदिके अन्दर वीतराग हैं—उन्हें अपनाना नहीं चाहते परन्तु मोक्षके सिद्ध करनेमें अत्यन्त रागी हैं—सदा मोक्षकी प्राप्तिके कारणोंको आप चेष्टा करते रहते हैं यद्यपि शत्रु और मित्रोंको समान मानने-के कारण आप क्षमावान हैं तथापि कर्मरूपी बैरियोंको आप अपने पास तक नहीं फटकने देना चाहते सदा उनके नाश करनेके लिये प्रावृत्त रहते हैं ॥६१॥ हे भगवान ! यद्यपि संसारकी तुच्छ लक्ष्मीमें आपका किसी प्रकारका लाभ नहीं इसीलिए उसे छोड़-कर आपने पवित्र जिनदीक्षा धारण की है तथापि तपरूपी लक्ष्मीके लिये आप बड़े लोभी हैं—एक क्षणके लिये भी तपरूप लक्ष्मीसे विमुख होना नहीं चाहते । आप अपने शरीर आदिमें सर्वथा ममत्वरहित निर्मोही हैं परन्तु मोक्षरूपी स्त्रीपर आपका पूरा-पूरा स्नेह है । उसको प्राप्तिके लिए आप कोई भी बात उठा रखनेवाले नहीं हैं ॥६२॥ हे स्वामी ! कुमार अवस्थामें कामदेवका जीतना अत्यन्त कठिन है परन्तु आपने कुमार अवस्थामें ही मोह और इन्द्रियरूपी बैरियोंके साथ कामदेवरूपी बलवान शत्रुको देखते-देखते नष्ट कर डाला इसलिये आपके समान अन्य कोई महापुरुष नहीं । अतएव हे देव ! आप उत्तमकोटिके बाल ब्रह्मचारी हैं इसलिए आपके लिए नमस्कार है । आप मोहके विकारोंसे रहित निर्मोह हैं अत्यन्त शान्त हैं और तपरूपी लक्ष्मीसे शोभित हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार है ॥६३-६४॥ आप दिव्यरूपके धारक हैं इसलिए आपके लिये नमस्कार हैं । मोक्ष सुख प्राप्त करनेके लिए आपकी पूरी इच्छा है इसलिये आपके लिये नमस्कार हैं । आप हितात्मा हैं—दूसरे जीवोंका और अपना

देव ! देहि त्वमस्माकं स्तुतिभक्तिफलेन हि। भवे भवे भद्वीर्यं बालत्वे संयमाप्तये ॥६६॥
इति स्तुत्वा मुहुर्नत्वा कृतकार्याः सुरेश्वराः। तत्तपोवार्तयाऽभक्ता ययुः स्वं स्वं मुदाश्रयं ॥६७॥
तदैव ध्यानसामर्थ्याप्ततुर्यज्ञानभास्करः। पारणाह्नेऽथ मार्गोऽयमिति संचित्य संयमे ॥६८॥
भावयन् हृदि निर्वेदं स्वेर्यापथविलोचनः। प्रकुर्वन् दानिना तोषं प्राविशन्मिथिलां जिनः ॥६९॥
महापात्रं तमालोक्य निधानमिव दुर्लभं। नंदिषेणनृपो हेमद्युतः प्राप्य परं मुदं ॥७०॥

भी हित करनेवाले हैं इसलिये आपके लिए नमस्कार है एवं आप समस्त गुणोंके समुद्र हैं इसलिए आप नमस्कार करनेके योग्य हे ॥६५॥ हे देव ! यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि यह जो हमने आपकी भक्ति और स्तुति की है उसका फल हम यही चाहते हैं कि बाल अवस्थामें भी संयमकी प्राप्तिके लिये जिस प्रकार आपके अन्दर अचिंत्य शक्ति विद्यमान है वह शक्ति आपकी कृपासे हमें भी प्राप्त हो ॥६६॥ इस प्रकार भक्तिपूर्वक भगवान मल्लिनाथकी स्तुति कर देवेन्द्रोंने बार-बार उन्हें नमस्कार किया एवं उनकी महिमाकी प्रशंसा करते हुए वे लोग अत्यन्तत प्रसन्नताके साथ अपने-अपने स्थान लौट गये ॥६७॥

दीक्षाके समय परिणामोंकी इतनी उज्ज्वलता रहती है कि उस समय सातवें गुणस्थानके परिणाम हो जाते हैं एवं सातवें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र होनेसे पीछे वे छठे गुणस्थानमें आते जाते रहते हैं। समस्त बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहोंका त्याग कर जिस समय भगवान मल्लिनाथ ध्यानके अन्दर निश्चल हुए थे उस समय उस उत्कट ध्यानकी सामर्थ्यसे उनके मनःपर्ययज्ञान नामका चौथा ज्ञानरूपी सूर्य प्रकट हो गया था एवं उस समय वे मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मनःपर्यय-ज्ञान इस प्रकार चार ज्ञानोंके धारक बन गए थे। जो दिन उनके पारणाका था उस दिन उन्होंने संयम करते-करते ही यह विचारा कि शरीरकी स्थितिके लिए आहार लेना भी सुनिश्चित मार्ग है अर्थात् संयमका साधक है, इसलिये आहारका लेना उन्होंने निश्चित कर लिया। वे भगवान जिनेन्द्र, हृदयमें संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यकी भावनाका चिंतवन करते-करते जूरा प्रमाण जमीनको देखते-देखते आहारके लिये चल दिये एवं दानियोंको संतोष प्रदान करनेके लिये मिथिलापुरीमें प्रवेश कर गए ॥६८-६९॥

मिथिलापुरीमें सुवर्णके समान महामनोज्ञ कांतिका धारक एक नंदिषेण नाम-का राजा भी रहता था। आहारकी अभिलाषासे घूमते हुए भगवान जिनेन्द्रको देख-

स्वहस्तो कुड्मलीकृत्य नत्वा तच्चरणाम्बुजौ। तिष्ठ तिष्ठेति संप्रोक्त्या स्थापयामास तत्क्षणं ॥७१॥
श्रद्धादिगुणसंप्राप्तस्मै पात्रोत्तमाय सः। प्रतिगृहादिपुण्यार्जनहेतुनवसंयुतः ॥७२॥
क्षीरान्नं मधुरं रम्यं ददौ तृप्तिकरं परं। कृतादिरहितं भक्त्या प्रासुकं स्वानयशर्मदं ॥७३॥
तद्दानेन च पुण्यं प्रोपार्ज्य स्व स्व गृहाश्रमं। सफलं मन्यते राजा धनं च जीवितं परं ॥७४॥
देवोऽथ भावयन्नित्यं संयमं च विरागतां। ध्यानाध्ययनमाकुर्वन्निर्जनं स्थानमाश्रयन् ॥७५॥
निर्भयो विहरन् भूमिं स विक्रम्य दिनानि षट्। छद्मस्थ्येनागमत्प्राक्तनं दीक्षाग्रहणं वनं ॥७६॥
तत्र ध्यानं समालंब्य सोऽशोकस्य तरोरधः। तदर्थी चिंतयेदादौ सिद्धानां सद्गुणाष्टकं ॥७७॥

कर एवं हृदयमें यह विचार कर कि जिस प्रकार खजानेका मिलना अत्यन्त दुर्लभ है—सामान्य भाग्यवालोंको वह नहीं प्राप्त हो सकता उसी प्रकार जब उत्तम पात्र मुनिका मिलना भी कठिन है तब महापात्र भगवान तीर्थंकरका मिलना तो अत्यन्त कठिन है। हर एक समय हर एकको उनका मिलना नहीं प्राप्त हो सकता, भगवान-को देखकर उसे बड़ा हर्ष हुआ। दोनों हाथ जोड़ उनके चरण कमलोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया एवं हे प्रभो! तिष्ठ, तिष्ठ, ऐसा कह कर उसी क्षण उन्हें ठहराया ॥७०-७१॥ श्रद्धा तुष्टि भक्ति आदि दाताके सात गुणोंसे भूषित एवं पुण्यको उत्पत्ति-के कारण पडिगाहन उच्चासन प्रदान करना प्रक्षाल पूजा आदि नवधा भक्तिसे विभूषित राजा नंदिषेणने उत्तम पात्र भगवान जिनेन्द्रके लिये क्षीरान्न (खीर) का भक्तिपूर्वक आहार दिया जो दोषरहित, मधुर था, मनोहर था, तृप्तिका करनेवाला था, उत्कृष्ट था, प्रासुक था और अपना पराया कल्याण करनेवाला था ॥७२-७३॥ महापात्र भगवान तीर्थंकरको दान देनेसे उत्पन्न हुए पुण्यको उपार्जन कर राजा नंदिषेणने स्वयं भगवान तीर्थंकरको आहारदान देनेसे अपने गृहाश्रमको सफल समझा एवं अपना धन और जीवन भी उसने सफल और उत्कृष्ट समझा ॥७४॥

वे भगवान तीर्थंकर सदा संयम और वैराग्यकी भावनाका चिन्तवन करते थे, ध्यान और अध्ययनमें सदा प्रवृत्त रहते थे, जंगल खंडहर आदि निर्जन स्थानोंमें सदा उनका निवास स्थान रहता था ॥७५॥ पराक्रमके साथ निर्भय हो भूमिपर विहार करते फिरते थे। इस प्रकार छह दिन तक विहार कर वे भगवान जहाँ पर दीक्षा धारण की थी उसी दीक्षावन श्वेतवनमें आ गये ॥७६॥ श्वेतवनमें आकर अशोक वृक्षके नीचे उन्होंने अच्छी तरह ध्यानका अवलम्बन किया। सम्यक्त्व ज्ञान वीर्य आदि जो सिद्धोंके आठ गुण कहे गये हैं उन्हें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे सबसे पहिले

ततश्चित्तं स्थिरीकृत्य निःप्रमादो जितेन्द्रियः । धर्म्यध्यानं समुत्कृष्टं चतुर्धा ध्यायति स्फुटं ॥७८॥
शिथिलीकृत्य कर्माणि क्षपयित्वा च कानिचित् । तेन ध्यानेन चारुह्य श्रेणिं क्षपकसंज्ञिकां ॥७९॥
शिवधामनि निःश्रेणी वीतरागः स्थिराशयः । आद्यशुक्लासिना शीघ्रं जघान मोहशात्रवं ॥८०॥
रणरांगे तदा देवो महाभट इवाबभौ । चारित्रसंगरे ध्यानतीक्ष्णखड्गो महातपाः ॥८१॥

उन्होंने सिद्धोंके आठ गुणोंका ध्यान करना प्रारम्भ कर दिया ॥७७॥ उसके बाद परम जितेन्द्रिय और प्रमादरहित वे भगवान जिनेन्द्र चित्तको स्थिर कर उत्कृष्ट ध्यान धर्म्यध्यानके आज्ञाविचय[1] आदि चारों पायोंका स्फुट रूपसे ध्यान करने लगे ॥७८॥ स्थिर चित्तके धारक वीतराग भगवान जिनेन्द्रने उस धर्म्यध्यानके बलसे बहुतसे कर्मों-को शिथिल कर डाला और बहुतसे कर्मोंको क्षय भी कर डाला एवं उस ध्यानके सम्बन्धसे मोक्षरूपी महलमें जानेके लिये सीधी सीढ़ी स्वरूप क्षपकश्रेणीमें पदार्पण कर दिया एवं पृथक्त्व वितर्क[2] नामक प्रथम शुक्लध्यानके द्वारा मोहनीय कर्मकी इक्कीस प्रकृतियोंका सर्वथा क्षय कर उसे सर्वथा उखाड़कर फेंक दिया ॥७९-८०॥ महायुद्धमें शत्रुको मारकर तीक्ष्ण खड्गका धारक महाभट जिस प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार चारित्ररूपी संग्राममें ध्यानरूपी तीक्ष्ण खड्गके धारक महातपस्वी

---

१. आज्ञाविचय १ अपायविचय २ विपाकविचय ३ संस्थानविचय ४ इस प्रकार ये चार धर्म्यध्यानके पाये हैं । बुद्धिकी मंदतासे एवं यथार्थ उपदेश देने वाले न होनेसे सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रणीत मार्गसे इस रूपसे श्रद्धान कर लेना कि भगवान जिनेन्द्रने जो कहा है वह यथार्थ है और वैसा ही है भगवान जिनेन्द्र अन्यथा प्ररूपण करनेवाले नहीं हो सकते इस प्रकारके विचारका नाम आज्ञाविचय है । मिथ्यादर्शनकी कृपासे लोगोंकी प्रवृत्तिमें स्वेच्छाचारका प्रचार हो गया है सन्मार्गसे बिलकुल ही वे दूर भागते हैं इस प्रकार सन्मार्गके अपाय (विनाश) का विचार करना अपायविचय है । ज्ञानावरण दर्शनावरण आदि कर्मों-के फलोंका द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार विचार करना विपाकविचय नामका तीसरा धर्मध्यान है एवं लोकके संस्थानका विचार करना संस्थानविचय नामका धर्म्यध्यान है ॥१॥ सातवें गुणस्थानकी अप्रमत्त संज्ञा है । निरतिशय अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्तके भेदसे वह दो प्रकारका है । जो हजारों बार छठेसे सातवेंमें और सातवेंसे छठेमें आवे वह निरतिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती कहा जाता है और जो अपक वा उपशम कोई भी श्रेणी चढ़नेके सन्मुख हो वह सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती कहा जाता है इस रूपसे सातवें गुणध्यानवाला क्षपक श्रेणी माढ़ता है । क्षपकश्रेणीमें अनन्तानुबन्धीके चार कषायोंके सिवाय बारह कषाय और नौ नोकषायोंका क्षय किया जाता है । क्षपकश्रेणीके गुणस्थान आठवाँ नववाँ दशवाँ और बारहवाँ इस प्रकार चार हैं । क्षपकश्रेणी वाला फिर नहीं गिरता वह प्रथम और द्वितीय शुक्लध्यानसे चारों घातिया कर्मोंका नष्टकर केवलज्ञान प्राप्तकर लेता है ।

२. पृथक्त्ववितर्कविचार १ एकत्व वितर्कविचार २ सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती ३ और व्युपरतक्रियानिवृत्ति ४ शुक्लध्यानके ये चार भेद हैं ।

पूर्वाह्णे पौषिके मासि कृष्णपक्षे मनोहरे। द्वितीयायां सुनक्षत्रे पुनर्वसुसुनामनि ॥८२॥
ततो द्वादशकं (मं) प्राप्य गुणस्थानं जिनाग्रणीः। शेषघातित्रयं हत्वा द्वितीयशुक्लयोगतः ॥८३॥
केवलावगमं प्राप्य लोकालोकविलोकनं। जगदाश्चर्यकर्तारं तत्क्षणं मुक्तिदर्पणं ॥८४॥
स्वर्गे घंटारवोज्योतिर्लोके सिंहध्वनिस्तदा। फणींद्रभवने शंखनादो व्यंतरधामसु ॥८५॥
भेरीशब्दः पृथुध्वानश्चाभूतज्ज्ञानसूचकः। अम्लानकुसुमैश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं सुरद्रुमाः ॥८६॥
ववौ मरुत्सुगंधः संजभूवुर्निर्मला दिशः। विष्टरांणि सुरेशानामासमैः प्रचक्रंपिरे ॥८७॥
इत्यवलोक्य तदाश्चर्ये ज्ञात्वा तत्केवलोद्गमं। उत्थाय स्वासनसनाद्विद्राः प्रणेमुस्तं जगद्गुरुं ॥८८

भगवान जिनेन्द्र भी मोहरूपी मल्लको मारकर महाभटके समान अत्यन्त शोभित होने लगे ॥८१॥ पौषवदी द्वितीयाके दिन पूर्वाह्णके समय जबकि पुनर्वसु नामके शुभ नक्षत्रका उदय था उन भगवान जिनेन्द्रने बारहवें गुणस्थानमें पदार्पण किया। बारहवें गुणस्थानका काल अंतर्मुहूर्त और वहांपर एकत्ववितर्क विचार नामका दूसरा शुक्लध्यान प्रगट होता है इसलिये बारहवें गुणस्थानमें एकत्ववितर्क विचार नामक दूसरे शुक्लध्यानकी कृपासे मोहनीय कर्मके सिवाय बाकीके कर्म—अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय इन तीन घातिया कर्मोंका भी सर्वथा नाश कर दिया। बस! चारों घातिया कर्मोंके सर्वथा नाशसे उन तीन जगतके स्वामी भगवान जिनेन्द्रके समस्त लोक और अलोकके चर अचर पदार्थोंके साक्षात् प्रकाश करनेवाला केवलज्ञान प्रगट हो गया जो कि अपने स्वरूपसे समस्त जगतको आश्चर्य करनेवाला था और जिस क्षणमें उत्पन्न हुआ था उसी क्षणमें मुक्तिके लिये दर्पण स्वरूप था अर्थात् जिस प्रकार दर्पणमें मुक्तिका स्वरूप साक्षात् प्रतिभासित होता है उसी तरह वस्तुका स्वरूप साक्षात् उसके अन्दर प्रतिभासित होता था ॥८२-८४॥

भगवान जिनेन्द्रको केवलज्ञानकी प्राप्ति होते ही उसके माहात्म्यसे स्वर्गोंके अन्दर घण्टे अपने आप बजने लगे। ज्योतिषी देवोंके भवनोंमें शंखध्वनि होने लगी, भवनवासी देवोंके भवनोंके अन्दर शंखनाद होने लगा एवं व्यन्तरनिकायके देवोंके भवनोंमें भेरियोंका उन्नत शब्द होने लगा जिससे भगवानके केवलज्ञानकी सूचना हो गई। उस समय कल्पवृक्षोंसे नवीन ताजे फूलोंकी वृष्टि होने लगी। शीतल मंद सुगंध पवन बहने लगी। समस्त दिशायें निर्मल हो गईं एवं वैमानिक देवोंके आसन चल विचल हो उठे ॥८५-८७॥ इस प्रकारके अनेक आश्चर्योंको देखकर इन्द्रोंने यह निश्चय कर लिया कि भगवान जिनेन्द्रको केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। वे शीघ्र ही

ततः सौधर्मकल्पेशस्तत्कैवल्यमहोत्सव । कर्तुं व्यधान्मतिं तद्वत्सर्वे चेंद्रा व्यधुस्तरां ॥८९॥
तदा वलाहको देवो विमानं कामकाह्वयं । लक्षयोजनविस्तीर्णं मुक्ताम्नभूषितं व्याधात् ॥९०॥
लक्षयोजनसद्वृत्तकायं घंटारवांकितं । किंकणीचामरोपेतं कामगं बहुभूषितं ॥९१॥
श्वेतमैरावनाख्यं सद्गजं दक्षं प्रभास्वरं । नागदत्ताभियोग्येशश्चक्रेऽत्यंतसुन्दरं ॥९२॥
द्वात्रिंशत्सन्मुखान्यस्य मुखं प्रति रदाष्टकं । प्रतिदन्तं सरोह्येकमब्जिन्येका सरः प्रति ॥९३॥
अब्जिनीप्रति सादृश्याद्द्वात्रिंशत्कमलाः पृथक । कमलं प्रति पत्राणि द्वात्रिंशत्प्रमितान्यपि ॥९४॥
एकैकस्मिन् सुपत्रे नर्तकयो द्वात्रिंशदेव हि । नृत्यंति लीलया हावैर्भावैः शृंगारखानयः ॥९५॥
इत्यादिवर्णनोपेतं तमारुह्य गजाधिपं । सिश्चकामादिकल्पेशो जिनेन्द्रपूजनायसः ॥९६॥
स्वस्ववाहनमारूढा देवाः सामानिकादयः । स्वस्वभूत्यामुदा शक्र दशधा परिवव्रिरे । ९७॥

अपने-अपने आसनोंसे उठे । एवं तीन जगतके गुरु भगवान जिनेन्द्रको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥८८॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने भगवान मल्लिनाथका केवलज्ञान महोत्सव करनेके लिये तैयारियां कीं एवं जिस प्रकार सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने तैयारियां कीं उसी प्रकार जितने भी इन्द्र भगवान मल्लिनाथके केवलज्ञान महोत्सवमें आने वाले थे सबोंने तैयारियां करनी प्रारम्भ कर दीं ॥८९॥ भगवानके केवलज्ञान महोत्सवमें जाते समय वलाहक नामक देवने कामक नामके विमानकी रचना की । जो विमान एक लाख योजन चौड़ा था और महामनोज्ञ मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान था ॥९०॥ अत्यन्त चतुर नागदत्त नामके आभियोग्य जातिके देवने उस समय ऐरावत हाथी की रचना की जो कि लाख योजन प्रमाण अत्यन्त सुडौल शरीरका धारक था । बजते हुए घंटाके शब्दसे अत्यन्त शोभायमान था । छोटी छोटी घंटियों और चामरोंसे अलंकृत था । विक्रियासे इच्छापूर्वक रचा गया था । बड़े ठाट बाटसे सजाया गया था । महामनोहर और श्वेतवर्णका था ॥९१-९२॥ इस ऐरावत हाथीके मुख बत्तीस थे, हर एक मुखमें आठ-आठ दांत थे, हर एक दांतपर एक एक सरोवर विद्यमान था । हर एक सरोवरमें एक एक कमलिनी थी (कमलोंकी वेल थी) प्रत्येक कमलिनीमें बत्तीस बत्तीस कमल थे । हर एक कमलके बत्तीस बत्तीस पत्ते थे । प्रत्येक पत्तेमें नाचनेवाली बत्तीस बत्तीस देवियां थीं जो कि पूर्ण शृंगारसे शोभायमान थीं और लीलापूर्वक बड़े हाव भावोंके साथ नृत्य करती थीं ॥९३-९५॥ इस प्रकारके उत्तम वर्णनोंके धारक उस ऐरावत हाथीपर सौधर्म स्वर्गका इन्द्र सवार हो गया एवं भगवान जिनेन्द्रकी पूजाके लिये चल दिया ॥९६॥ भगवान जिनेन्द्रकी पूजाके लिये

ऐशानेन्द्रादयः सर्वे इन्द्रः स्ववाहनाश्रिताः । शेषा निकायजा शक्रः स्वस्वभूत्या च निर्ययुः ॥९८॥
पूरयंतो दिशः सर्वा जयनंदादिघोषणैः । वाद्योघैर्द्योतयं तश्च नभोंगभूषणांशुभिः ॥९९॥
खांगणं छादयंतः सद्विमानवाहनादिभिः । महोत्सवशतैः सार्धमाजग्मु भूतलं सुराः ॥१००॥
अधृश्यौकिनो हृष्टा. विभोरास्थानमंडलं । ऐक्यपुंजनिभ दूराद्यज्ञराट् शिल्पिनिर्मितं ॥१०१॥
करोमि वर्णनं किंचिदस्य प्रीत्यै सतां मुदा । निरौपम्यस्य विद्यर्द्धिसंकुलस्य समासतः ॥१०२॥
योजनत्रिकविस्तीर्णमिंद्रनीलमणिप्रभं । वृत्तं पीठं व्यधादादावस्थानस्य जिनेशिनः ॥१०३॥

इन्द्रको इस प्रकार तैयार देखकर सामानिक आदि देव भी अपने अपने वाहनोंपर सवार हो गये एवं अपनी विभूतिके साथ चारों ओरसे इन्द्रको वेष्टित कर बड़े हर्षसे खड़े हो गये ॥९७॥ ऐशान इन्द्रको आदि लेकर अन्य स्वर्गोंके इन्द्र अपने अपने वाहनों-पर सवार हो गये तथा अपनी अपनी विभूतिके साथ ज्योतिषी आदि निकायोंके इन्द्र भी अपने अपने भवनोंसे निकल पड़े। जिस समय चारों निकायोंके देवेन्द्र भगवान जिनेन्द्रकी पूजाके लिये निकल पड़े उस समय हे देव ! आप जयवंते रहें नादें और बिरदें इत्यादि उनके कोलाहलोंसे और अनेक प्रकारके बाजोंके शब्दोंसे समस्त दिशायें व्याप्त हो गईं थीं। शरीरोंपर पहिने हुए भूषणोंकी कांतिसे समस्त आकाश जगमगा उठा था एवं उत्तमोत्तम विमान और वाहन आदिसे सारा आकाश ढका सरीखा जान पड़ता था। इस प्रकार सैकड़ों महोत्सवोंके साथ वे देव जिस वनमें भगवान मल्लिनाथको केवलज्ञान हुआ था उस वनकी भूमिपर आकर पहुँच गए ॥९९-१००॥ शिल्पकलामें पूर्ण चातुर्य रखनेवाला कुबेर पहिले ही इन्द्रकी आज्ञासे वहाँ पहुँच चुका था और उसने बड़ी सुन्दरताके साथ समवसरणकी रचना कर रक्खी थी। जिस समय देवेन्द्रगण भूमिपर उतरे साक्षात् तेजोंका पुंज स्वरूप दूरसे ही उन्होंने भगवान जिनेन्द्रका समवशरण देखा और अत्यन्त हर्ष प्रकट करने लगे ॥१०१॥ समवसरणकी रचना सज्जनोंको परमानन्द प्रदान करनेवाली होती है अनुपम और समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त रहती है इसलिये सज्जन पुरुषोंको आनंदित करनेके लिये उस अनुपम समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे व्याप्त समवसरणका मैं (ग्रन्थकार) संक्षेप वर्णन करता हूँ—

जिस भूमिपर भगवान जिनेन्द्रका समवसरण रचा गया था उस भूमिका विस्तार तीन योजन प्रमाण था वह इन्द्रनील मणिके समान कांतिको धारक और

तस्य पर्यंतभूभागमलं चक्रे महाद्युतिः। धूलीशालपरिक्षेपो रत्नपूर्णमयो महान् ॥१०४॥
चतुर्दिक्ष्वस्य विस्तीर्णा हेमस्तंभाग्रलंबिताः। तोरणा मकरा (?) स्फोटरत्नमाला विरेजिरे ॥१०५॥
ततोऽन्तरांतरं किंचिदगत्वा हेममयोन्नताः। अधोमध्यजिनार्च्यांगा ध्वजछत्रादिभूषिताः ॥१०६॥
चतुर्गोपुरसंबद्धशालत्रितयवेष्टिताः । रेजुर्मध्येषु वीथीनां मानस्तंभा मनोहराः ॥१०७॥
स्तंभपर्यंतभूभागमलंचक्रुर्दिशं प्रति। चतस्रो मणिसोपाना वाप्यो नन्दोत्तरादिकः ॥१०८॥
ततः स्तोकांतरं गत्वा परिवव्रेऽम्बुखातिका। तां महीं स्वच्छनीराढ्या वातोत्पन्नोर्मिसंकुला ॥१०९॥
तदभ्यंतरभूभागं प्रवेष्टयाभूल्लतावनं। सत्क्रीडाद्रिलतागेहं सर्वर्तुकुसुमांचितं ॥११०॥
स्तोकांतरं ततोऽतीत्य मुक्तादामादिमंडितः। प्राकारः प्रथमो वव्रे महातुंगो हिरण्मयः ॥१११॥
महांति गोपुराण्यस्य संबभुर्दिक्चतुष्टये। राजतानि त्रिभूमानि शृंगाणीव महागिरेः ॥११२॥

गोलाकार थी ॥१०२-१०३॥ कांतिसे जाज्वल्यमान उस पृथ्वीका पर्यंत भाग धूलीशाल [परकोट] से चारों ओरसे वेष्टित था जो धूलीशाल रत्नमयी था और विशाल था ॥१०४॥ धूलीशालकी चारों दिशाओंमें सुवर्णमयी स्तम्भोंके अग्रभागमें बहुत बड़े मनोहर तोरण मीनाकारी और रत्नोंकी मालाएँ लटक रही थीं जिनसे उन स्तम्भोंकी अद्वितीय शोभा दीख पड़ती थी ॥१०५॥ कुछ फासलापर उस भूमिके भीतर जाकर गलियोंके मध्यभागमें मानस्तम्भ विद्यमान थे जो कि सुवर्णमयी थे। नीचे भाग और बीच भागमें भगवान जिनेन्द्रकी प्रतिमाओंके रहनेके कारण पूज्य और पवित्र थे, ध्वजा और छत्र आदिसे शोभायमान थे जिनके अन्दर चार चार विशाल गोपुर [सदर दरवाजे] विद्यमान हैं ऐसे तीन प्रकारोंसे वेष्टित थे और महामनोहर जान पड़ते थे ॥१०६-१०७॥ स्तम्भोंके पर्यंतके भूमि भागोंपर प्रत्येक दिशामें चार वापियाँ थीं जो कि मणिमयी सीढ़ियोंसे शोभायमान थीं और नन्दा नन्दोत्तरा आदि उनके शुभ नाम थे ॥१०८॥ मानस्तम्भोंको जगहसे थोड़ी दूर जाकर मानस्तम्भोंकी भूमि भी चारों ओरसे बेढकर रखनेवाली एक विस्तीर्ण खाई थी जो कि अत्यन्त निर्मल जलसे भरी हुई थी एवं पवन वेगसे उत्पन्न होनेवाली चंचल तरंगोंसे व्याप्त थी। खाईके मध्यभागकी भूमिको बेढकर रखनेवाला एक आम्रवन था जो कि महामनोहर क्रीड़ा पर्वत और लता मंडपोंसे युक्त था और समस्त ऋतुओंमें होनेवाले महामनोहर पुष्पोंसे शोभायमान था ॥१०९-११०॥ आम्रवनसे कुछ दूर पर सबसे पहिला विशाल प्राकार था जो कि मुक्तामाला आदिसे भूषित था, अत्यन्त उन्नत था और सुवर्णमयी था ॥१११॥ इस प्रकारकी चारों दिशाओंमें चार सदर दरवाजे थे जो कि चाँदीके बने

प्रत्येकं गोपुरेष्वेव मंगलद्रव्यभूतयः । शतमष्टोत्तरं भांति भृंगारकलशादिकाः ॥११३॥
प्रत्येकतोरणास्तेषु शतसंख्या विभासिरे । रत्नाभरणयुक्ताश्च तद्द्वारे निधयो नव ॥११४॥
तेषांमतर्महावीथ्येरुभयोः पार्श्वयोर्भुत । नाट्यशालाद्वयं रत्नस्तंभभूमित्रयान्वितं ॥११५॥
ततो धूपघटौ द्वौ द्वौ वीथीनामुभयोर्दिशोः । तत्र वीथ्यंतरेष्वासीद्वभ्यं वनचतुष्टयं ॥११६॥
सर्वंतुंफलपुष्पाढ्यं गृहवाप्यादिशोभित । अशोकं सप्तपर्णाख्यं चांपकाम्रवनद्वयं ॥११७॥
अशोकादिवनेषु स्युरशोकाद्या द्रुमाः पराः । त्रिमेखलानि पीठानि हैमानि समधिष्ठिताः ॥११८॥
मालावस्त्वमयूराब्जहंसवोनमृगेशिनां । वृषहस्तीद्रचक्राणां दशधा स्युर्ध्वजाः पराः ॥११९॥
अष्टोत्तरशतं ज्ञेया प्रत्येकं पालिकेतवः । एकैकस्यां दिशि प्रोक्ता मोहमल्लजयोर्जिताः ॥१२०॥
दिक्येकस्यां ध्वजा सर्वाः सहस्रं स्युरशीतियुकः । चतुर्विंशु च शून्यद्वित्रिचतुःसंख्यका ध्वजाः ॥१२१॥

हुए थे। तीन तीन खनोंके थे एवं विशाल पर्वतकी शिखर सरीखे जान पड़ते थे ॥११२॥ हर एक सदर दरवाजेके अन्दर झाड़ी कलश आदि मंगलीक द्रव्य एक सौ आठ आठ शोभायमान थे ॥११३॥ हर एक दरवाजेपर सौ सौ तोरण लटक रहे थे जो कि अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे। उन द्वारोंके भीतर रत्नमयी आभरणोंसे युक्त नौ निधियें जगमगा रही थीं ॥११४॥ गोपुरोंके भीतर जाकर एक विशाल गली थी और उस गलीके दोनों पसवाड़ोंमें दो नाटयशालायें थीं जो कि रत्नमयी स्तम्भोंसे शोभायमान थीं और तिखनी बनी हुई थीं ॥११५॥ उन महावीथियों की दोनों दिशाओंमें दो दो धूपघट विद्यमान थे तथा उनसे आगे गलियोंमें चार मनोहर वन थे जो कि सब ऋतुओंमें होनेवाले फल और पुष्पोंसे शोभायमान थे। लता गृह बापी आदिसे महामनोहर जान पड़ते थे एवं अशोकवन १ सप्तपर्णवन २ चम्पकवन ३ और आम्रवन ४ ये उन वनोंके चार मनोहर नाम थे ॥११६-११७॥ अशोक आदि चारों वनोंमेंसे अशोकवनके अन्दर बहुतायतसे अशोकवृक्ष थे। सप्तपर्णवनमें सप्तपर्ण जातिके वृक्ष थे। चम्पकवनमें चम्पाके वृक्ष और आम्रवनमें महामनोहर आम्र वृक्ष विद्यमान थे और ये समस्त वृक्ष, सुवर्णमयी तीन कटनीवाले पीठों (थामरों) से शोभायमान थे ॥११८॥ माला १ मगर २ मयूर ३ कमल ४ हंस ५ बैल-गरुड़ ६ सिंह ७ बैल ८ गज ९ और चक्र १० इस प्रकार उत्कृष्ट ध्वजायें दश प्रकारकी मानी हैं ॥११९॥ मोहरूपी मल्लके जीतनेसे उन्नत पालि ध्वजायें (प्रधान ध्वजायें) एक एक दिशामें एक एकसौ आठ थीं तथा सामान्य रूपसे एक एक दिशामें समस्त ध्वजायें एक हजार अस्सी अस्सी थीं एवं मिलकर चार हजार तीनसौ बीस

अन्तर्भागे ततः शालोऽभद्रद्वारपुरादिमंडितः । तोरणादियुतः प्राग्वत्तृतीयो योऽजुनो महान् ॥१२२॥
अत्रापि पूर्ववज्ज्ञेयं नाट्यशालाद्वयं महत् । तद्वत्तद्रूपघटबन्द्धं धूपधूमास्तदिङ्मुखं ॥१२३॥
ततो वीथ्यंतरेष्वासोद्वनं कल्पमहीरुहां । नानारत्नप्रभोत्सर्पद्ध्वांतं मनोहरं ॥१२४॥
चतुश्चैत्यद्रमास्तत्राशोकाख्याः स्युः प्रभास्वराः । अधोभागेजिना र्च्याढ्या सपीठाश्छत्रशोभिताः ॥१२५॥
ततो बभौ वनानां हि पर्यंते वनवेदिका । मंगलद्रव्यभूषाढ्यैश्चतुर्भिर्गोपुरैः परैः ॥१२६॥
ततः परां महीं रत्नपीठस्तंभाग्रलंबिताः । अलंचक्रुः शुभास्तुंगा विविधा ध्वजपंक्तयः ॥१२७॥
प्राकाराश्चैत्यवृक्षाश्च केतवो वनवेदिकाः । स्तूपाः सतोरणाः स्तंभा मानस्तंभाश्च तेऽखिलाः ॥१२८॥
प्रोक्तास्तीर्थंकरोत्सेधादुत्सेधेन द्विषड्गुणाः । देर्घ्यानुरूपमेतेषां रोद्ध्यामाहुर्गणाधिपाः ॥१२९॥

४३२० थों ॥१२०-१२१॥

चारों वनोंके भीतर जाकर पुनः एक दूसरा प्राकार था जो कि पहिले प्राकारके समान ही चार सदर दरवाजोंसे युक्त था। जिस प्रकार पहिले प्राकारमें तोरण आदिकी विभूति बतलाई गई है उसी प्रकारकी विभूतिसे युक्त था खाँवीके बर्णका और विशाल था। इस प्राकारके भी दोनों पसवाड़ोंमें पहिले प्राकारके पसवाड़ोंके समान दो नाट्यशालायें थीं एवं धूपसे जायमान धुआंसे समस्त दिशाओंको व्याप्त करनेवाले दो धूपघड़े विद्यमान थे। धूपघड़ोंके आगे दूसरी वीथीमें कल्पवृक्षोंका एक विशाल वन था जो कि फैली हुई उग्ररत्नोंकी प्रभासे समस्त अन्धकारका नाश करनेवाला और मनोहर था ॥१२२-१२४॥ उस कल्पवृक्षोंके वनके अन्दर अशोक आदि चार चैत्यवृक्ष थे जो कि अपनी महामनोहर कांतिसे अत्यन्त देदीप्यमान थे। उनके नीचेके भागमें भगवान जिनेन्द्रकी प्रतिमायें थीं एवं वे वृक्ष मय सिंहासन और छत्रोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभायमान थे ॥१२५॥ उन अशोक आदि वृक्षोंसे परिपूर्ण वनोंके पर्यंत भागमें एक वनवेदी थी जो कि कलश झाड़ी आदि मंगलीक द्रव्योंसे परिपूर्ण परमोत्तम चार सदर दरवाजोंसे शोभायमान थी ॥१२६॥ उससे आगेकी भूमिमें नाना प्रकारके रत्नमयी चबूतरोंके धारक स्तम्भोंके अग्रभागमें नाना प्रकारकी ध्वजायें फहरा रही थीं जो कि अत्यन्त शुभ थीं और बहुत ऊंची ऊंची थीं जिनसे कि वह भूमि अत्यंत शोभायमान जान पड़ती थी ॥१२७॥ समोशरणके अंदर रहनेवाले प्राकार चैत्यवृक्ष, ध्वजायें, वन वेदियां, स्तूप, तोरणोंसे अलंकृत स्तंभ और मानस्तम्भ इन सबकी ऊंचाई तीर्थंकरोंकी ऊंचाईसे बारह गुणी अधिक होती है अर्थात् जिस तीर्थंकरका समोवसरण होगा उस तीर्थंकरके शरीरकी जितनी ऊंचाई होगी उस

(?) क्रीड़ाद्रीणां च गेहानां वनानां च जिनागमे । तुंगत्वं ह्येकमेवोक्तं दक्षैरागमवेदिभिः ॥१३०॥
अचलानां भवेद्द्रौडध्यं स्वोत्सेधादष्टसंगुणं । स्तूपानां किल विस्तार मुच्छ्रायात्साधिकं मतं ॥१३१॥
उक्तंति वेदिकादीना स्वौत्सेधस्य चतुर्थकं । विस्तारं सुपुराणाज्ञाः सर्वागमाब्धिपारगाः ॥१३२॥
ततोऽभ्यंतरभूभागे नानाप्रासादपंक्तयः । द्वित्रिचतुस्तला रम्यास्तुंगा रत्नमया बभुः ॥१३३॥
वीथीनां मध्यभागे तु नवस्तूपाः समुध्ययुः । पद्मरागमयाः सिद्धजिनबिंबांद्यलंकृताः ॥१३४॥
स्तूपानामंतरेष्वेषां रत्नतोरणमालिकाः । बभुरिद्रधनुर्मंय्य इवोद्योतितखांगणाः ॥१३५॥
ततः प्रोल्लंघ्य तां भूमिं शुद्धस्फाटिकरत्नजः । नभः स्फाटिकशालोऽस्ति श्वेतिताखिलदिक्चयः ॥१३६॥
अस्यापि पूर्ववद्दिक्षु गोपुराणि विभाति च । पद्मरागमयान्येव निधिमंगलसंपदा ॥१३७॥

ऊंचाईसे समवसरणके अन्दर रहनेवाले परकोट आदिकी ऊंचाई नियमसे बारह गुणी होगी । तथा जितनी ऊंचाई होती है उसीके अनुकूल उनकी चौड़ाई होती है । यह समवसरण उन्नीसवें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथका था इसलिये उनके शरीरकी जितनी ऊंचाई थी उससे बारह गुणी इस समवसरणके प्राकार आदिकी ऊंचाई थी और ऊंचाईके अनुकूल चौड़ाई थी ॥१२९॥ क्रीड़ा पर्वत लतागृह और वनोंकी ऊंचाई आगमके जानकार पुरुषोंने आगममें एकसी ही बताई है ॥१३०॥ पुराणोंके जानकार समस्त आगमके पारगामियोंने पर्वतोंकी चौड़ाई अपनी अपनी ऊंचाईकी अपेक्षा आठ आठ गुणी मानी है । स्तूपोंकी जो ऊंचाई कही गई है उससे कुछ अधिक उनकी चौड़ाई मानी है तथा वनवेदी आदिका विस्तार उनकी ऊंचाईसे चौथा भाग माना है ॥१३१-१३२॥

वनवेदियोंके भीतरकी भूमिमें प्रासादोंकी पंक्तियां थीं जो कि दोखन तीन खन और चार खनवालीं थीं । महा मनोहर ऊंची ऊंची और रत्नमयी थीं ॥१३३॥ गलियोंके मध्य भागमें नौ स्तूप थे जो कि पद्मराग मणिमयी थे एवं सिद्ध भगवानकी प्रतिमाओंसे अलंकृत थे ॥१३४॥ स्तूपोंके मध्य भागोंमें रत्नमयी तोरण और मालिका थीं जिन्होंने कि अपनी कांतिसे समस्त आकाशको व्याप्त कर रक्खा था । अतएव जो इन्द्र धनुषमयी सरीखी जान पड़तीं थीं ॥१३५॥ स्तूपोंकी भूमिके बाद एक स्फटिक-मयी परकोटा था जो कि शुद्ध स्फटिक रत्नका बना हुआ था एवं अपनी प्रभासे समस्त दिशाओंको सफेद करनेवाला था अतएव जो आकाशका बना हुआ सरीखा जान पड़ता था ॥१३६॥ इस स्फटिकमयी परकोटकी भी चारों दिशाओंमें पहिलेके समान चार सुंदर दरवाजे थे जो कि अत्यन्त शोभायमान थे । वे दरवाजे पद्मराग

गदादिपाणयस्तेषु गोपुरेष्वभवन् सुराः । शालत्रये क्रमाद्वस्या भौमभावननाकजाः ॥१३८॥
मध्याद्यपीठसंलग्नाः शालांता स्फाटिकोद्भवाः । भित्तयः षोडशा भांति महावीथ्यंतरांश्रिताः ॥१३९॥
तासामुपरि विस्तीर्णो महान् श्रीमंडपोऽभवत । रत्नस्तं भोद्वृतः शुद्धनभःस्फाटिकनिर्मितः ॥१४०॥
तद्वृद्धक्षेत्रमध्येऽमात्प्रथमा पीठिका शुभा । वैडूर्यरत्ननिर्माणा मंगलद्रव्यभूतिभिः ॥१४१॥
धर्मचक्राणि वोढानि दीप्राणि यक्षमस्तकैः । सहस्राणि तस्यां वा भानुर्विवानि रेजिरे ॥१४२॥
तत्र षोडश सोपानपथ्याः स्यु षोडशांतराः । चतुर्दिक्षु सभाकोष्ठप्रवेशेषु च निर्मलाः ॥१४३॥
तस्योपरि भवेत्पीठं द्वितीयं सुहिरण्मयं । भूषित दिक्षु, अष्टासु चक्रेभाद्यष्टधाध्वजै ॥१४४॥
स्फुरन्मणिमयं पीठं तस्योपरि तृतीयकं । त्रिमेखलं व्यभासुंग तेजसा व्याप्तदिंगुखं ॥१४५॥

मणियोंसे बने हुए थे एवं पहिले प्राकारोंके दरवाजोंके समान ही निधियें और कलश झाड़ी आदि मंगलीक द्रव्योंसे युक्त थे ॥१३७॥ सदर दरवाजोंपर गदा आदि शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए देव थे उनमें भी पहिले परकोटके दरवाजोंपर हाथोंमें शस्त्र लिये व्यंतर देव खड़े थे। दूसरे परकोटके दरवाजोंपर भवनवासी देव थे एवं तीसरे परकोटके सदर दरवाजोंपर वैमानिक देव हाथमें हथियारोंको लिये द्वारपालोंका कार्य कर रहे थे ॥१३८॥ समवसरणकी भूमिके मध्य और आदिके भागसे सटी हुई परकोटोंके अन्ततक सोलह भीतियां थीं जो कि स्फटिक रत्नोंकी बनी थीं और विशाल गलियोंके अन्तरालोंमें विद्यमान थीं ॥१३९॥ उन स्फटिक मणिमयी भीतोंके ऊपर विशाल श्रीमंडप बना हुआ था जो कि विस्तृत था। रत्नमयी स्तम्भोंसे वेष्टित था और निर्मल स्फटिक पाषाणका बना हुआ था अतएव साक्षात् आकाशका बना हुआ जान पड़ता था ॥१४०॥ श्रीमंडपसे जितना क्षेत्र रुका हुआ था उस क्षेत्रके ठीक मध्यभाग में पहिली पीठिका (पीठ) थी जो कि वैडूर्यजातिकी हरी मणियोंसे बनी थी, अत्यंत शुभ थी एवं मंगलीक द्रव्य और अन्य विभूतियोंसे शोभायमान थीं ॥१४१॥ इस पीठिकाके अन्दर धर्मचक्र विद्यमान थे जिन्हें यक्षगण अपने मस्तकोंपर रक्खे थे, महा देदीप्यमान थे हजार हजार अराओंके धारक थे एवं सूर्यके प्रतिबिंबों सरीखे जान पड़ते थे ॥१४१॥ उसी जगहपर सोलह फासलोंसे व्याप्त सोलह सोपान मार्ग (जीने) थे जिनसे कि चारों दिशाओंमें विद्यमान कोठोंके अन्दर प्रवेश किया जाता था ॥१४३॥

उस प्रथम पीठके ऊपर दूसरा पीठ था जो कि सुवर्णमयी था एवं आठों दिशाओंमें चक्र और हाथी आदिके चिह्नोंके धारक आठ ध्वजाओंसे शोभायमान था ॥१४४॥ इस दूसरे पीठके ऊपर तीसरा पीठ था जो कि देदीप्यमान मणियोंका

तत्र गंधकुटीपृथ्वी सुगंधीकृतदिङ्मुखा। दिव्यामोदा परा भाति पुष्पप्रकरचर्चिता ॥१४६॥
तस्या मध्ये स्फुरन्नानारत्नाभाद्योतितांबरं। तुंगं सिंहासनं दिव्यं मेरुशृंगमिवाबभौ ॥१४७॥
विष्ट तदलंचक्रे दिव्यरूपी जगद्गुरुः। चतुर्भिरंगुलैः स्वेन महिम्नाऽस्पृष्टतत्तलः ॥१४८॥
आद्यैः कोष्ठे मुनींद्रौघा द्वितीये कल्पयोषितः। तृतीये क्षांतिकाः स्त्रियस्तुर्ये ज्योतिषां स्त्रियः ॥१४९॥
पंचमेऽखिलव्यंतरयः षष्ठेऽथ भावनागनाः। सप्तमे भावना देवा अष्टमे व्यंतरामराः ॥१५०॥
नवमे सर्वज्योतिष्का दशमे कल्पवासिनः। तथैकादशके(मे)मर्त्या अंतिमे पशवोऽखिलाः ॥१५१॥
एते द्विषड्गुणास्तंमल्लिनाथं परीत्य भक्तिलाः। तत्सन्मुखाः स्थिति चक्रुर्धर्मामृतपिपासिताः ॥१५२॥

बना हुआ था, तीन कटिनियोंसे शोभायमान था, उन्नत था और उसकी प्रचंड कांतिसे समस्त दिशायें जगमगाती थीं ॥१४५॥ इस तृतीय पीठपर गंधकुटी थी जो कि अपनी उत्कट सुगंधिसे समस्त दिशाओंको सुगंधित करनेवाली थी, दिव्य सुगंधिकी धारक थी, उत्कृष्ट थी एवं भांति भांतिके पुष्पोंके समूहसे व्याप्त थी ॥१४६॥ इस गंधकुटीके मध्य भागमें महा मनोहर सिंहासन विद्यमान था जो कि देदीप्यमान नाना प्रकारके रत्नोंकी प्रभासे समस्त आकाशको व्याप्त करनेवाला था, दिव्य था एवं मेरुका शिखर सरीखा जान पड़ता था। अतएव वह अत्यन्त शोभायमान जान पड़ता था ॥१४७॥ इसी पवित्र सिंहासनको[2] दिव्य रूपके धारक तीन जगतके गुरु भगवान जिनेन्द्रने सुशोभित कर रक्खा था और वे अपने अलौकिक माहात्म्यसे उसके तल भागका स्पर्श न कर चार अंगुल प्रमाण आकाशमें विराजते थे ॥१४८॥ इस दिव्य सिंहासनके चारों ओर देव आदिके बैठनेके बारह कोठे थे उनमेंसे पहिले कोठेमें मुनिगण विराजते थे, दूसरेमें कल्पवासी स्त्रियां, तीसरेमें आर्यिकायें, चौथेमें ज्योतिषी देवोंकी देवांगनायें, पांचवेंमें व्यन्तर देवोंकी देवियां, छठेमें भवनवासी देवोंकी देवांगनायें, सातवेंमें भवनवासी देव, आठवेंमें व्यन्तर देव, नौवेंमें समस्त ज्योतिषी देव, दशवेंमें वैमानिक देव, ग्यारहवेंमें मनुष्य और बारहवेंमें तिर्यंच बैठे थे ॥१४९-१५१॥ इस प्रकार भगवान मल्लिनाथको चारों ओरसे घेरकर ये बारह कोठोंमें बैठनेवाले अतिशय भक्ति रखनेवाले जीव धर्मरूपी अमृतके पीनेकी इच्छासे उनके सम्मुख स्थित हो गए ॥१५२॥

---

१. समवसरणका वर्णन हरिवंशपुराणमें भगवान नेमिनाथके समवसरणकी रचनाके समय विस्तारसे किया गया है।

२. अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च। भामंडलं दुंदुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणां। —पूजा पाठ

इत्युक्तैश्च गुणैर्विभूतिविविधैः सत्प्रातिहार्याष्टकैर्दिव्यैः, केवललब्धिभिश्च नवभिः संभूषितं कामदं ।
तीर्थेशं गुणसागरं निरुपमं दिव्यासने संस्थितं, देवास्तं ददृशुः प्रविश्य सुसभां भक्त्या स्फुरच्चक्षुषः॥१५३॥
भूयस्तं त्रिजगद्गुरुं गुणनिधिं, विश्वद्धिधर्माकरं भक्त्या देवगणः परीत्य सकलां वारत्रयं वासवाः ॥
देवीभिः सह कुड्मलीकृतकराश्चूडामणिद्योतिना, मूर्ध्ना तद्गुणराजतांश्च परमां भूत्या प्रणेमुस्तराम्॥१५४

असमगुणसमुद्रो विश्वतत्त्वप्रदीपो रहितसकलदोषो घातिकर्मारिहंता ।
त्रिभुवनपतिभव्यैः सेवितो वंदितश्च तदसमविभवाप्त्यै सोऽस्तु मे मल्लिनाथः ॥१५५॥

इति श्रीमल्लिनाथचरित्रे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते मल्लिनाथनिष्क्रमणकेवलोत्पत्ति-वर्णनो नाम षष्ठः परिच्छेदः ॥६॥

आनंदसे फुरफुराते हुए नेत्रोंके धारक देवोंने जिस समय समवसरणके मंडपमें प्रवेश किया उस समय भगवान जिनेन्द्रको देखा । वे भगवान उस समय बारह कोठोंमें बैठनेवाले प्राणीगणोंसे शोभायमान थे अनेक प्रकारकी विभूतियोंसे व्याप्त थे। अशोकवृक्षका होना १ रत्नमयी सिंहासन २ भगवानके शिरपर तीन छत्रोंका फिरना ३ भगवानके पीछे भामंडलका होना ४ भगवानके मुखसे निरक्षरी दिव्यध्वनिका खिरना ५ देवोंके द्वारा पुष्पवृष्टिका होना ६ यक्ष देवोंके द्वारा चौंसठ चमरोंका ढुरना ७ और ८ दुन्दुभी बाजोंका बजना इस प्रकार आठ प्रातिहार्योंसे शोभायमान थे । क्षायिकज्ञान १ क्षायिकदर्शन २ क्षायिकदान ३ क्षायिकलाभ ४ क्षायिकभोग ५ क्षायिक उपभोग ६ क्षायिकवीर्य ७ क्षायिकसम्यक्त्व ८ और क्षायिकचारित्र ९ इस प्रकार नौ केवललब्धियोंसे भूषित थे । समस्त प्रकारकी वांछाओंको पूरण करनेवाले थे, संसारके दुःखोंसे तारनेवाले तीर्थके स्वामी थे, सम्यक्त्व आदि गुणोंके समुद्र थे, उपमातीत थे एवं दिव्य आसन पर विराजमान थे ॥१५३॥ उसके बाद तीनों लोकके गुरु, गुणोंके खजाने समस्त प्रकारकी ऋद्धियां और धर्मके स्थान भगवान जिनेंद्रको समस्त इन्द्रोंने भक्तिपूर्वक अपने सहचारी देव और देवांगनाओंके साथ तीन प्रदक्षिणा दीं एवं गुणोंमें अनुरक्त हो सबों ने अपने-अपने हाथोंको जोड़कर चूड़ामणियोंसे जगमगानेवाले मस्तकोंसे भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥१५४॥ इस प्रकार समस्त अनुपम गुणोंके समुद्र समस्त तत्वोंके प्रकाश करनेवाले, समस्त दोषोंसे रहित, ज्ञानावरण आदि घातिया कर्मरूपी वैरियोंके नाशक, मोक्षाभिलाषी तीनों लोकके इन्द्रोंसे सेवित और वंदित वे भगवान अपने समान असाधारण ऐश्वर्य हमें भी प्रदान करें ॥१५५॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिकामें भगवान मल्लिनाथका दीक्षा कल्याण और केवलज्ञान कल्याणका वर्णन करने वाला छठा परिच्छेद समाप्त हुआ ॥६॥

सप्तमः परिच्छेदः

धर्मोपदेशनोद्युक्तं श्रीमंतं त्रिजगद्गुरुं। स्थितं सदसि भव्यानां स्तुवे देवं गुणार्णवं ॥१॥
अथ शक्रा मुदोत्थाय पूजां तस्य क्रमाब्जयोः। परया दिव्यसामग्र्या भक्त्या चक्रुः सहामरैः ॥२॥
स्वच्छनीरैः पवित्रैश्च दिव्यगंधैर्विलेपनैः। मुक्ताफलाक्षतैः कल्पवृक्षपुष्पजदामभिः ॥३॥
सुधापिंडसुनैवेद्यै रत्नदीपैश्च नाकजैः। धूपैः फलोत्तमैः पुष्पांजलिभिर्गीतनर्तनैः ॥४॥
भर्तुरग्रेशची भक्त्या विचित्रंबलिमूर्जितं। नानावर्णैः सुशोभाढ्यै रत्न चूर्णैश्चकार सा ॥५॥
ततो हृष्टाः सुराधीशा भक्तिभार वशीकृताः। तुतिं प्रारेभिरे कर्तुं तस्यासाधारणैर्गुणै ॥६॥
अद्य नाथ ! वयं धन्याः सफलं नोऽद्य जीवितं। यतोऽस्माभिर्महापुण्याद् दृष्टौ ते चरणांबुजौ ॥७॥
त्वं देव ! जगतां नाथस्त्वं गुरूणा महागुरुः। त्रिजगत्स्वामिनां प्राच्यस्त्वं प्रार्च्ययोगिनां ॥८॥

भव्योंकी सभा—समवसरणके अन्दर विराजमान, समीचीन धर्मके उपदेश देनेके लिये उद्यत, बाह्य अन्तरंग दोनों प्रकारकी लक्ष्मीके स्वामी, तीन जगतके गुरु एवं अगणित गुणोंके समुद्र देव भगवान मल्लिनाथको मैं ग्रन्थकार मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं ॥१॥ इन्द्रगण जिस समय नमस्कार कर उठे उस समय उन्होंने देवोंके साथ पवित्र स्वच्छ जल, दिव्य चन्दन मुक्ताफलोंके अक्षत, कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी मालायें, अमृतके पिंडस्वरूप नैवेद्य, स्वर्गलोक सम्बन्धी रत्नमयी दीपक, धूप, उत्तम फल, पुष्पोंकी अंजली, गीत और नृत्यरूप उत्कृष्ट दिव्य सामग्री-से भगवान जिनेन्द्रके चरण कमलोंकी भक्तिभावसे सानन्द पूजा की ॥२-४॥ सौधर्म स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणीने भगवान जिनेन्द्रके सामने नाना प्रकारके वर्ण वाले अत्यन्त शोभासे शोभायमान रत्नमयी चूर्णोंसे देदीप्यमान बलि [साढना] माड़ा ॥५॥ जिस समय यह कार्य समाप्त हो चुका उस समय भक्तिके भारसे वशीभूत और प्रसन्न चित्त देवेन्द्रोंने भगवान जिनेंद्रके असाधारण गुणोंकी इस प्रकार स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

तीव्र पुण्यके उदयसे आपके चरण कमलोंका आज हमें दर्शन हुआ है इस-लिये आज हम धन्य हैं और हमारा जीवन सफल है ॥५-६॥ हे देव ! आप तीन जगत-के नाथ हो। गुरुओंके महागुरु हो। तीन जगतके स्वामियोंके अर्थात् देवेन्द्र नरेन्द्र और नागेन्द्रोंके आप स्वामी हो एवं जिन योगियोंको बड़े पदवीधारी भी पूजते हैं वे

ज्ञानिनां त्वं च सर्वज्ञस्तपस्विना महातपाः । यागिना त्वं महायोगी जिनानां त्वं परो जिनः ॥९॥
विश्वोद्धर्तुमना दुःखान्निरीहस्त्वं जगद्धितः । द्विधा श्रयलंकृतोपि त्वं महानिर्ग्रंथराड् भुवि ॥१०॥
शच्याद्यैः सेव्यपादोपि महास्तवं ब्रह्मचारिणां । ज्ञातविश्वार्थसर्वोऽपि त्वमज्ञज्ञानदूरगः ॥११॥
त्वद्दर्शनांशुभिर्देवाज्ञानध्वांतचयं द्रुतं । एनसामा क्षयंनोऽगाद्यथात्र भानुना तमः ॥१२॥
नित्यं स्वामिन् ! नमस्तुभ्यं स्वर्मुक्त्यै गुणसिंधवे । नमस्ते दिव्यदेहाय नमस्ते घातिघातिने ॥१३॥
भवद्भूतिं समग्रां त्वं देहि नः कृपयाद्रुतं । कृपानाथो यतस्त्वं हि याचकानां सुरद्रुमः ॥१४॥
इति भक्त्या स्तवं कृत्वा प्राध्येष्टप्रार्थनां परां । नत्वा स्व स्वं प्रकोष्ठं तेऽभजंस्तत्सम्मुखाश्चिदे ॥१५॥
अथ दृष्ट्वागणाधीशो विशाखाख्यः समग्रधीः । महर्द्धिको गणान् सर्वान् सद्धर्मश्रवणोत्सुकान् ॥१६॥

पूज्य योगी भी आपकी सेवा करते हैं । हे भगवान ! ज्ञानियोंमें आप सर्वज्ञ हैं प्रचण्ड तप तपनेवाले तपस्वियोंमें महा तपस्वी हैं, योगियोंके अन्दर महायोगी और कर्मोंके जीतने वाले जिनोंमें आप उत्कृष्ट जिन हैं ॥७-९॥ हे भगवान ! आपका चित्त संसार-के दुखोंसे समस्त जगत्को उद्धार करनेका है, आपको संसारके किसी भी पदार्थमें इच्छा नहीं इसलिये आप निरीह हैं, समस्त जगतका हित करनेवाले हैं, बहिरङ्ग और अन्तरंग दोनों प्रकारकी लक्ष्मीसे शोभायमान हैं और संसारमें समस्त निर्ग्रंथोंके आप राजा हैं ॥१०॥ हे भगवान ! यह बड़े अचरजकी बात है कि इन्द्राणी आदि आपके चरण कमलोंकी सेवा करती हैं तब भी आप ब्रह्मचारी हैं, यद्यपि आप समस्त संसारके पदार्थोंके जानकार हैं तथापि इन्द्रियोंके ज्ञानसे आप दूर हैं अर्थात् इन्द्रियजन्य ज्ञान आपके अन्दर नहीं ॥११॥ हे भगवान ! जिस प्रकार सूर्यके द्वारा अंधकारका नाश होता है उसी प्रकार आपके दर्शनरूपी किरणोंसे हमारा अज्ञानरूपी अंधकार और पापों-का क्षय हो गया ॥१२॥ हे भगवान ! आप गुणोंके समुद्र हैं इसलिये स्वर्ग और मोक्षकी अभिलाषासे आपके लिये नमस्कार है, आप दिव्य शरीरके धारक हैं और घातिया कर्मोंके नाश करनेवाले हैं इसलिये आपके लिये नमस्कार है ॥१३॥ विशेष क्या ? बस ! सविनय प्रार्थना यही है कि आपने जिस अलौकिक विभूतिको प्राप्त किया है वह कृपाकर बहुत शीघ्र हमें भी प्रदान करें क्योंकि आप संसारके अन्दर कृपानाथ हैं और याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हैं ॥१४॥ इस प्रकार देवेन्द्रोंने भक्तिपूर्वक भगवान जिनेन्द्रकी स्तुतिकी जिस अभीष्ट वस्तुकी उन्हें प्रार्थना करनी थी वह प्रार्थनाकी एवं वास्तविक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वे भगवान जिनेन्द्रके सन्मुख अपने अपने कोठोंमें जाकर बैठ गए ॥१५॥ भगवान मल्लिनाथके सबसे प्रधान गणधर विशाख

उत्थाय कुड्मलीकृत्य करौ नत्वा जगद्गुरुं । स्तुत्वा स्तुतिशतैर्भूयोऽकरोत्पृच्छामितिस्वयं ॥१७॥
देव ! त्वं विश्वतत्त्वानि समग्रं धर्मलक्षणं । द्वादशांगभवा सर्वं नः सर्वज्ञ ! निरूपय ॥१८॥
ततोऽवादीज्जगन्नाथो गंभीरध्वनिना चिदे । विश्वसत्त्वहितार्थाय मुक्तिमार्गप्रवृत्तये ॥१९॥
मुखाम्बुजेऽस्य वक्तुर्विकृतिनाभून्मनाङ्न च । तालोष्ठानां परिस्पंदो निर्यंतो भारतो मुखात् ॥२०॥
शृणु त्वं हे गणाधीश ! धीमन्नेकाग्रचेतसा । सर्वैः गणैः समं सर्वं वक्ष्ये वः श्रुतविस्तरं ॥२१॥
जीवाजीवास्रवा बंधः संवरो निर्जरा शिवः । इति सप्तैव तत्त्वानि प्रोक्तानि श्रीजिनेशिना ॥२२॥
तेषां भेदं च विस्तारं हेयाहेयं च लक्षणं । द्रव्यपर्याय भेदांश्च रचयामास सोंऽजसा ॥२३॥

थे जो कि पूर्ण बुद्धिके धारक थे, नाना प्रकारकी ऋद्धियोंको प्राप्त थे, जिस सयय उन्होंने देखा कि कोठोंमें बैठनेवाले समस्त भव्य जीव धर्मका स्वरूप जाननेके लिए उत्सुक हैं वे उठे, हाथोंको जोड़कर उन्होंने तीन जगतके गुरु भगवान जिनेन्द्रको भक्तिभावसे नमस्कार किया । सैकड़ों प्रकारके स्तुति परिपूर्ण वचनोंसे स्तुति की एवं स्वयं इस प्रकार भगवान जिनेन्द्रसे पूछने लगे—

हे देव ! आप सर्वज्ञ हैं इसलिये तत्त्वोंका स्वरूप, धर्मका अखंड लक्षण और बारह अंगोंके अन्दर जो जो बातें बतलाई गई हैं उन सब बातोंके जानकार हैं । कृपाकर उन सब बातोंका हमारे जाननेके लिये स्वरूप वर्णन करिये ॥१६-१८॥ गणधर विशाख की इस प्रकारकी पवित्र धर्म जिज्ञासा सुनकर समस्त प्राणियोंका हित संपादन करनेके लिये और मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति प्रकट करनेके लिये "जीवोंको वास्तविक ज्ञान हो" इस कृपासे प्रेरित वे भगवान जिनेन्द्र धर्मोपदेशके लिए प्रवृत्त हो गये ॥१९॥ यह नियम है कि वक्ता जिस समय बोलता है उसके मुखपर कुछ विकार और तालु ओठोंका हलन चलन होने लगता है । परन्तु जिस समय भगवान धर्मोपदेशके लिये प्रवृत्त हुए थे उस समय उनके मुखपर किसी प्रकारका विकार नहीं प्रतीत होता था एवं तालु ओंठ आदिका हलन चलन भी किसी प्रकारसे नहीं होता था इसलिये इस आश्चर्यकारी रूपसे भगवान जिनेन्द्रके मुखसे वचन भंगी निकलती थी । वे भगवान जिनेन्द्र, गणधर विशाखको उत्तरमें इस प्रकार कहने लगे—हे बुद्धिमान समस्त गणसभासदोंके स्वामी ! मैं आगमके स्वरूपका विस्तारसे वर्णन करता हूँ वह तुम्हें और समस्त गणको चित्त एकाग्र कर ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए ।

जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व सात हैं । इन जीव अजीव आदि तत्त्वोंके भेद, उनका विस्तार, कौन तत्त्व हेय है और कौन उपा-

अपारसंसृतेर्भव्यान् यदुद्धृत्य शिवालये । धरत्येव स धर्मोऽत्र ज्ञेयोऽनंतसुखार्णवः ॥२४॥
समग्रेतरभेदेन द्विधा धर्मो दयामयः । यतिश्रावकदक्षाणां स्वर्गमोक्षप्रदोमतः ॥२५॥
आदौ सद्दर्शनं धार्यं धर्ममूलं गुणैर्युतं । त्यक्तदोषं गृहस्थश्चेत् संयतैर्मुक्तबल्लभं ॥२६॥
मद्यमांसमधून्येव सहोदुम्बरपंचकैः । त्यक्त्वा मूलगुणा अष्टौ धार्या आदौ व्रताप्तये ॥२७॥
यः सप्तव्यसनं त्यक्त्वा धत्ते मूलगुणाष्टकं । सम्यग्दर्शनसंशुद्धस्तस्याद्या प्रतिमा मता ॥२८॥

देय है यह बात, जीव अर्थात् आत्माका स्वरूप और द्रव्य पर्यायोंके भेद, इन सब बातोंको उन्होंने कहा और बोले कि ॥२०-२३॥ इस संसाररूपी समुद्र अपार है इस अपार संसाररूपी समुद्रसे उठाकर जो जीवोंको मोक्षमें ले जाकर रक्खे वह धर्म कहा जाता है और वह अनन्ते सुखोंका समुद्र स्वरूप है ॥२४॥ वह दयामय धर्म, सकल और विकलके भेदसे दो प्रकारका है। सकल धर्मको धारण करनेवाले मुनि होते हैं और विकल धर्मको धारण करनेवाले श्रावक होते हैं एवं वह स्वर्ग और मोक्ष-के सुखोंका प्रदान करनेवाला है ॥२५॥ गृहस्थोंकी ग्यारह प्रतिमाओंको वर्णन करते हुए वे जिनेंद्र कहने लगे—धर्मका मूलकारण समस्त दोषोंसे रहित सम्यग्दर्शन है और वह मोक्षकी परम प्यारी वस्तु है। जो महानुभाव धर्मको धारण कर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं वे चाहे गृहस्थ वा मुनि कोई हों उन्हें सबसे पहले सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये। मद्य मांस मधु और पांच उदंबर अर्थात् ऊमर कठूमर कटहर पीपर और पाकर इन आठोंका त्याग गृहस्थोंका आठ मूलगुण है। जो महानुभाव अणुव्रत वा महाव्रतोंके धारण करनेके अभिलाषी हैं उन्हें पहिले इन आठ मूलगुणोंको धारण करना चाहिये। जूआ खेलना १ शराब पीना २ मांस खाना ३ वेश्यासेवन करना ४ परनारी सेवन करना ५ चोरी करना ६ और शिकार खेलना ७ ये सात व्यसन माने हैं इन सातों प्रकारके व्यसनोंका सर्वथा त्यागकर जो पुरुष आठ मूलगुणोंको धारण करता है वह सम्यग्दर्शनसे शुद्ध कहा जाता है एवं जो महानुभाव इस प्रकार सात व्यसनोंका त्यागकर आठ मूलगुणोंको धारण करता है वह दर्शननामक पहिली

---

१. सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः । पंचगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्व पथगृह्यः ॥१३७॥
जो महानुभाव सम्यग्दर्शनसे शुद्ध हो, संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त हो, पाँचों परमेष्ठियोंके चरणों-को शरण समझे और समीचीन मार्गका ग्रहण करनेवाला हो वह महानुभाव पहिली प्रतिमा दर्शन प्रतिमा-का धारण करनेवाला है। —रत्नकरण्डश्रावकाचार।
मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकं । अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रवणोत्तमाः ॥६६॥—रत्नकण्डश्रावकाचार

अणुव्रतानि पंचैव त्रिप्रकारं गुणव्रतं। शिक्षाव्रतानि चत्वारि द्वादशेति व्रतान्यपि ॥२९॥
मनोवाक्काययोगेन कृतादित्रसघातनं। यो न कुर्यात्सुधीस्तस्य भवेदाद्यगुणं व्रतं ॥३०॥
सर्वव्रत समूहानामहिंसा जननी मता। खानिर्विश्वगुणानां च धरा धर्मतरोः परा ॥३१॥
परपीडाकरं स्थूलमसत्यं यः कृतादिभिः। न वक्ति जातु धीमान् स भजेत्सत्यमणुव्रतं ॥३२॥
सत्यं हितं मितं तथ्यं वधबंधादिदूरगं। वक्तव्यं व्रतिभिर्नित्यं मधुरं धर्मसूचकं ॥३३॥
नष्टं वा पतितं स्थूलपरवस्त्वादि विस्मृतं। पथ्यादौ गृह्यते यन्न तत्तृतीयं व्रतं स्मृतं ॥३४॥
मात्रादिसदृशाः सर्वा ये पश्यन्ति परस्त्रियः। न कुर्वंति मनःप्रागं तेषां तुर्यं मणुव्रतं ॥३५॥

प्रतिमाका धारक माना जाता है ॥२५-२८॥ हिंसा १ चोरी २ झूठ ३ कुशील ४ और परिग्रह ५ स्थूलरूपसे इन पांचों पापोंका त्याग करना पांच प्रकारका अणुव्रत है। दिग्व्रत अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत इस प्रकार ये तीन गुणव्रत हैं एवं देशावकाशिक १ सामायिक २ प्रोषधोपवास ३ और अतिथिसंविभागव्रत ४ ये चार शिक्षाव्रत हैं इस प्रकार ये बारहव्रत श्रावकोंके हैं ॥२९॥ मनसे करना कराना और करनेकी अनुमोदना करना, वचनसे करना कराना और अनुमोदना करना एवं शरीरसे करना कराना और अनुमोदना करना इस प्रकार मनवचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जो दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवोंका घात नहीं करना है वह पहिला अहिंसा अणुव्रत कहा जाता है ॥३०॥ यह अहिंसा समस्त व्रतोंकी जननी है अर्थात् जबतक हृदयमें अहिंसाकी सत्ता नहीं है तबतक किसी भी व्रतका पालन नहीं हो सकता। यह समस्त गुणोंकी खान है। अहिंसा के पालन करनेसे ही आत्मामें समस्त गुणोंकी प्राप्ति होती है एवं धर्मरूपी वृक्षोंको उत्पन्न करने वाली उत्तम भूमि है— अहिंसाके पालनसे ही वास्तविक धर्मकी उत्पत्ति होती है ॥३१॥ मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे दूसरेको पीड़ा करनेवाले स्थूल झूंठका न बोलना सत्य अणुव्रत कहा जाता है जो महानुभाव सत्य अणुव्रतके पालन करनेवाले हैं उन्हें चाहिये कि जब बोलें उस समय सत्य ही बोलें। हितकारी बोलें। बहुत थोड़ा परिमित बोलें। पक्षपात् रहित निर्दोष बोलें। "मारो बांधो" इत्यादि शब्द कभी न बोलें एवं बहुत मीठा और धर्मके स्वरूपका सूचन करनेवाला वचन बोलें ॥३२-३३॥ जो सोना चांदी आदि वस्तुयें नष्ट हों अर्थात् जमीन आदिके अन्दर गड़ी आदि हों वा मार्ग आदिमें गिरी पड़ी हों वा किसी कारण वश भूली हुई हों उन्हें मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जो ग्रहण नहीं करना है वह तीसरा अचौर्य नामका अणुव्रत है।

क्षेत्रादिदशसंगानां प्रमाणं यद्विधीयते । संतोषाल्लोभमाहत्य तत्पंचममणुव्रतं ॥३६॥
पौषधास्वर्गपर्यंतं फलं पुण्यं सदा सतां । पापादिसंवरं पंचाणुव्रतानि फलंति च ॥३७॥
संख्या या क्रियते दक्षैर्जीवघातादिहानये । दिग्देशानां प्रणीतं तज्जिनैर्दिग्विरतिव्रतं ॥३८॥

परस्त्रियोंको जो माता आदिके समान समझता है अर्थात् अपनेसे छोटी स्त्रीमें पुत्रीके भाव, बराबर वालीमें बहन सरीखे भाव और बड़ीमें माता सरीखे भाव होना है एवं उन्हें देखकर जरा भी राग भावका न होना है वह चौथा ब्रह्मचर्य (स्वदारसंतोष) नामका अणुव्रत है ॥३५॥ तथा संतोषको हृदयमें धारणकर और लोभका सर्वथा त्यागकर ऊपर जो क्षेत्र वस्तु आदि दश प्रकारके परिग्रह कहे गये हैं उनका परिमाण कर लेना है अर्थात् हम अमुक चीज इतनी ही रक्खेंगे इस प्रकारकी मर्यादा बांध लेना है वह पाँचवाँ परिग्रह परिमाण नामका अणुव्रत है ॥३६॥ इन पाँचों अणुव्रतों-के पालन करनेका फल यह है कि पंचाणुव्रती महानुभाव पवित्र पुण्य उपार्जन कर सोलहवें स्वर्ग तकके सुखोंको भोगते हैं एवं पापके आगमनको रोकते हैं ॥३७॥

दिशाओंकी मर्यादाकर उनसे आगे न जाना दिग्विरति कही जाती है । जीवों-के घात आदि न हों, इस पवित्र अभिलाषासे जो दिशाओंके अन्दर यह परिमाण कर लेना कि अमुक दिशामें मैं इतने कोस तक जाऊँगा उससे आगे न जाऊंगा वह दिग्विरति नामका गुणव्रत है ॥३८॥ जिन जिन कार्योंसे व्यर्थ ही पापका आस्रव होता हो उन कार्योंका जहाँपर त्याग हो एवं अपध्यान-खोटे ध्यान आदिका भी त्याग हो वह अनर्थदण्ड व्रत है । इसका विशेष तात्पर्य यह है—

बिना प्रयोजन ही जीवोंको दण्ड देना अनर्थदण्ड कहा जाता है एवं उसका त्यागकर देना अनर्थदण्डव्रत नामका गुणव्रत है । अनर्थदण्डके पापोपदेश १ हिंसादान २ अपध्यान ३ दुःश्रुति ४ और प्रमादचर्या ५ ये पाँच भेद हैं । मारना बांधना बहुत बोझा लादना आदि रूपसेतिर्यंचोंको क्लेश करनेवाला उपदेश देना, व्यापारका उपदेश देना, जिस कार्यके करनेमें छह कायके जीवोंकी हिंसा होती हो ऐसा हिंसा परिपूर्ण उपदेश देना, वा महल आदिका बनवाना रूप आरम्भका उपदेश देना एवं छल कपट धोखेबाजीका उपदेश देना इस प्रकार पापका कारण उपदेश देना पापोपदेश नामका अनर्थ दण्ड है । फरसा तलवार फावड़ा अग्नि आयुध और बेड़ी आदि हिंसाके उपकरणोंका दूसरेको प्रदान करना हिंसादान नामका अनर्थदण्ड है । तीव्र द्वेष वा तीव्र रागसे पराये स्त्री पुत्र आदिके विषयमें यह चिन्तवन करना कि यह बँध जाय वा मर जाय वा छिद

वृथा पापास्रवः सर्वोऽत्रापध्यानादिहापनैः। यो निराक्रियते भव्यैस्तद्द्वितीयं गुणव्रतं ॥३९॥
ताम्बूलान्नादिभोगानां प्रमाणं क्रियते चयत्। स्त्रीभूषाद्युपभोगानां तृतीयं तद्गुणव्रतं ॥४०॥
शृंगवेरादिकान् कंदाश्चनंतजीवसंकुलान्। मूलकोटफलान्निंद्यान् पुष्पादीन् विषवत्त्यजेत् ॥४१॥
दिशां या गमने संख्या दोनं प्रति विधीयते। क्षेत्रादिसीमया मुक्त्यं तत्स्याद्देशावकाशिकं ॥४२॥
त्रिकालं क्रियते यद्धि नित्यं सामायिकं बुधैः। त्रिशुद्धया मुक्तये शिक्षाव्रतं स्यात्तद्द्वितीयकं ॥४३॥

जाय आदि तो अच्छा हो ऐसे खोटे चिंतवनका नाम अपध्यान नामका अनर्थदण्ड है। जो शास्त्र असि, मषि, कृषि आदि आरम्भ, धन धान्य आदिक परिग्रह, रौद्र कामोंका साहस मिथ्यात्व द्वेष राग अहंकार और कामके विकारोंको उत्पन्न करनेवाले हों ऐसे खोटे शास्त्रोंका सुनना विचारना दुःश्रुति नामका अनर्थदण्ड है। पृथिवी खोदना जल बहाना अग्निका जलाना और पवनका फूंकना इस प्रकार व्यर्थ आरम्भ करना, बिना कारण वनस्पतिका छेदना स्वयं चलना और दूसरोंको चलाना यह सब प्रमादचर्या नामका अनर्थदण्ड है। इन पांचों प्रकारके अनर्थदण्डोंका त्यागना अनर्थदण्डव्रत कहा जाता है।

तथा ताम्बूल अन्न आदि भोगरूप पदार्थोंका और स्त्री भूषण वस्त्र आदि उपभोग स्वरूप पदार्थोंका जो प्रमाण करना है वह भोगोपभोग परिमाण नामका गुणव्रत है। जो वस्तु एक बार भोगकर पुनः भोगनेमें न आवे वह भोग और जो बार-बार भोगनेमें आवे वह उपभोग स्वरूप कहलाती है। पान इलायची भोजन आदि पदार्थ एक ही बार भोगनेमें आते हैं इसलिये ये भोगस्वरूप है एवं स्त्री भूषण आदि पदार्थ बार बार भोगनेमें आते हैं इसलिये ये उपभोग स्वरूप हैं। इन तीनों दिग्व्रतोंके साथ साथ अनंते जीवोंसे व्याप्त अदरख आदि कन्दमूलोंको, जिनके मूल भागमें कीड़े हों ऐसे फलोंको और निंद्य पुष्प आदि चीजोंको भी विषके समान अहितकारी जान छोड़ देना चाहिये ॥३९-४१॥ पूर्व दिशामें सौ कोस तक जाऊंगा वा उत्तर दिशामें मैं पचास आदि कोश तक जाऊँगा ऐसा परिमाण करना तो दिग्व्रतका विषय है परन्तु इसी परिमाणमें से क्षेत्रकी मर्यादा बांधकर जो प्रतिदिन यह परिमाण कर लेना है कि आज मैं अमुक घर तक जाऊँगा वा मन्दिर तक जाऊँगा मन्दिरसे बाहर नहीं जाऊँगा वह देशावकाशिक नामका शिक्षाव्रत कहलाता है। यह देशावकाशिक शिक्षाव्रत विशेष रूपसे जीवकी हिंसाका निरोधक होनेसे निर्मलताका कारण है इसलिये मोक्षको प्राप्त करानेवाला माना जाता है ॥४२॥ सामायिकका विधान तीनों काल

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां निरारम्भो विधीयते। नियमेनोपवासो हस्तत्प्रोषधव्रतं मतं ॥४४॥
पात्रदानाय नित्यं यद् गृहद्वारं विलोक्यते। चतुर्धा दीयते दानं तत्याच्छिक्षाव्रतांतिमं ॥४५॥
प्रतिपालयतीमानि यो द्वादशव्रतान्यपि। अतीचारान् विना सोऽप्याद्यांतिः षोडशं दिवं ॥४६॥
यावज्जीवे प्रपाल्योच्चैर्व्रतानि सकलान्यपि। अन्ते सल्लेखना कार्या विधिना तत्फलाप्तये ॥४७॥
द्वादशव्रतसर्वाणि यो विधत्ते बुधोत्तमः। द्वितीया प्रतिमा तस्य भवेत्स्वर्गश्रियः सखी ॥४८॥

माना जाता है जो महानुभाव मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे मन वचन कायकी शुद्धतासे तीनों काल सामायिक करते हैं उनके सामायिक नामका दूसरा शिक्षाव्रत होता है ॥४३॥ प्रत्येक मासकी अष्टमी चतुर्दशीके दिन किसी प्रकारके आरम्भको न कर नियमसे उपवास करना है वह प्रोषधोपवास नामका तीसरा शिक्षाव्रत है ॥४४॥ उत्तम आदि पात्रोंको दान देनेके लिये जो प्रतिदिन अपने घरका द्वार देखते हैं द्वाराप्रेक्षण करते हैं तथा पात्रोंके प्राप्त होनेपर उन्हें आहार औषधि आदि चारों प्रकारका दान करते हैं वे महानुभाव अतिथि संविभाग नामके चौथे शिक्षाव्रतके धारक हैं जिसकी कोई निश्चित तिथि न हो वह अतिथि कहलाता है और संविभागका अर्थ निर्दोष वस्तुका देना है अर्थात् मुनि आदि अतिथियोंके लिये जो आहार औषधि आदिका प्रदान करना है वह अतिथि संविभागका अन्वर्थ है ॥४५॥ ग्रन्थकार फल प्रदर्शन करते हुए कहते हैं कि जो महानुभाव उपर्युक्त व्रतोंका अतीचार रहित पालन करते हैं उन्हें सोलहवें स्वर्गके दिव्य सुख भोगनेके लिये प्राप्त होते हैं ॥४६॥

व्रतोंका पालन करनेवालोंके लिये अन्त समयमें सल्लेखनाका भी विधान है। सल्लेखनाका लक्षण यह बतलाया गया है—कि तीव्र उपसर्ग आनेपर वा दुर्भिक्ष उपस्थित होनेपर वा अत्यन्त वृद्धावस्था होनेपर अथवा तीव्र रोगके उपस्थित होनेपर जिसका कि किसी प्रकारसे प्रतीकार न हो सके—मृत्युका ही समय आकर उपस्थित हो जाय उस समय किसी कषाय आदिसे प्रेरित न होकर धर्मके लिये जो सन्यासपूर्वक शरीरका त्याग करना है वह सल्लेखना व्रत है। जो महानुभाव बारह व्रतोंके पालन करनेवाले हैं उन्हें उपर्युक्त व्रतोंका यावज्जीव पालनकर अन्तमें मृत्युके समय उन समस्त व्रतोंके पवित्र फलकी प्राप्तिके लिये शुद्ध भावोंसे सल्लेखना करनी चाहिये ॥४७॥ इस प्रकार जो महानुभाव इन बारह व्रतोंका अतीचाररहित विशुद्ध भावोंसे पालन करता है उसके दूसरी प्रतिमा होती है जो कि स्वर्गरूपी लक्ष्मीकी सखी स्वरूप

सामायिकाभिधा ज्ञेया तृतीया प्रतिमा परा । सत्प्रोषधोपवासाख्या चतुर्थी कर्मनाशिनी ॥४९॥
पत्रबीजफलादीनि सचित्तानि त्यजेत्त्रिधा । चाप्रासुकजलादीनि पंचमी प्रतिमाप्तये ॥५०॥
अशनं पानकं खाद्य स्वाद्यं च त्यज्यतेयै । अखाद्यवद्दयानिशि षत् षष्ठी च प्रतिमा हि सा ॥५१॥
यो विधते इमाः षट् प्रतिमा दोषतिगा बुधः । जघन्यः श्रावकः प्रोक्तः सदृग्शुद्धो जिनागमे ॥५२॥
स्वाबामिव सर्वनारीं मत्वाबामेध्यखानिकां । पालयते ब्रह्मचर्यं यत्सप्तमो प्रतिमात्र सा ॥५३॥
पापाकरो गृहारम्भस्त्यज्यते सकलो हि यः । मनोवाकाययोगैः स्यादष्टमी प्रतिमात्र सा ॥५४॥

मानी गई है ॥४८॥ तीसरी सामायिक प्रतिमा है जो पुरुष प्रत्येक दिशामें तीन तीन आवर्त इस प्रकार बारह आवर्तोंको कर एवं चारों दिशाओंमें चार प्रणाम कर स्थिति होनेवाला हो यथाजात रूपका धारक हो दोनों प्रकारके आसनोंसे युक्त हो मन वचन कायको शुद्ध रखनेवाला हो और तीनों काल सामयिक करनेवाला हो वह सामायिक प्रतिमाका धारक है । चौथी प्रतिमाका नाम सत्प्रोषधोपवास है । जो महानुभाव प्रत्येक मासको अष्टमी और चतुर्दशीको शक्तिको न छिपाकर प्रोषधोंका पालन करनेवाला है वह कर्मोंको नाश करनेवाली सत्प्रोषधोपवास प्रतिमाका धारक है । पांचवीं प्रतिमाका नाम सचित्तविरत है जो महानुभाव इस पांचवीं प्रतिमाका पालन करना चाहें उन्हें मन वचन और कायसे सचित्त पत्र बीज और फल आदिका सर्वथा त्यागकर देना चाहिये एवं उन्हें अप्रासुक जल भी ग्रहण न करना चाहिये ॥४९-५०॥ छठी प्रतिमा रात्रिभुक्तिविरत है । जो महानुभाव रात्रिभुक्ति प्रतिमाके धारक हैं उन्हें दया धर्मकी प्राप्तिके लिये जिस प्रकार अखाद्य—नहीं खाने योग्य, वस्तुका सर्वथा त्यागकर दिया जाता है उसी प्रकार रात्रिमें अन्न पान खाद्य और स्वाद्य इन चारों प्रकारके आहारोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये । अन्नसे यहाँपर भोजन लिया गया है । पानसे दूध शरबत आदि पीने योग्य पदार्थका ग्रहण है । खाद्यसे खाने योग्य पदार्थ पेड़ा लाडू आदि लिये हैं और स्वाद्यसे इलाची पान सुपारी आदि पदार्थोंका ग्रहण है ॥५१॥ इस प्रकार जो महानुभाव पहिली प्रतिमासे छठी प्रतिमा पर्यंत यह प्रतिमाओंका निर्दोष रूपसे पालन करनेवाला है वह सम्यग्दर्शनसे महानुभाव जघन्य श्रावक माना गया है ॥५२॥ सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा है । जो महानुभाव अपनी पराई समस्त स्त्रियोंको अपनी माताके समान मानता है एवं उनसे रंचमात्र भी रागका स्पर्श नहीं रखता वह महानुभाव ब्रह्मचर्य प्रतिमाका पालन करनेवाला ब्रह्मचारी है ॥५३॥ घरका समस्त आरम्भ अनेक प्रकारके पापोंका कारण है अर्थात् सेवा खेती व्यापार आदि

वस्त्रपात्रे विना शोषस्त्यज्यते यः परिग्रहः । सर्वानर्थकरीभूतो नवमो प्रतिमा हि सा ॥५५॥
नवंतां प्रतिमा धत्ते यः सदृष्टिर्विरागवान् । मध्यमः श्रावकः सोऽत्र मतो धर्मपरायणः ॥५६॥
मनाग् नानुमतिं धत्ते यो गेहाद्यादिकर्मणि । आहारादौ च तत्रैव प्रतिमा दशमी भवेत् ॥५७॥
अखाद्यमिव विज्ञाय सदोषाहारं मंजसा । योऽत्ति सांद्रक्षपाहारं तस्य स्यात्प्रतिमांतिमा ॥५८॥
एता यः प्रतिमा धत्ते सम्यग्दृष्टिः शिवाप्तये । उत्तमः श्रावकः प्रोक्तः स जिनैः स्वर्गभुक्तिभाग् ॥५९॥
गृहिणां मुदमुत्पाद्य गृहिधर्मोपदेशनैः । यतिधर्ममतो ब्रूते जिनो यतिसुखाप्तये ॥६०॥

कोई भी आरम्भ किया जाय नियमसे उससे पापोंकी उत्पत्ति होती है । जो महानुभाव इस प्रकार पापके कारण स्वरूप घरके आरम्भका मन वचन और कायकी शुद्धतापूर्वक त्याग करनेवाले हैं उन महानुभावोंके आरम्भ त्याग नामक आठवीं प्रतिमा होती है ॥५४॥ नवमी प्रतिमाका नाम परिचित परिग्रह त्याग है । परिग्रह समस्त अनर्थोंका मूल कारण है । जो महानुभाव वस्त्र और पात्रके सिवाय शेष समस्त प्रकारके परिग्रहका त्यागी है अर्थात् क्षेत्र वस्तु आदि ऊपर कहे गये दश प्रकारके परिग्रहसे ममत्व हटाकर जो महानुभाव निर्ममत्व परिणाममें लीन है और अपने आत्मस्वरूपके अन्दर विराजमान है और संतोषी है वह पुरुष परिचित परिग्रह त्याग नामक नवमी प्रतिमाका धारक है ॥५५॥ इस प्रकार जो सम्यग्दृष्टि रागरहित और धर्ममें लीन होकर इन नौ प्रतिमाओंका निर्दोष रूपसे पालन करनेवाला है वह मध्यम श्रावक कहा जाता है ॥५५॥ दशवीं प्रतिमाका नाम अनुमति त्याग है । जो महानुभाव घर आदिके कार्योंमें और आहार आदिमें रंचमात्र भी अपनी अनुमति (सलाह) नहीं देता अर्थात् सदा मध्यस्थ भाव रखता है वह महानुभाव अनुमति त्याग नामक दशवीं प्रतिमाका धारक कहा जाता है ॥५७॥ तथा ग्यारहवीं प्रतिमाका उत्कृष्ट श्रावक है । जो महानुभाव अपने निमित्तसे होनेवाले सदोष आहारको अखाद्य के समान निंदनीय जानकर उसे ग्रहण नहीं करता एवं क्षोभि वृत्तिसे आहार ग्रहण करता है अर्थात् घरबारसे विरक्त हो जहां मुनिराज विराजमान हों उस वनमें जाकर एवं गुरुके समीपमें व्रतोंको धारणकर तपका आचरण करता है, भिक्षाचर्यासे आहार ग्रहण करता है एवं चेलखंड कोपीनमात्र परिग्रहका धारक है वह पुरुष उत्कृष्ट श्रावक नामक ग्यारहवीं प्रतिमाका धारक है ॥५८॥ इस प्रकार जो सम्यग्दृष्टि मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषासे इन ग्यारह प्रतिमाओंका निर्दोष रूपसे पालन करता है वह उत्कृष्ट श्रावक है और वह स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिका पात्र है ॥५९॥ इस प्रकार गृहस्थ

महाव्रतानि पंचैव तथा समितयः पराः। पंचेन्द्रियनिरोधाश्च लोचं आवश्यकानि षट् ॥६१॥
अचेलत्वं तथा स्नानं क्षितौ हि शयनं परं। अदंतघर्षणं रागदूरं च स्थितिभोजनं ॥६२॥
एकभक्तं मुनेः प्रोक्ता मूलाख्या द्विचतुर्दश। मूलभूता मुनीनां सद्धर्मस्य मोक्षकारिणः ॥६३॥
प्राणांतेऽपि न मोक्तव्या धर्ममूला इमे गुणाः। मूलभूता यमादीनां जालूत्तरगुणाप्तये ॥६४॥
सर्वमूलगुणाचारात्परो धर्मश्च जायते। धर्मात्त्रिलोकत्रये शर्म महन्मोक्षः क्रमात्सतां ॥६५॥
इति मत्वा सदाराध्या विश्वे मूलगुणास्त्रिधा। जिनमुद्रां समादाय धर्मार्थिभिमुमुक्षुभिः ॥६६॥
उत्तमाद्या क्षमा मार्दवं तथार्जवमुत्तमं। सत्यं शौचं परः संयमस्तपस्त्याग उत्तमः ॥६७॥

धर्मका उपदेश देकर भगवान जिनेन्द्रने कहा कि गृहस्थोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये गृहस्थ धर्मका वर्णन कर दिया गया अब यतियोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये यति धर्मका व्याख्यान किया जाता है—

अहिंसा आदि पांच महाव्रत, ईर्या आदि पांच समितियां, पांच इन्द्रियोंका निरोध १५ केशोंका लोंच करना १६ समता आदि छह आवश्यक २२ समस्त वस्त्र का त्याग २३ यावज्जीव स्नानका न करना २४ भूमिपर शयन २५ दंतधावन नहीं करना २६ रागरहित खड़े खड़े आहार लेना २७ और एक बार लघु भोजनका करना ये २८ अट्ठाईस मुनियोंके मूल गुण हैं। समीचीन धर्मके मूलकारण होनेसे इनकी मूल गुण संज्ञा है एवं ये मोक्ष प्रदान करने वाले हैं ॥६०-६३॥ मूलगुणोंकी प्रशंसा करते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि—ये मूल गुण वास्तविक धर्मके मूल कारण हैं एवं यम नियम आदिकी उत्पत्तिके भी प्रधान कारण हैं एवं मूलगुणोंके पूर्ण रूपसे पालन करनेसे ही चौरासी लाख उत्तर गुणोंकी सिद्धि होती इसलिए जो पुरुष उत्तर गुणोंकी प्राप्तिके अभिलाषी हैं उन्हें प्राणोंके जानेपर भी कभी भी इन मूलगुणोंका परित्याग नहीं करना चाहिये तथा इन समस्त मूलगुणोंके आचरण करनेसे वास्तविक धर्मकी प्राप्ति होती है उस धर्मकी कृपासे तीनों लोकका महान कल्याण प्राप्त होता है एवं क्रमसे मोक्ष भी मिलती है इसलिए जो महानुभाव धर्मको प्राप्त करना चाहते हैं और अनन्त सुखमय मोक्ष प्राप्तिकी पूरी पूरी अभिलाषा रखते हैं उन्हें दिगम्बर जैन दीक्षा धारणकर मन वचन कायकी शुद्धिपूर्वक समस्त मूलगुणोंका अच्छी तरह आराधना करना चाहिये। उनके पालन करनेमें किसी प्रकारकी विराधना न हो यह प्रति समय ध्यान रखना चाहिये ॥६४-६६॥

उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव सत्य शौच संयम तप त्याग आकिंचन्य और

आकिंचन्यं महद्ब्रह्मचर्यं बीजगमान्य हो। लक्षणानि दशैतानि स्युर्धर्मकल्पशाखिनः ॥६८॥
अतो धर्मार्थिभिर्ह्येतानि लक्षणानि मुक्तये। धर्महेतूनि सेव्यानि न मोक्तव्यानि जातुचित् ॥६९॥
निःपापो जायते धर्मस्तपोमर्निखिलोऽनघैः। उत्तमाचरणैः सर्वैर्ध्यानाध्ययनकर्मभिः ॥७०॥
वैराग्याभावनाद्यैश्च मनोवाक्कायकर्मभिः। शुद्धैः साम्यैश्च निष्पापैः धर्मसंवेगवासितैः ॥७१॥
तस्माद्धर्मार्थिभिः कार्यं तपः सर्वं हि षड्विधं। ध्यानाध्ययनयोगाचारादिकं धर्मवृद्धये ॥७२॥
धर्मेण पुत्रपौत्रादयः कामाभाश्च सज्जनाः। सेवका मित्रतुल्याः पितृमात्राद्याश्च बांधवाः ॥७३॥
शृंगारखनया नार्यः सहायाः धर्मकर्मणि। पर्वताभा गजास्तुंगा रथा अश्वाः सुवेदिनः ॥७४॥
छत्रचामरराज्याद्यलंकरणानि परााणि च। तुंगधाम सुवस्तूनि जायंते धर्मिणां स्वयं ॥७५॥

ब्रह्मचर्य ये दश लक्षण वास्तविक धर्मरूपी कल्पवृक्षके बीजस्वरूप हैं— इनको धारण करनेसे वास्तविक धर्मकी नियमसे उत्पत्ति होती है। इसलिये जो पुरुष धर्म प्राप्त करना चाहते हैं और मोक्ष प्राप्तिकी हृदयमें पूरी-पूरी अभिलाषा रखते हैं उन्हें वास्तविक धर्मके कारण स्वरूप उत्तम क्षमा आदि लक्षणोंका नियमसे सेवन करना चाहिये और कभी भी उनसे विमुख नहीं रहना चाहिये ॥६७-६९॥ जिस उत्तम क्षमा आदि धर्मका ऊपर उल्लेख किया गया है वह निर्दोष समस्त धर्मनिर्दोष तपोंके द्वारा होता है। उत्तम आचरण ध्यान अध्ययन वैराग्य भावना शुद्ध मन वचन कायकी क्रियायें, निर्दोष समता भाव एवं धर्मानुकूल संवेगकी वासनाओंसे होता है। इसलिये जो महानुभाव धर्मके अभिलाषी हैं उन्हें धर्मकी वृद्धिके लिये बारह प्रकारका तप ध्यान अध्ययन शुभयोग और आचार आदिका सदा ध्यान रखना चाहिये ॥७०-७२॥ इस परम पावन धर्मकी कृपासे ही पुत्र पौत्र आदिकी प्राप्ति होती है। इष्ट भोगोंका मिलना भी धर्मसे ही होता है। सज्जन और मित्रके समान सेवक भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होते हैं। पिता माता आदि बांधवोंकी प्राप्ति भी धर्मकी ही कृपासे होती है। शृंगारकी खनियां एवं धर्म कार्योंमें पूरी सहायता पहुँचानेवाली स्त्रियां, पर्वतके समान विशाल हाथी, ऊँचे ऊँचे रथ और अच्छी तरह शिक्षित घोड़े भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होते हैं छत्र चमर राज्य आदि पदार्थ, उत्तमोत्तम भूषण, ऊँचे-ऊँचे मकान और भी उत्तमोत्तम पदार्थ धर्मात्माओंके स्वतःसिद्ध प्राप्त होते हैं। जो पुरुष धर्मात्मा हैं उनके समस्त प्रकारके कल्याणोंको प्रदान करनेवाली लक्ष्मी धर्मरूपी मंत्रसे वश की गई गृहवासीके समान रहती है। अहमिंद्रपद इंद्रपद सर्वार्थ सिद्धि विमानकी विभूति उत्तम स्वर्गका सुख भी धर्मकी कृपासे प्राप्त होता है। जो मनुष्य धर्मात्मा हैं धर्मकी कृपा-

सतां श्रीर्गृहदासीव धर्ममंत्रवशीकृता । विश्वशर्मकरा धर्ममूला कुर्यात्स्थिति गृहे ॥७६॥
महमिंद्रपदं धर्मात्चक्रराजपदं बुधः । सर्वार्थसिद्धिभूतिश्च लभ्यते स्वर्ग उत्तमः ॥७७॥
षट्खंडनिधिरत्नादिपूर्णाः सर्वाः विभूतयः । चक्रांका धर्मिणां धर्मादुत्पद्यंते परश्रियः ॥७८॥
प्राप्यंते धार्मिकैर्धर्मोत्तीर्थनाथश्रियो वराः । गणेशादिपदान्याशु विद्याः ऋद्धयादयोऽखिलाः ॥७९॥
यद्दूरं दुर्लभं सर्वं चानर्घ्यं भुवनत्रये । तद्धस्तु स्वयमायाति धर्मात्करतले सतां ॥८०॥
मुक्तिश्रीः स्वयमासक्ता चेत्य-धर्मधनेश्वरान् । दत्ते सालिंगनं नूनं का कथा कल्पयोषितां ॥८१॥
इतिमत्वा सदा कार्यो धर्मो यत्नात्सुधार्मिकैः । सुखिभिर्धर्मवृद्धयर्थं सुखवृद्धये शिवाय च ॥८२॥
दुःखिभिर्दुःखघाताय विधेयो धर्म उत्तमः । पापिभिः पापहान्यै च मोक्षाय भवभीरुभिः ॥८३॥
अतो बुधैर्न नेतव्या क्षणैका कालकला क्वचित् । विना धर्मेण धानित्ये नृजन्मन्यतिदुर्लभे ॥८४॥

से उनके छह खण्डकी विभूति नौ निधि चौदह रत्न सुदर्शन चक्र आदि समस्त चक्रवर्ती-की विभूति प्राप्त होती है और भी अनेक प्रकारकी लक्ष्मी प्राप्त होती है। सबसे पवित्र और प्रधान तीर्थंकरकी विभूति है परन्तु धर्मात्माओंको धर्मकी कृपासे वह भी प्राप्त हो जाती है। गणधर पद और ऋद्धि आदि अनेक प्रकारकी विद्यायें भी धर्म-की कृपासे प्राप्त होती हैं। विशेष क्या ! तीनों लोकमें जो चीज बहुत दूर है, अत्यंत दुर्लभ है और अमूल्य है वह चीज भी धर्मकी कृपासे अपने आप हाथपर आकर विराज जाती हैं। मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्ति संसारमें अत्यन्त कष्टसाध्य है परन्तु जो महानुभाव धर्मरूपी धनके ईश्वर हैं वह मुक्ति लक्ष्मी भी उनपर रीझ जाती है और पास आकर प्राप्त हो जाती है फिर अन्य देवांगनाओंकी तो बात ही क्या है अर्थात् धर्मकी कृपा-से उनका प्राप्त होना अत्यन्त सुलभ है। इसलिये ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि जो महानुभाव धार्मिक हैं—परम धर्मात्मा हैं उन्हें यत्नपूर्वक सदा धर्मका सेवन करना चाहिये। जो महानुभाव पूर्व पुण्यके उदयसे संसारमें सुखी हैं उन्हें भी धर्मवृद्धि सुख-वृद्धि और मोक्षके लिये धर्म धारण करना चाहिये। जो दुःखी हैं उन्हें दुख दूर करने के लिये सदा उत्तम धर्म धारण करना चाहिये। पापी जीवोंको पापोंकी हानिके लिये धर्म धारण करना परमावश्यक है एवं जो संसारकी दुष्ट दशासे भयभीत हैं उन्हें मोक्ष की प्राप्तिके लिये धर्मका सेवन करना चाहिये। संसारमें मनुष्य जन्मका पाना अत्यंत दुर्लभ है—बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है इसलिये जो मनुष्य विद्वान हैं—संसारकी परिस्थितिके वास्तविक रूपसे जानकार हैं उन्हें कालका एक टुकड़ा भी धर्मके बिना न बिताना चाहिए ॥७३-८४॥

निरूप्येत्यादि सद्धर्मं फलभेदादिविस्तरात्। भावमुत्पादयामास सभ्यानां धर्मकर्मसु ॥८५॥
मोक्षंमोक्षफलं मोक्षमार्गं च मोक्षकारणं। संसारभ्रमणं पंचधा संसारनिबंधनं ॥८६॥
अधोमध्योर्ध्वभेदेन त्रिधा लोकस्थितिं जिनः। अलोकं सकलं निस्संदेहं दिव्यगिरास्यधात् ॥८७॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योः षट् काला हानिवृद्धिजाः। आयुःकायादिभेदेन सर्वे प्रोक्ता जिनेशिना ॥८८॥
तीर्थेशबलचक्रेशार्धचक्रिताद्विषां विभुः। व्याजहार पुराण्यंगद्विशर्मबलादिभिः ॥८९॥
त्रिकालगोचरं देवो द्वादशांगश्रुताद्भुवं। यत्तत्सर्वं पदार्थादि गणान् प्रत्यबबुधत् ॥९०॥

इस प्रकार जिस समय भगवान जिनेन्द्रने समीचीन धर्म उसका फल और उसके भेद आदिका विस्तारसे वर्णन किया उस समय समवसरणके अन्दर जितने भी सभ्य बैठे थे सबकी परिणति धर्म कार्योंकी ओर झुक गई ॥८५॥ धर्मोपदेशके साथ-साथ भगवान जिनेन्द्रने मोक्ष, मोक्षका फल, मोक्षका मार्ग और मोक्षके कारणोंका भी विस्तारसे निरूपण किया। द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव इस प्रकार पाँचों परावर्तनोंका भी खुलासा रूपसे प्रतिपादन किया ॥८६॥ अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्व लोकके भेदसे लोक तीन प्रकारका है। भगवान जिनेन्द्रने तीनों प्रकारके लोकका भी विस्तारसे वर्णन किया। लोकके बाद अलोक है। सिवाय आकाशद्रव्यके उसके अंदर कोई भी द्रव्य नहीं रहता, भगवान जिनेन्द्रने अपनी दिव्य वाणीसे उसका भी निस्संदेहरूपसे वर्णन किया ॥८७॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके भेदसे काल दो प्रकारका माना है। जिस कालमें मनुष्योंके बल वीर्य आदिकी निरंतर वृद्धि होती जाय उस कालका नाम उत्सर्पिणी है एवं जिस कालमें उनकी हीनता होती जाय उस कालको अवसर्पिणी माना गया है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों कालोंमेंसे प्रत्येक कालके छह भेद माने हैं। वे सुषमा सुषमा १ सुषमा २ सुषमा दुःषमा ३ दुःषमा-सुषमा ४ दुःषमा ५ और दुःषमादुःषमा ६ इस रूपसे हैं। भगवान जिनेन्द्रने किस रूपसे किस कालकी हानि होती है और किस रूपसे किस कालकी वृद्धि होती है, विस्तारसे यह बात बतलाई तथा कौन-कौन कालमें कितना-कितना आयु काय आदि का परिमाण होता है यह बात भी भगवान जिनेन्द्रने अच्छी तरह प्रतिपादन की ॥८८॥ तीर्थंकर, बलभद्र, चक्रवर्ती नारायण और प्रतिनारायणोंके चरित्रोंका भी वर्णन किया एवं उनके कैसे शरीर थे, कैसी-कैसी ऋद्धियां थीं, कैसे-कैसे उन्हें सुख प्राप्त थे एवं कैसी-कैसी उनके शरीर आदिकी सामर्थ्य थी यह बात भी अच्छी तरह वर्णन की ॥८९॥ द्वादशांग श्रुतज्ञानके अन्दर तीनों कालसंबंधी पदार्थोंका जो भी वर्णन था वह भी भगवान

तद्वाग्धर्मामृत मिष्टं पित्वा सर्वे गणास्तदा । जन्मदाहविमुक्ता वा बभूवुः सुखिनो मुदा ॥९१॥
तद्वाण्याप्य बुधाः केचित् संवेगं धर्मकर्मसु । वैराग्य पविना हत्वा मोहाद्रिमाददुस्तपः ॥९२॥
केचिच्च पशवो मर्त्याः श्रावकव्रतमंजसा । स्वोचक्रुर्भावनां केचित्तपोदानार्चनादिषु ॥९३॥
काललब्ध्या सुराः केचित्तद्ध्वन्यमृतपानतः । मिथ्याविष वमित्वाशु जगृहुर्दर्शनं परं ॥९४॥
गणाधीशोऽपि भव्यानां चोपकाराय मुक्तये । निरुपम्यधियाऽहंसाधर्मतीर्थप्रवृत्तये ॥९५॥
जिनेन्द्रादथमादाय द्वादशांगमहोदधेः । चकार रचना नानानयभंगाथकोटिभिः ॥९६॥
प्रशांतेऽथ जनक्षोभे दिव्यभाषोपसंहृते । धर्मतीर्थविहारे सद्मना सौधर्मकल्पराट् ॥९७॥
प्रणम्य तत्क्रमाब्जौ प्रवांछन्विश्वहितं मुदाः । प्रारेभे तत्स्तवनं कर्तुं धर्मोपदेशजैर्गुणैः ॥९८॥

जिनेन्द्रने गणधरोंके लिये व्यक्त कर बतलाया ॥९०॥ महामिष्ट भगवान जिनेन्द्रके मुखसे निकले हुए वचनरूपी धर्म्मामृतका पानकर समस्तगण—संघने उस समय अपनेको जन्मरूपी दाहसे रहित समझा एवं वे अपनेको परमसुखी अनुभव करने लगे ॥९१॥ भगवान जिनेन्द्रका उपदेश सुनकर बहुतसे धर्मात्मा भव्य जीवोंको संसारसे उदासीनता हो गई । उन्होंने धर्मसंबंधी कार्योंके अन्दर मन लगाया एवं वैराग्यरूपी वज्रसे मोहरूपी पर्वतके खंड-खंड कर पवित्र तप धारण कर लिया ॥९२॥ भगवान जिनेन्द्रके मुखसे धर्मोपदेश पाकर बहुतसे पशु और मनुष्योंने श्रावकव्रत अर्थात् अणुव्रतोंको धारण कर लिया एवं तप दान पूजन आदि पवित्र कार्योंमें उन्होंने अपने भावोंको दृढ़ किया ॥९३॥ बहुतसे देवोंने काल लब्धिकी कृपासे भगवान जिनेन्द्रके मुखसे धर्मामृतका पानकर मिथ्यादर्शनरूपी विषको वमन कर दिया और सम्यग्दर्शनको धारण कर लिया ॥९४॥ गणधरोंमें प्रधान गणधर विशाखने भी समस्त भव्य जीवोंका उपकार हो, मोक्ष मार्गकी प्राप्ति हो एवं अहिंसारूपी धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति हो इस अभिलाषासे अपनी निरुपम प्रखर बुद्धिसे भगवान जिनेन्द्रके मुखसे तत्स्वरूप प्राप्त कर उसे करोड़ों नयोंकी भंगियोंके साथ द्वादशांग महा समुद्ररूप रच दिया ॥९४-९५॥ भगवानकी दिव्यध्वनिका खिरना जिस समय समाप्त हुआ और मनुष्योंका कोलाहल शांत हो गया उस समय धर्मतीर्थोंमें भगवान जिनेन्द्रका विहार हो, इस पवित्र अभिलाषाको हृदयमें धारण कर समस्त प्राणियोंके हितके इच्छुक सौधर्म स्वर्गके इन्द्रने बड़े आनन्दसे भगवान जिनेन्द्रके दोनों चरण कमलोंको प्रणाम किया एवं धर्मोपदेशसे जायमान जो गुण हैं उन्हें लक्ष्यकर वह भगवान जिनेन्द्रकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

हे भगवान ! आपके वचनरूपी किरणोंसे मोह और अज्ञानरूपी अंधकार

त्वं देव ! त्रिजगद्भर्ता भव्यबंधुस्त्वमेव हि । मोहाज्ञानतमो यात्यद्य क्षयं तत्त्वर्चोऽशुभिः ॥९९॥
भवाब्धौ दुस्तरे भव्यांस्त्वं सुता रयितुं क्षमः । धर्मोपदेशपोतेन नेतुं च मुक्तिपत्तने ॥१००॥
तारकदांगिवार्ध्यूर्मिखप्रदेशशरीरिणां । संख्या न ज्ञायते यद्वत्तथा ते गुणवारिधेः ॥१०१॥
अतो नाथ ! गुणास्तेऽनंता अशक्त्या किलोदितुं । ज्ञात्वेति न कृतोऽस्माभिः श्रमस्त्वद्गुणभाषणे ।१०२।
लोकेश ! भव्यसस्यानां पापातापदिशोषिणां । धर्मामृतपुसेकेन विधेहि फलमूर्जित ॥१०३॥
निर्धूय मोहसेना हि विश्वानर्थविधायिनीं । सन्मार्गमुपदेष्टुं ते कालोऽद्य समुपस्थितः ॥१०४॥

आज सर्वथा नष्ट हो रहा है । जिससे भव्य जीवोंको वास्तविक मार्गका ज्ञान हो रहा है इसलिये तीनों लोकके भरण पोषण करनेवाले आपही हैं और आपही समस्त भव्य जीवोंके बन्धुस्वरूप हैं ॥९५-९९॥ गंभीर समुद्रके अन्दर पड़नेवाले जीव जिस प्रकार जहाजके सहारे अपने अभीष्ट स्थानपर पहुँच जाते हैं उसी प्रकार हे स्वामी ! यह संसाररूपी समुद्र दुस्तर है—जल्दी तिरा नहीं जा सकता, इसमें गोता मारते हुए प्राणियोंको धर्मोपदेशरूपी जहाजकी सहायतासे आपही तार सकते हो एवं उन प्राणियोंकी अभिलाषा मोक्षरूपी पत्तनको प्राप्त करनेकी है सो उस पत्तनमें आपही उन्हें पहुँचा सकते हो, अन्य किसीकी इस समय वैसी सामर्थ नहीं ॥१००॥ संसारमें तारागण, कन्दमूलके अन्दर रहनेवाले जीव, समुद्रकी लहरें, आकाशके प्रदेश और एकेन्द्रिय आदि जीवोंकी गणना नहीं की जा सकती—कितना भी कोई प्रयत्न क्यों न करे उन्हें गिन नहीं सकता उसी प्रकार हे भगवान ! आप गुणसमुद्र हैं इसलिये आपके अगणित गुणोंको भी गिना नहीं जा सकता अर्थात् आप अनंते गुणोंके पिंड स्वरूप हैं ॥१०१॥ इसलिये हे नाथ ! आप गुणके अनन्ते हैं और हमारे सरीखे हीनशक्तिके पुरुष उन्हें वर्णन करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते अतः आपके गुणोंके वर्णन करनेके लिये हम किसी प्रकारका परिश्रम नहीं उठाना चाहते ॥१०२॥ हे तीनों लोकके स्वामी भगवान ! जिस प्रकार सूर्यके उग्रतापसे मुरझाये हुये धान्योंके वृक्षोंको जलके सेकसे सींचा जाता है उस समय वे उत्तम फलोंको प्रदान करते हैं उसी प्रकार ये भव्यरूपी धान्य पापके आताप आदिसे मुरझाये हुए हैं—पापकी तीव्रतासे इनकी आत्म-शक्ति हीन हो चुकी है आप धर्मामृत प्रदानकर इन्हें सबल बनावें जिससे ये उत्तम फलोंको प्राप्त कर लें ॥१०३॥ हे प्रभो ! समस्त प्रकारके अनर्थोंको करनेवाली बलवान शत्रु मोहनीय कर्मकी सेनाको आपने सर्वथा नष्ट कर दिया है और सन्मार्गके उपदेश करनेकी आपको परिपूर्ण योग्यता प्रगट हो गई है । अब यह समय उस वास्त-

किमत्र बहुनोक्तेन जनानां शरणं भव । त्वमेव नाथो लोके इत्युक्त्वाऽस्थात्सुराधिपः ॥१०५॥
शक्रप्रार्थनयेत्याशु देवो विश्वर्द्धितोद्यतः । भव्याब्जानुग्रहं कर्तुं तस्थे धर्मभानुमान् ॥१०६॥
सार्धं विश्वमहाभूत्या धर्मचक्रपुरस्सरः । प्रचक्रे विजयोद्योगं संघैर्देवैश्च धर्मराट् ॥१०७॥
पटहादिमहाध्वनैर्जयनंदादिसत्वस्नैः । पूरयंतो दिशो देवा प्रचेलुः प्रमुदा तदा ॥१०८॥
शुभिक्षता तदास्थानात्परितः शतयोजनं । आकाशगमनं चासीन्निर्भोरंतेऽगिनां बधः ॥१०९॥
व्याघ्रादिक्रूरसत्त्वैर्न स्याद् भुक्तिनोतिशर्मणः । नोपसर्गश्चतुर्वक्त्रो दृश्यते दिक्षु सज्जनैः ॥११०॥

विक मार्गके उपदेशका आकर उपस्थित हो गया—आप भव्य जीवोंको धर्मोपदेश प्रदान करें । विशेष कहना व्यर्थ है । प्रभो ! प्रार्थना यही है कि भव्य जीवोंके आप शरण बनें—उन्हें वास्तविक मार्गका उपदेश प्रदान करें क्योंकि इस संसारमें भव्य-जीवोंके शरण आप ही हैं—आपके सिवाय और कोई शरण नहीं हो सकता । बस ! इस प्रकार विनयपूर्वक निवेदन कर वह धर्मात्मा सौधर्म स्वर्गका इन्द्र अपनी जगहपर जाकर बैठ गया ॥१०४-१०५॥

जिस प्रकार सूर्य कमलोंका खिलानारूप उपकार करनेवाला है और समस्त जीवोंके हितमें उद्यत रहता है अर्थात् सूर्यके उदयकालमें ही समस्त प्राणी अपने अपने हितकारी कार्योंमें उद्यत होते हैं उसी प्रकार धर्मके सूर्यस्वरूप वे भगवान जिनेन्द्र समस्त जीवोंके हितमें उद्यत हो समस्त भव्य जीवरूपी कमलोंके उपकारकी अभिलाषासे इन्द्रकी प्रार्थनाके अनुसार शीघ्र ही अपने आसनसे उठ खड़े हुए एवं चक्रवर्ती जिस प्रकार विशाल विभूति और सेना आदिके साथ दिग्विजय करनेके लिये जाता है और चक्र उसके आगे चलता है उसी प्रकार धर्मके चक्रवर्ती वे भगवान जिनेन्द्र मुनि आर्यिका आदि संघ और अनेक देवोंके साथ विशाल विभूतिसे मंडित हो दिग्विजय करनेके लिए अर्थात् समस्त आर्य क्षेत्रमें धर्मोपदेश करनेके लिए चल दिये एवं धर्मचक्र उनके आगे आगे चलने लगा ॥१०६-१०७॥ उस समय भगवानके प्रस्थान करनेपर पटह आदि अगणित बाजोंके उन्नत शब्दोंसे एवं 'हे देव ! जीवें नावें विरदें' इत्यादि मनोहर शब्दोंसे समस्त आकाशको व्याप्त करते हुए देवगण अत्यन्त आनन्दित हो उनके साथ साथ चलने लगे ॥१०८॥ भगवान अर्हंतके चौंतीस ३४ अतिशय माने हैं । उनमें दश जन्मके अतिशय हैं उनका वर्णन तो उनके जन्मके समय कर दिया गया । केवलज्ञानके समय दश अतिशय होते हैं वे इस प्रकार हैं—

स्वामित्वं सर्वविद्यानां चाच्छायत्व प्रजापतेः । अस्पंदो नेत्रयोरस्य चावृद्धिर्नखकेशयोः ॥१११॥
घातिक्षयभवा एते दशैवातिशयाः प्रभोः । निरौपम्या भवंत्येव शेषा देवकृता इति ॥११२॥
अर्धमंमागधिकाकारभाषा विश्वार्थसूचिनी । विभोरासी द्विविक्ता हि पशुदेवनृणां परा ॥११३॥
देहिनां परमा मैत्री जातिहेतुविरोधिनां । सर्वर्तुफलपुष्पाढ्या बभूवुस्तरुजातयः ॥११४॥
आदर्श मंडलाकारा मही रत्नमयी व्यभात् । तामंवेति मरुद् वातकुमारकृत्सुशीतलः ॥११५॥
जिनांतेऽभूच्च सर्वेषां परमानंदमंजसा । तृणकीटकसंत्यक्तं मरुत् कुर्यान्महीतलं ॥११६॥
शतयोजनपर्यंतं विभोर्निकटभूतले । गंधोदकमयीं वृष्टिं विधत्तं स्तनितामरः ॥११७॥
हैमाब्जानि पदन्यासे संचारयंति नाकिनः । शाल्यादिसर्वधान्यौघाः फल भारनता बभुः ॥११८॥
जिनेन्द्रनिकटे खेन सार्धं स्युर्निर्मला दिशः । देवा इन्द्राज्ञया कुर्युराह्वाननं परस्परं ॥११९॥

जिस स्थानपर भगवान जिनेन्द्रका समवसरण है उसके चारों ओर एक सौ योजन पर्यन्त सुभिक्षताका होना १ आकाशमें गमन २ व्याघ्र आदि क्रूर जीवोंके द्वारा अन्य निर्बल प्राणियोंका न मारा जाना अर्थात् अदयाका अभाव ३ अलौकिक कल्याणके धारक केवलीके भोजनका न होना अर्थात् कवलाहार रहितपना ४ उपसर्गका अभाव ५चारों दिशाओंमें चार मुखोंका दीखना ६ समस्त विद्याओंका स्वामीपना ७ छायासे रहित शरीरका होना ८ नेत्रोंके पलकों न लगना ९ एवं केशोंका न बढ़ना १० इस प्रकार ज्ञानावरण आदि चार घातिया कर्मोंके नाशसे ये दश अतिशय केवली भगवान के प्रगट होते हैं जो कि निरोपम्य होते हैं उनकी उपमा नहीं दी जा सकती । इनके सिवाय शेष चौदह अतिशय देवकृत होते हैं और वे इस प्रकार हैं—

भगवानकी भाषा अर्धमागधी थी जो कि पशु देव और मनुष्योंको भिन्न भिन्न रूपसे समस्त अर्थोंको सूचित करती थी १ स्वभावसे ही बध्यघातक नामका विरोध रखनेवाले सर्प नौला आदि जीवोंकी परस्पर मित्रता थी २ वृक्षोंकी पंक्तियाँ समस्त ऋतुओंके फल फूलोंसे युक्त थीं ३ दर्पणके मध्यभागके समान अत्यन्त निर्मल मणिमयी पृथिवी थी ४ वातकुमार देवोंके द्वारा शीतल मंद सुगंध पवन बहती थी ५ भगवान जिनेन्द्रके समीप रहने वाले समस्त जीवोंको परमानन्द था ६ पवनकुमार देवोंने अमीनको तृण कंटक आदिसे रहित कर दिया था ७ स्तनितकुमार जातिके भवनवासी देवोंने भगवानके समीपकी सौ योजन प्रमाण पृथिवी सुगंधित जलकी वर्षासे सुगंधित कर रक्खी थी ८ चलते समय भगवान जिनेन्द्रके चरण कमलों तले देवगण सुवर्णमयी कमलोंकी रचना करते चले जाते थे ९ शालि आदि धान्योंके वृक्ष

धर्मचक्रं सहस्रारं रत्नरश्म्यात्तदिक्करं । व्रजत्येव प्रभोरग्रे हतध्वांतं सुरैर्वृतं ॥१२०॥
आदर्शाद्या विभात्यष्टमंगलद्रव्यसंपदः । एतेऽतिशया भर्तुश्चतुर्दश सुरोद्भवाः ॥१२१॥
शोकहंता स्फुरद्रत्नमयोऽशोकतरुर्यभात् । कल्पांघ्रिपजपुष्पौघैः पुष्पवृष्टिर्व्यधुः सुराः ॥१२२॥
गंभीरो मधुरो दिव्यध्वनिर्विश्वहितंकरः । अज्ञानध्वांतहंतास्य भवेद्विश्वार्थदीपकः ॥१२३॥
उत्क्षिपंति सुरा यस्य चतुःषष्टिप्रकीर्णकान् । नानामणिमयं हैमं दिव्यं सिंहासनं विभोः ॥१२४॥
भामंडलं विभोरेजे भानुकोट्यधिकप्रभं । सार्द्धं द्वादशकोटीवाद्यैरभूद्दंदुभिध्वनिः ॥१२५॥
इंदुत्रयसमं छत्रत्रयं मुक्तास्रगंकितं । इत्यष्टप्रातिहार्याणि कुर्वंतेऽस्य परां श्रियं ॥१२६॥
अनंतं केवलज्ञान दर्शनं वीर्यमूर्जितं । सुखं चास्य गुणा ख्याताः षट्चत्वारिंशदित्यहो ॥१२७॥

फलोंके भारसे नम्रीभूत थे १० भगवान जिनेन्द्रके समीपमें आकाश और दिशायें निर्मल थीं ११ इन्द्रकी आज्ञासे देवगण आपसमें एक दूसरेको बुलाते थे १२ भगवानके आगे आगे धर्मचक्र चलता था जो कि हजार अरोंका धारक था अपनी देदीप्यमान किरणोंसे समस्त दिशाओंको चमचमाता था अंधकारका नाराक था और चारों ओरसे देवोंसे वेष्टित था १३ तथा भगवानके चारों ओर दर्पण कलश झारी आदि आठ मंगलोक द्रव्य शोभायमान थे १४ इस प्रकार भगवानके ये चौदह अतिशय देवकृत थे ॥१०९-१२१॥ भगवान जिनेन्द्रके समीपमें आठ प्रातिहार्योंकी भी अपूर्व शोभा थी और वे प्रातिहार्य इस प्रकार थे—

भगवान जिनेन्द्रके समीपमें अशोकवृक्ष विद्यमान था जो कि शोकका नाश करनेवाला था एवं देदीप्यमान रत्नमय था १ कल्पवृक्षोंसे जायमान पुष्पोंके समूहोंसे देवगण पुष्पवृष्टि करते थे २ भगवानकी दिव्यध्वनि खिरती थी जो कि मेघकी गर्जनाके समान गंभीर थी, मधुर थी, समस्त लोकका हित करनेवाली थी, अज्ञानरूप अंधकारको नाश करनेवाली थी एवं समस्त पदार्थोंके प्रकाश करनेमें दीपकके समान थी ३ देवगण भगवानके ऊपर चौसठ चमर ढोरते थे ४ प्रभुका भाँति भाँतिकी मणियोंसे जड़ा हुआ सुवर्णमय दिव्य सिंहासन था ५ भगवानके पीछे भामंडल विद्यमान जो कि करोड़ सूर्योंकी प्रभासे अधिक प्रभाका धारक था ६ साढ़े बारह करोड़ बाजोंके साथ साथ दुंदुभीकी ध्वनि होती थी ७ तथा शिरपर तीन छत्र थे जो कि तीन चंद्रमा सरीखे जान पड़ते थे और मोतियोंकी मालाओंसे शोभायमान थे ८ इस प्रकार ये आठ प्रातिहार्य भगवान जिनेन्द्रकी अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे ॥१२२-१२६॥ भगवानके अनंतज्ञान—केवलज्ञान १ अनंतदर्शन—केवलदर्शन २ अनंतवीर्य ३ और अनंतसुख

विजहार महीं कृत्स्नां भव्यानां प्राणयन् जिनः। दिव्यैर्वचोऽमृतैः कुर्वन् प्रीतिं च जलदोपमः ॥१२८॥
मिथ्यामोहांधकारादीन् विघटय्य वचोंऽशुभिः। जगद्द्योतयामास जिनार्कस्तत्त्वमंजसा ॥१२९॥
विश्वर्द्धिभूषिताः सर्वविशाखाद्या गणाधिपाः। प्रणमंत्यस्य पादाब्जौ ह्यष्टाविंशतिसंख्यकाः ॥१३०॥
पूर्वधारिण एवास्य सार्धं पंचशतप्रभाः। शिक्षकाश्च किलैकोनत्रिंशत्सहस्रशंसिताः ॥१३१॥
अवधिज्ञानिनोऽस्य स्युर्द्वाविंशतिशतप्रभाः। तावतः केवलज्ञाना लोकालोकविलोकिनः ॥१३२॥
वादिनो हतमिथ्यात्वाश्चतुर्दशशतप्रभाः। भवंत्येकोनत्रिंशच्छतसंख्या विक्रियर्द्धयः ॥१३३॥
(२९००) कुर्वंत्यस्यपरां भक्तिं मनःपर्ययभूषिताः। सार्धं सप्तदशैव स्युः शतानि सूक्ष्मदर्शिनः ॥१३४॥
(१७५०) चत्वारिंशत्सहस्राणि सर्वे पिंडीकृता विदः। यतयो हिहताज्ञाना भवंति भूतये भुवि ॥१३५॥

४ ये चार अनंत चतुष्टय शोभायमान थे। इस प्रकार चौतीस अतिशय आठ प्रातिहार्य और चार अनंत चतुष्टय इस प्रकार छियालीस गुणोंके धारक वे भगवान मल्लिनाथ अत्यन्त शोभायमान जान पड़ते थे।

वे भगवान जिनेन्द्र समस्त भव्य जीवोंको संतोष उपजाते एवं मेघके समान अपने दिव्य वचनरूपी अमृतोंसे सबोंको आनन्दित करते समस्त पृथ्वीपर विहार करने लगे ॥१२७-१२८॥ जिस प्रकार सूर्य अपनी उग्र किरणोंसे अन्धकारको नष्ट करता है और समस्त जगतको प्रकाशमान करता है उसी प्रकार वे भगवान जिनेन्द्ररूपी सूर्य भी अपने वचनरूपी किरणोंसे मिथ्या मोहरूपी अंधकारका सर्वथा नाश कर संसारमें तत्वोंके स्वरूपका प्रकाश करने लगे ॥१२९॥ भगवान मल्लिनाथके विशाख आदि अट्ठाईस गणधर थे जो कि समस्त प्रकारकी ऋद्धियोंसे शोभायमान थे और भगवानके चरण कमलोंको प्रणाम करते थे ॥१३०॥ भगवान जिनेन्द्रके साथमें ग्यारह अंग चौदह पूर्वके धारी साड़े पांच सौ ५५० मुनि थे शिक्षक जातिके मुनि उनतीस हजार थे। जो मुनि अवधिज्ञानके धारक थे वे बाईस सौ २२०० प्रमाण थे। जितने प्रमाण ये अवधिज्ञानी थे उतने ही प्रमाण अर्थात् बाईस सौ ही केवलज्ञानी मुनि थे जो कि अपने केवलज्ञानसे समस्त लोक अलोकको स्पष्ट रूपसे देखते थे। मिथ्यात्वको सर्वथा नष्ट करनेवाले परमसम्यग्दृष्टिवादी मुनि चौदह सौ १४०० थे। विक्रिया ऋद्धिके धारक उनतीस सौ २९०० थे। मनःपर्ययज्ञानी मुनि भगवान जिनेन्द्रके समवसरणमें साढ़े सत्रह सौ १७५० थे जो कि भगवान जिनेन्द्रके परम भक्त थे और सूक्ष्मरूपसे पदार्थोंके देखनेवाले थे। इस प्रकार ये समस्त विद्वान मुनि मिलकर चालीस हजार ४०००० प्रमाण थे। ये मुनिगण मोहांधकारके सर्वथा नाश करनेवाले थे और संसारकी

(४००००) आर्यिका बंधुषेणाद्या दृष्टिमूलगुणान्विताः । नमंतिपंचपंचाशत्सहस्रण्यस्ये सत्क्रमौ ॥१३६॥
(५५०००) लक्षकं १००००० श्रावकाः प्रोक्ताः श्राविकास्त्रिगुणा विभोः ।
दृग्व्रतालंकृता दानपूजाभक्तिपरायणाः ॥१३७॥
(३००००) देव देव्यस्तत्त्वसंख्याताः पाशवोऽखिलाः । दृक्श्रावकव्रतोपेताः सेवंतेऽस्य क्रमाम्बुजौ ॥१३८॥
एवं द्वादशभिर्देवो गणैरभिपरिष्कृतः । नयन् मुक्तिपथं भव्यान् धर्ममार्गं प्रकाशयन् ॥१३९॥
विहरन्नार्यखंडस्थान् सर्वान् देशपुरादिकान् । सषट्त्रिंशच्छतोनाब्दसहस्रं स केवली ॥१४०॥
द्वात्रिंशद्दिवसोनं संवत्सरशतेन च । अंते मासाऽवशेषायुः सम्मेदाचलमागतः ॥१४१॥
स्वध्वनिं चोपसंहृत्य स्वयोगं च स निष्क्रियः । प्रतिमायोगमाधायघातिक्षयाय मुक्तये ॥१४२॥
संयतैः सह तत्रैव सहस्रपंचसंख्यकैः । ध्यानेन तृतीयेनास्थाद्यावदायुःपरिक्षयः ॥१४३॥

शोभा थे ॥१३५॥

भगवान जिनेन्द्रकी सभामें बन्धुषेणा आर्यिकाको आदि लेकर पचपन हजार ५५००० आर्यिकायें थीं जो कि सम्यग्दृष्टि और मूलगुणोंको धारण करने वाली थीं और भगवान जिनेन्द्रके चरण कमलोंको प्रणाम करने वाली थीं ॥१३६॥ एक लाख १००००० श्रावक थे और तीन लाख श्राविकायें थीं जो कि सम्यग्दृष्टि थे, श्रावकोंके व्रतोंके धारक थे और भगवान जिनेन्द्रकी पूजा और भक्तिमें सदा तत्पर थे ॥१३७॥ तथा भगवान मल्लिनाथकी सभामें देव और उनकी देवियाँ असंख्याते थे, संख्याते पशु थे । ये समस्त सम्यग्दृष्टि और श्रावकोंके व्रतोंसे युक्त थे और भगवान जिनेन्द्रके चरणोंकी पूजा करनेवाले थे ॥१३८॥ इस रूपसे वे भगवान मल्लिनाथ केवली उपर्युक्त बारह गणोंसे परिवेष्टित थे, भव्योंको मोक्ष स्थानमें ले जाने वाले थे, वास्तविक धर्मका मार्ग प्रकाशन करते थे इस प्रकार आर्यखंडमें रहने वाले समस्त देश और पुर आदिमें उन्होंने छत्तीस बिन सौ वर्ष कम पचपन हजार वर्ष पर्यंत विहार किया था । जब आयुके अन्तमें केवल एक मासका समय बाकी रह गया उस समय वे भगवान जिनेन्द्र सम्मेदशिखर पहाड़पर जाकर विराजमान हो गये ॥१३९-१४१॥ वहांपर आकर भगवान जिनेन्द्रने अपनी दिव्यध्वनि और योगको संकुचित कर दिया, निष्क्रिय हो गये एवं शेष चार अघातिया कर्म अर्थात् वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चारों कर्मोंको नष्ट करनेके लिये प्रतिमायोग धारण कर लिया । तथा जबतक आयुका अंत न हुआ तब तक उसी स्थानपर पांच हजार मुनियोंके साथ अपनी आत्मामें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक तीसरे शुक्लध्यानको धारणकर विराजमान हो

चतुर्थध्यानयोगेन मणिदीपसमेन सः । शेषाघातीनि कर्माणि प्रहृत्यैरण्डबीजवत् ॥१४४॥
गुणस्थानातिमः मुक्त्वा शरीरत्रयनाशनः । लोकाग्रशिखरं सारं जगाम ज्ञानमूर्त्तिमान् ॥१४५॥
फाल्गुनोज्वलपंचम्यां पूर्वरात्रौ जिनाग्रणीः । भरण्याख्ये सुनक्षत्रे चोर्ध्वगतिस्वभावतः ॥१४६॥
अनन्तकालमासाद्य सम्यक्त्वादिगुणाष्टकं । सिद्धो भूत्वा स तत्रास्थाद् भुजानोऽप्यंतवर्जितं ॥१४७॥
निरोपम्यं सुखं दिव्यं दुःखातीतं निजात्मजं । अक्षयं परमं ह्यक्षातीतं बाधातिगं महत् ॥१४८॥
तस्य निर्वाणपूजायै तदा जग्मुर्दिवौकसः । सेंद्रा हि सपरीवारास्तद्भक्तिकरणोद्यताः ॥१४९॥
मत्वातिपावनं देहं विभोर्निर्वाणसाधनं । कृत्वा महोत्सवेनाशु पराद्रिशिबिकार्पितं ॥१५०॥
सुरेंद्रैः परमैर्दिव्यैर्महासुगंधिवस्तुभिः । अभ्यर्च्यं परया भक्त्या प्रणेमुः शिरसामराः ॥१५१॥

गये ॥१४२-१४३॥ वहां विराजमान होकर मणिमयी दीपकके समान व्युपरतक्रिया-निवृत्ति नामक चौथे शुक्लध्यानसे भगवान जिनेन्द्रने चारों अघातिया कर्मोंका सर्वथा नाश कर दिया । अयोगकेवली नामके चौदहवें गुणस्थानमें उन्होंने औदारिक, तैजस और कार्मण इन तीनों शरीरों का सर्वथा नाश कर दिया एवं जिस प्रकार एरंडके बीजका स्वभाव बंधके नष्ट हो जानेपर ऊपरको ही जाने का है उसी प्रकार समस्त कर्मोंसे रहित आत्माका भी ऊर्ध्वगमन स्वभाव होनेसे वे ज्ञानमूर्ति भगवान जिनेन्द्र फागुन सुदी पंचमीके दिन जबकि भरणी नामक शुभ नक्षत्र था पूर्व रात्रिके समय लोकके अग्रभागमें जाकर विराजमान हो गये ॥१४४-१४६॥ सम्यक्त्व आदि आठों गुणोंको प्राप्त कर और सिद्ध होकर अनंतकाल पर्यंत वहांपर विराज गये एवं उस अलौकिक सुखका अनुभव करने लगे जो कि अन्तरहित अनंत है, उपमारहित है, दिव्य है, समस्त प्रकारके क्लेशोंसे रहित है, स्वाधीन है, विनाशरहित अविनाशी है, उत्कृष्ट है, इन्द्रियोंसे जायमान नहीं है । समस्त प्रकार की बाधाओंसे रहित है और महान है ॥१४७-१४८॥

जिस समय भगवान मुक्त हो गये देवोंको पता लग गया । भगवानकी भक्ति-के करनेमें दत्तचित्त वे समस्त देव अपने इंद्र और परिवारके साथ शीघ्र ही उनकी निर्वाणभूमि सम्मेदाचलपर आ गये । भगवान जिनेन्द्र उसी शरीरसे मोक्ष गये थे इसलिए उनका वह शरीर साक्षात् मोक्षका कारण होनेसे परम पवित्र था । अतः देवोंने बड़ी भक्तिसे उनका शरीर अनेक प्रकारके रत्नोंसे शोभायमान पालकीमें विराजमान कर दिया । महासुगंधित उत्तमोत्तम द्रव्योंसे उसे पूजा एवं अंतमें देवोंने शिर झुकाकर बड़े विनयसे उसे नमस्कार किया ॥१४९-१५१॥ अग्निकुमार जातिके

अग्नीन्द्रमुकुटोद्भूतवह्निना तद्वपुस्तदा । पर्यायांतरमेवाप सुगंधीकृतदिक्चयं ॥१५२॥
एवमस्त्वत्र नः शीघ्रमित्युक्त्वादाय भस्म तत् । स्वस्य भालेऽखिलांगे च चक्रुस्तद्गतये सुराः ॥१५३॥
पुनः सभूय नाकेशाः विधायानंदनाटकं । कृतकार्या अगुः स्वं स्वं स्थानं तद्गुणशंसिनः ॥१५४॥
इति सुकृतविपाकात्प्राप्य सौख्यं परं यो नरसुरगतिजातं मल्लिनाथोऽनुभूत्वा ।
त्रिभुवनपतिसेव्यस्तीर्थराट् कर्म हत्वा निखिलचरणयोगैः प्राप मुक्तिं स नोऽव्यात् ॥१५५॥
यः प्राग्वैश्रवणाभिधो नृपवरो रत्नत्रयाख्यं व्रतं, कृत्वादाय च संयमं सुतपसा जायोऽहमिंद्रो महान् ।
दिव्यानुत्तरपंचकेषु परमे सारे विमाने चतुर्थेऽनो मल्लिजिनोऽभवच्चिववधूभर्ता स वोऽस्तु श्रिये ॥१५६
यो मोहारिविधोन्निहत्य सुतपः खड्गेन बाल्येऽप्यहो प्राप्तो मुक्तिवधूमनंतसुखदां श्रीमल्लिनाथो जिनः ।
तद्भूत्ये स मया स्तुतश्च विनुतो ह्यं तच्चरित्रे मुहु र्यांचमे कृपयाखिलान्निजगुणान् दद्यात्क्षयं कर्मणां ॥

भवनवासी देवोंके मुकुटसे जायमान अग्निसे भगवानका शरीर दूसरी पर्यायको प्राप्त हो गया अर्थात् भस्म हो गया । जिस समय वह दूसरी पर्यायको प्राप्त हो रहा था उस समय उसकी उत्कट सुगंधिसे समस्त दिशायें सुगंधित हो गई थीं । उनके शरीरकी जो भस्म हुई थी देवोंने यह कह कर कि "जिस प्रकार यह शरीर भगवान मल्लिनाथ को हुई है उसी प्रकार हमारा भी हो" उसे भगवान मल्लिनाथके स्वरूपकी प्राप्तिकी अभिलाषासे अपने अपने मस्तक और समस्त शरीरसे लगा लिया । पुनः समस्त इन्द्रोंने मिलकर आनन्द नाटक किया अन्तमें अपना समस्त कार्य समाप्त कर वे भगवान जिनेन्द्रके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए अपने अपने स्थानोंपर चले गये ॥१५२-१५४॥

जिन मल्लिनाथ भगवानने पुण्यके तीव्र विपाकसे पहिले तो मनुष्य और देवगतिके अन्दर होनेवाले उत्तम सुखका सानन्द भोग किया । उसके बाद तीन लोकके इन्द्रों द्वारा वन्दनीक परम पावन तीर्थंकर पदवी प्राप्त की पश्चात् समस्त चरित्रको धारण कर ज्ञानावरण आदि समस्त कर्मोंको नष्ट कर मोक्ष पद पाया वे श्रीमल्लिनाथ भगवान हमारी रक्षा करें ॥१५५॥ जो भगवान मल्लिनाथ पहिले तो वैश्रवण नामके राजा हुए वहांपर रत्नत्रय नामका पवित्र व्रत आचरण कर पीछे संयम ले उत्तम तपोंकी कृपासे दिव्य पांच अनुत्तर विमानोंमेंसे चौथे अपराजित नामके विमानमें महान् ऋद्धिके धारक अहमिंद्र देव हुए फिर वहांसे चयकर मोक्षरूपी लक्ष्मीके भर्ता हुए, वे भगवान मल्लिनाथ सदा तुम्हारा कल्याण करें ॥१५६॥ बाल अवस्थामें ही जिन भगवान मल्लिनाथने उत्तम तपरूपी तीक्ष्ण खड्गसे मोह आदि समस्त कर्मोंका सर्वथा

सर्वे तीर्थंकरास्त्रिलोकमहिताः सिद्धः शरीरातिगाः, आचार्या सुविदोऽपरार्थनिपुणा दक्षः पराः पाठकाः।
धीरा योगधराश्च घोरतपसो मोक्षोद्यताः साधवः, स्तुत्याः विश्वजनैर्मया च विनुता कुर्वंतु वो मंगलं ॥

रहितनिखिलरागं धर्मसंवेगपूर्णं ह्यसमवरचरित्रं मल्लिनाथस्य यद्धि।
सकलविमलकीर्तेः प्रादुरासाद्धरित्र्यां तदिह जयतु भव्यैर्यावदास्ते सुधर्मः ॥१५९॥

स्वर्मोक्षैकनिबंधनं व्यवहरं धर्मामृतैकार्णवं विश्वानर्थनिवारकं सुखनिधिं भव्यैकचूड़ामणिं।
अनन्तातीतगुणाकरं सुपरमं कर्मारिनाशंकरं वंदे तद्गुणसिद्धयेऽहमहर्निशं मूर्ध्नोत्र रत्नत्रयं ॥१६०॥

नाश कर अनंत सुख प्रदान करनेवाली मोक्षरूपी लक्ष्मीको प्राप्त किया। उन भगवान मल्लिनाथका इस मल्लिनाथपुराणमें जो मैंने स्तवन और विनय किया है वह उनको विभूतिकी प्राप्तिकी अभिलाषासे किया है। अब प्रार्थना यही है कि वे भगवान शीघ्र ही मुझे अपने समस्त गुणोंको प्रदान करें एवं उन गुणोंके विरोधी जितने भी कर्म हैं वे मेरे सर्वथा क्षीण हो जांय ॥१५७॥ ग्रन्थकार श्रीसकलकीर्ति भट्टारक अन्त मंगल-की कामना करते हुए कहते हैं कि—

तीन लोक द्वारा पूज्य, समस्त तीर्थंकर शरीरके सम्बन्धसे रहित अशरीरी सिद्ध, दूसरोंके प्रयोजन सिद्ध करनेवाले परम विद्वान् आचार्य, शास्त्रोंके अर्थ निरूपण करनेमें चतुर और उत्कृष्ट उपाध्याय एवं धीर वीर, पूर्ण ध्यानके धरनेवाले घोर तपोंके तपनेवाले और मोक्ष प्राप्तिके लिये सदा प्रयत्नशील साधुगण जिनकी कि समस्त लोक स्तुति और विनय करता है और मैंने भी इस ग्रन्थमें जिनकी स्तुति और विनय की है वे तुम्हारे मंगलके कर्ता हों, तुम्हें सर्व प्रकारसे मंगल प्रदान करें ॥१५८॥ समस्त प्रकारके रागभावों से रहित, धर्मका स्वरूप और संवेग भावनासे परिपूर्ण अनुपम और उत्कृष्ट जो भगवान मल्लिनाथका चरित्र मुझ भट्टारक सकलकीर्तिके मुखसे इस पृथिवीपर प्रगट हुआ है वह जबतक संसारमें श्रेष्ठधर्म-जैन धर्मकी सत्ता विद्यमान रहे तबतक भव्य जीवोंके साथ जयवंता रहे ॥१५९॥

इस संसारमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र स्वरूप जो रत्नत्रय है वह स्वर्ग और मोक्षका प्रधान कारण है, समस्त पापोंको सर्वथा नाश करनेवाला है, धर्मरूपी अमृतका एक अद्वितीय समुद्र है, संसारके समस्त अनर्थोंका निवारण करने-वाला है, समस्त सुखका निधि है, भव्य लोगोंके लिये मस्तक पर धारण करनेके लिए एक अद्वितीय चूड़ामणि है, अनन्त गुणों का आकर है और समस्त कर्मोंका नाश करने-वाला है वह रत्नत्रय मुझे भी प्राप्त हो और उसके फलस्वरूप सारे गुण मेरे अंदर आकर प्रगट हों इस अभिलाषासे मैं उस रत्नत्रयको रात दिन मस्तक झुकाकर

ये रत्नत्रयसद्विधिं बुधजनाः कुर्वंति भक्त्या मुदा, ते संप्राप्य सुखं नृदेवगतिजं त्यक्तोपमं तत्फलात्।
हृत्वा कर्मचयं महोग्रतपसा श्रीमल्लितीर्थेशवल्लब्ध्वाचौं त्रिजगज्जनैः शिवगतिं संयांति सिद्धैर्भृतां ॥१६१

असमगुणकरंडो वंदितो विश्वनाथैर्भवभुजगसुमंत्रो दिव्यरत्नत्रयोऽस्तु।
सकलदुरितहान्यै पूर्णरत्नत्रयाय मम परमसुमत्यै वंदितः संस्तुतश्च ॥१६२॥

अस्य मल्लिचरित्रस्य साराः श्लोका भवंत्यपि। सार्धं ह्यष्टशतैः सर्वैश्चतुःसप्ततिसम्मिताः ॥१६३॥

इति श्रीमल्लिनाथपुराणे भट्टारकश्रीसकलकीर्तिविरचिते मल्लिनाथधर्मोपदेशनिर्वाण
गमनवर्णनो नाम सप्तमः परिच्छेदः ॥७॥

नमस्कार करता हूँ ॥१६०॥ इस पुराणके अन्दर जो रत्नत्रय व्रतकी विधि बतलाई गई है उस उत्तम विधिको जो विद्वान् महानुभाव भक्तिपूर्वक करते हैं वे उसके फल-स्वरूप मनुष्य देवलोक सम्बन्धी अनुपम सुखको प्राप्त करते हैं। उग्र तपसे समस्त कर्मोंको छिपाकर भगवान मल्लिनाथके समान तीनों लोकके जीवोंसे पूजित होते हैं। पश्चात् सिद्धोंसे चारों ओर भरी हुई लोकशिखरको प्राप्त करते हैं ॥१६१॥ संसारमें यह दिव्य रत्नत्रय असाधारण गुणोंका पिटारा है, तीनों लोकके नाथोंसे बन्दनीक है, संसाररूपी महाभयंकर भुजंगको वश करनेवाला उत्तम मन्त्र है। उस परम पावन रत्नत्रयको मैंने जो इस ग्रंथमें बंदना और स्तुति की है वह समस्त पाप कर्मोंके नाश-के लिये, पूर्ण रत्नत्रयकी प्राप्तिके लिये और मुझे परम सुमतिकी प्राप्ति हो इस अभि-लाषासे की है इसलिये मेरी यह सविनय प्रार्थना है कि रत्नत्रयकी स्तुति और बन्दना-से मेरे समस्त दुष्कर्मोंका सर्वथा नाश हो। मुझे पूर्ण रत्नत्रयका लाभ हो और मुझे परम सुमतिकी प्राप्ति हो ॥१६२॥

इस मल्लिनाथ पुराणके अन्दर समस्त श्लोक आठ सौ चौहत्तर हैं जो कि भगवान मल्लिनाथका चरित्र वर्णन करनेके कारण सारभूत हैं ॥१६३॥

इस प्रकार भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत मल्लिनाथ चरित्रकी पं० गजाधर-लालजी न्यायतीर्थ विरचित हिन्दी वचनिकामें भगवान मल्लिनाथका धर्मोपदेश और निर्वाण गमन वर्णन करने वाला सातवां परिच्छेद समाप्त हुआ ॥७॥